MAPA- 204

उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन

STATE ADMINISTRATION IN UTTARAKHAND

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरजा प्रसाद पाण्डे निदेशक– समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
प्रो0 एम0एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय , नैनीताल
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज अमरोहा	डॉ0 सूर्य भान सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्याल, हल्द्वानी, नैनीताल	
पाठ्य क्रम सम्पादन- 2021 डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**पाठ्यक्रम संयोजन एंव सम्पादन** डॉ0 सूर्य भान सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लखिक	**इकाई संख्या**
डा0 भुवन, सहायक अध्यापक राजकीय महाविद्यालय कोटाबाग, नैनीताल	1,2,3,4,9,12,13,15
डा0 जाकिर हुसैन 181, चैसवानी टोला, ओल्ड सिटी, बरेली, यू0 पी0	5,6,7,8
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	10,14
डॉ0 कमला बोरा, सहायक अध्यापक राजनीति विज्ञान विभाग,एस0बी0एस0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर	11

प्रकाशन वर्ष- 2021

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण: 2021

प्रकाशक: निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

अनुक्रम

खण्ड- 1 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन	
1. उत्तराखण्ड का इतिहास- प्रशासनिक सन्दर्भ में	1 – 12
2. उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनः एक पारिस्थिकी विश्लेषण	13 – 21
3. केन्द्र राज्य सम्बन्ध: विधायी और प्रशासनिक	22 – 34
4. भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय संदर्भ में	35 – 44
खण्ड- 2 उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना	
5. राज्यपाल, मुख्यमंत्री	45 – 54
6. राज्य सचिवालय, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय,मुख्य सचिव	55 – 64
7. राज्य योजना आयोग	65 – 72
8. राज्य में प्रशासनिक सुधार	73 – 84
खण्ड- 3 महत्वपूर्ण विभाग	
9. गृह विभाग, वित विभाग, आपदा विभाग	85 – 94
10. उत्तराखण्ड में जनजातियॉ एवं जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र	95 – 108
11. आपदा प्रबन्धन	109 – 123
खण्ड- 4 उत्तराखण्ड में कार्मिक प्रशासन	
12. राज्य लोक सेवा आयोग	124 – 130
13. भर्ती, प्रशिक्षण(एटीआई के संदर्भ में) एवम् पदोन्नति	131 – 141
14. स्थानीय स्वशासन	142 – 151
15. सांस्कृतिक एवम् भाषा विकास	152 – 160

इकाई- 1 उत्तराखण्ड का इतिहास- प्रशासनिक सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास
1.2.1 कुणिन्द राजवंश
1.2.2 पौरव वंश
1.2.3 कत्यूरी प्रशासन
1.2.4 चंद वंश
1.2.5 रैका वंश
1.2.6 पंवार वंश
1.2.7 गोरखा शासन
1.3 अंग्रेजी शासन
1.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

उत्तराखण्ड आन्दोलन ही दुनियाँ का ऐसा पहला आन्दोलन है, जिसने गाँधीवादी सिद्धान्तों को सही मायने में आत्मसात किया है। पुलिस एवं प्रशासन की तरफ से इतनी हिंसा हुई पर प्रतिहिंसा की एक भी घटना आज तक देखने को नहीं मिली। गरीबी, विषमता, अभाव एवं शोषण की बुनियाद पर टिका यह एक अहिंसक आन्दोलन रहा। अभूतपूर्व धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन जिसकी खासियत रही। उत्तराखण्ड में विकास व प्रशासन का जो ढाँचा आज खड़ा है उसकी बुनियाद ब्रिटिश काल (सन् 1815 से 1947) में पड़ी थी। ब्रिटिश प्रशासकों ने विकास का जो ढाँचा उत्तराखण्ड में खड़ा किया था, उसमें यहाँ की जन और जमीनी सम्पदा से अधिक से अधिक राजस्व कमाने के साथ-साथ उत्तराखण्ड से लगी तिब्बत, नेपाल की सीमाओं को ध्यान में अधिक रखा गया था। कम्पनी राज के प्रथम कुमाऊँ कमिश्नर गार्डनर का कार्यकाल सन् 1815 से प्रारम्भ होता है। गार्डनर कुमाऊँ में मात्र 6 वर्ष तक रहा। इन वर्षों में उसने राजस्व, सामान्य प्रशासन, फौज, मजदूरी व्यवस्था और खाद्यान्न जैसे कार्यक्रमों की शुरूआत की। गार्डनर के बाद 20 वर्षों तक जार्ज विलियम ट्रेल ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। ट्रेल के कार्यकाल में वन प्रबन्ध, डाक व्यवस्था, ट्रेजरी व्यवस्था, जेल, चिकित्सालय, सड़कों व पुलों की व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, कुलियों के उत्थान, भूमि बन्दोबस्त आदि प्रारम्भ हुए।

इन कार्यों के अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप तथा शराब की ब्रिक्री व्यवस्था कम्पनी शासन काल से प्रारम्भ हो गयी थी। कम्पनी की भूमि बन्दोबस्त, शराब व्यापार और वन व्यवस्था को लेकर लोग संतुष्ट नहीं थे।

आजादी के संग्राम में यहाँ के लोगों का बढ़-चढ़ कर भाग लेने के पीछे मुख्य कारण भूमि बन्दोबस्त और वन प्रबन्ध को लेकर उपजा असंतोष प्रमुख था। सन् 1815 में विकास का जो क्रम उत्तराखण्ड् में प्रारम्भ हुआ था, आजादी के बाद उसी विकास व्यवस्था को आगे बढ़ाया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद उत्तराखण्ड की धरती पर जो सबसे बड़ा आन्दोलन हुआ, वो था उत्तराखण्ड राज्य की मांग। इस आन्दोलन ने जो गति पकड़ी वो राज्य बनने के बाद ही थमी। इस अध्याय में आगे हम राज्य के उन सभी पहलुओं पर चर्चा करेंगे जो राज्य के गठन के प्रमुख कारक रहे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- उत्तराखण्ड राज्य का प्राचीन राजनीतिक इतिहास क्या रहा, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राज्य गठन से पूर्व प्रशासनिक संरचना क्या थी, इसे समझ पायेंगे।
- ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के कारणों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशासनिक संरचना का अध्ययन कर पायेंगे।

1.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास

अलबरूनी जैसे साहित्यकारों का यह आशयपूर्ण कथन है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से अनभिज्ञ हैं। इस अर्थ में यह उचित प्रतीत होता है कि भारतीय इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में तत्कालीन घटनाक्रम का वर्णन तो किया है, लेकिन तिथिक्रम के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकार मौन साधे रहे हैं। उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासकों से पूर्व भी कई शासकों का वर्णन इतिहास में मिलता है। उत्तराखण्ड के शासकों का हम क्रमबद्ध अध्ययन कर उत्तराखण्ड के प्राचीन इतिहास को समझने का प्रयास करते हैं।

1.2.1 कुणिन्द राजवंश

कुणिन्द राजवंश उत्तराखण्ड में शासन करने वाले प्रारम्भिक राजवंशों में से है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। अष्टाध्यायी में पाणिनी के द्वारा भी कुणिन्द जनपद का उल्लेख किया जाना दर्शाता है कि चौथी, पाँचवी सदी ईसा पूर्व कुणिन्दों का अस्तित्व था। टाल्मी (87 ई0 से 165 ई0) के विवरण में भी कुणिन्दों का उल्लेख दर्शाता है कि कुणिन्द दूसरी सदी में भी अस्तित्ववान थे। कुणिन्दों से पूर्व उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में कई अन्य जातियों का शासन स्थापित हो चुका था, जिनमें किरात, खश, तगण, परतगण, अम्बस्ष्ट इत्यादि का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। कुणिन्दों का उत्तराखण्ड की भूमि में अस्तित्व महाभारत काल के प्रारम्भ (सम्भवतः1000 ई0पू0-900 ई0पू0) से दूसरी तीसरी शताब्दी तक ज्ञात होता है। कुणिन्दों के शासन काल को कुणिन्द जनपद में तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम काल- महाभारत काल से 5वीं-6वीं ई0 पू0, दूसरा काल- 5वीं-6वीं ई0 पू0 से 2-3 सदी ई0 पू0 तथा तीसरा काल- 2-3 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0 तक।

प्रथम काल के सम्बन्ध में महाभारत से पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त होती हैं। महाभारत में सुबाहु नामक जिस शक्तिशाली शासक का उल्लेख मिलता है वह कुणिन्द जाति से सम्बन्धित था। सुबाहु ने पांडवों के पक्ष में महाभारत युद्ध में भाग लिया था। इस काल के प्रारम्भ में कुणिन्द जनपद एक स्वतंत्र जनपद था। बाद में उसने पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। द्वितीय काल समस्त उत्तर-भारत के लिये एक संक्रमण काल था। इस काल में धार्मिक क्षेत्र में महान क्रान्तियां हुई। परिणाम स्वरूप महावीर तथा बुद्ध जैसे धर्मज्ञों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्म जैसे विचार प्रधान

धर्मों की स्थापना की गयी। कुणिन्द जनपद के तीसरे काल को कुणिन्दों के चर्मोत्कर्ष काल माना जा सकता है। मोर्य एवं शुंग शासन के ह्रास के कारण भारतवर्ष में केन्द्रीयकरण की प्रवृति नष्टप्रायः हो गयी थी। विकेन्द्रीकरण का प्रारम्भ हो गया था। सम्भवतः इसी विकेन्द्रीकरण का प्रभाव था कि कुणिन्द जनपद अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ चला।

किसी भी राजवंश का काल जानने या किसी कालखण्ड का इतिहास जानने में मुद्राओं का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुणिन्द मुद्राएं खरोष्टी एवं ब्राह्मी लिपी में उत्कीर्ण हैं। इस काल की कुछ मुद्राएं अल्मोड़े जिले से प्राप्त हुयी हैं, जिन्हें कुणिन्द शासनकाल में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राओं के नाम से जाना जाता था। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित की गयी हैं। इनका वजन 119 ग्रेन से 327 ग्रेन है। ये मुद्राएं म-ग-ह-त-स, शिवदत्त, शिवपालित हरदत्त इत्यादि कुणिन्द शासकों द्वारा उत्कीण की गयी हैं। ये मुद्राएं ब्राह्मी लिपि से उत्कीर्ण हैं। इन मुद्राओं में वृत्त, कुबड़ा बैल, वेदी, छत्र, लम्बवत् रेखाएं, नंदीपाद, नाग, मानवमूर्ति इत्यादि का अंकन किया गया है। अन्य प्रकार की मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं, जोकि देहरादून, बेहट तथा भैड़ागांव से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में भानू एवं रावण का नाम उत्कीर्ण किया गया है। कई ऐसी मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं, जिस पर कोई नाम उत्कीर्ण नहीं है। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित हैं तथा इनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है। अब तक कुणिन्द काल की अनेक मुद्राएं भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में शासकों के नाम तथा उनकी उपाधियों का भी अंकन मिलता है। कई मुद्राएं तो ऐसी हैं जिनमें शासकों का नाम अंकित न होकर कुणिन्द इत्यादि शब्दों का अंकन किया गया है। कुणिन्द मुद्राओं से ज्ञात होता है कि कुणिन्द सत्ता स्वतंत्र रही होगी। किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं रही होगी। कुणिन्द मुद्राओं से कुणिन्दों का अपने समकालीन अन्य गणराज्यों यथा यौद्येय तथा औदुम्बर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कुणिन्द मुद्राएं तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, साम्राज्य विस्तार तथा कुणिन्द शासकों की नीति तथा स्थिति पर व्यापक रूपेण प्रकाश डालती है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. कुणिन्द शासन में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राएं किस धातु से निर्मित की गयी थी?
2. अष्टाध्यायी की रचना किसने की?

1.2.2 पौरव वंश

अल्मोड़ा जनपद के तालेश्वर नामक स्थान से ताम्र एवं अष्टधातु के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख पौरव वंश से सम्बन्धित हैं। ये अभिलेख 1915 ई0 में प्राप्त हुए। पौरव वंश का उद्-भव हर्ष के पश्चात तथा कत्यूरी एवं कन्नौज के यशोवर्मा से पूर्व हुआ था। हर्ष ने 600 ई0 से 647 ई0 तक शासन किया था। जबकि डॉ0 आर0एस0त्रिपाठी कन्नौज के शासक यशोवर्मा का शासनकाल 725 ई0 से 752 ई0 मानते हैं। पौरव वंश की सत्ता 647 ई0 के पश्चात से प्रारम्भ होकर 725 ई0 के आसपास तक अस्तित्व में रही होगी। पौरव वंश के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले ताम्रपत्रों के अनुसार इस वंश की राजधानी ब्रह्मपुर थी। पौरव वंश का राज्य गढ़वाल से सम्बन्धित था। कनिंघम के मतानुसार, ब्रह्मपुर राज्य में अलकनन्दा और करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश वर्तमान गढ़वाल एवं कुमाऊँ सम्मिलित रहा होगा। इस प्रकार पौरव वंश की राजसत्ता सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में स्थापित थी। इसमें भाबर का क्षेत्र भी शामिल था।

पौरव वंशीय ताम्र अभिलेखों से इस वंश के शासन प्रबन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है। विद्वानों ने माना है कि इस वंश के अनेक पदाधिकारियों की समानता गुप्त व हर्ष के पदाधिकारियों से की जा सकती है। पौरव वंश चूंकि हर्ष का परवर्ती था। अतः पौरवों ने हर्ष की शासन व्यवस्था को अपनाया। पौरव शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। इसकी उपाधि महाराजाधिराज परम भट्टारक की थी। पौरव अपने को गौ ब्राह्मण हितैषी

कहलाना पंसन्द करते थे। वे दानी प्रवृति के थे। उनके अभिलेख उनके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख करते हैं। वे निरंकुश नहीं थे।

शासन की सहायता हेतु मंत्री परिषद होती थी। मंत्रीपरिषद का कार्य शासक को विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श देना होता था। परिषद की नियुक्ति शासन को चुस्त, दुरूस्त करने हेतु की जाती थी। मंत्री परिषद में अमात्य, बलाध्यक्ष, सन्धि विग्रहक, राजदौवारिक, कोटाधिकरण, कुमारमात्य, सर्व विषय प्रधान देव द्रोणाधिकृत तथा कारगिक इत्यादि अधिकारी सम्मिलित थे। राजा जिस स्थान पर परिवार के साथ रहता था, उसे कोट कहते थे। कोट का सुरक्षा प्रबन्ध कोटाधिकरण नामक अधिकारी के पास था, जिसका कार्य राज परिवार को सुरक्षा प्रदान करना था। राज देवारिक राजप्रसाद में आने-जाने वालों की देख-रेख करता था। कारगिक नामक अधिकारी राजाज्ञाओं को तथा शासन को की गयी प्रार्थनाओं को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने का कार्य करता था। एक सुपकारपति नामक कर्मचारी होता था जो राजा के भोजनालय की व्यवस्था देखता था।

बालाध्यक्ष सैन्य प्रमुख था। सेना तीन भागों में विभक्त थी- गज, अश्व एवं पैदल जो सेनानायक के अधीन थे। इसके सेनानायक गजपति, अश्वपति जयनपति कहलाते थे। सन्धि विग्रहक युद्ध व संधि विभाग का प्रधान था। पौरव शासन प्रबन्ध में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा हेतु पुलिस विभाग की व्यवस्था थी। पौरव शासकों की आय का मुख्य श्रोत भूमि कर था। भूमिकर को भाग कहते थे। इसको वसूलने वाला अधिकारी भागिक कहलाता था। भूमिकर उपज का छठा भाग लिया जाता था। चूँकि हिमालय की घाटियों में बसा होने के कारण पौरव वंश खनिज, वन तथा औषधियों से भरा पड़ा था, अतः इनसे भी आय होती थी। भोटान्तिक व्यापार अवश्य ही राज्य की आय के लिये वृद्धिकारक रहा होगा। अभिलेखों में दिविरपति तथा कायस्थ का उल्लेख भी मिलता है। इनका कार्य राज्य की आय तथा भूमि सम्बन्धी सूचनाओं का आंकड़ा रखना था। इस काल में केदार एवं सारी नामक भूमि के दो वर्ग थे। केदार भूमि सिंचाई वाली भूमि कहलाती थी तथा सारी ऐसी भूमि थी जिसकी सिंचाई नहीं की जाती थी। भूमि नाप के लिये द्रोणवापम, खारीवापम तथा कुल्यवापम आदि विधियों का प्रचलन था। सम्पूर्ण भूमि शासक की थी, वह भूमि का दान व विक्रय कर सकता था। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पौरव काल में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित थी, उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पूर्व काल में स्थापित बड़े राजवंशों की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। ऐसा स्वभावतः उचित भी था, क्योंकि मानव प्रवृति अपने से श्रेष्ठ की नकल की होती ही है।

अभ्यास प्रश्न- 2

3. पौरव वंश में सेना कितने भागों में विभक्त थी?
4. केदार भूमि से क्या क्या तात्पर्य है?

1.2.3 कत्यूरी वंश

उत्तराखण्ड में 750 ई0 के आस-पास तक नन्द, मौर्य, कुषाण, मौखरी, वर्धन व पौरव वंशों का प्रभुत्व रहा। 750 से 1223 ई0 तक कत्यूरी राजाओं का एक छत्र राज्य रहा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस वंश का शासन काल 850 से 1060 ई0 तक मानते हैं। विक्रम की 11वीं सदी में उत्तराखण्ड पश्चिमी व पूर्वी दो प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हुआ। लेकिन दोंनो पर ही कत्यूरी राजाओं का शासन बना रहा। उत्तराखण्ड भौगोलिक दृष्टि से एक स्वतंत्र इकाई होने के बाद भी उसके मध्य में स्थित नन्दा देवी हिमालय, बधाण, चांदपुर के पठार तथा रामगंगा-उपत्यका के घने वन उसे पश्चिमी व पूर्वी दो भागों में बांटते हैं। उत्तर में इन भागों के बीच आवागमन की सुविधा पिंडर-उपत्यका तक उतरने पर ही प्राप्त होती है। दक्षिणी भाग में भाबर, घने वन व हिंसक पशुओं से भरे वन आवागमन में बांधक रहे। इस प्राकृतिक बांधा के कारण जोशीमठ से पूरे उत्तराखण्ड का शासन करना कठिन हो रहा था। अतः प्रकृति के प्रकोप व प्रशासनिक कठिनाईयों से बचने तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी व पूर्वी भागों पर

सुदृण शासन रखने के लिये कत्यूरी नरेश नर सिंह देव ने चमोली जिले के जोशीमठ से बागेश्वर जनपद स्थित बैजनाथ में राजधानी स्थापित की थी। यह घटना सम्वत् 1057 विक्रमी (सन् 1000) की है। इससे उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग कमादेश (कुमाऊँ) पर शासन करना सरल हुआ। फलतः कत्यूरी नरेशों को सन् 1191 तक इस प्रदेश पर अपनी सत्ता बनाये रखने में सफलता मिली। किन्तु उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग केदार भूमि गढ़देश पर उनका शासन शिथिल हो गया।

कत्यूरी वंश के सम्बन्ध में ज्ञान कराने वाले प्रमुख साधन इस काल के अभिलेख हैं। इन अभिलेखों से कत्यूरी काल के केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। कत्यूरी शासन दो भागों में बंटा था-

1. **केन्द्रीय प्रशासन-** केन्द्रीय प्रशासन का प्रधान शासक होता था। कत्यूरी वंश के अधिकांश शासक परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण करते थे। उनकी अन्य उपाधियां परम माहेश्वर तथा परम ब्राहमण थी। परवर्ती कत्यूरी शासकों को छोड़कर सभी कत्यूरी शासक प्रजा हितेषी, विद्वानों के आश्रयदाता, दानी तथा धार्मिक प्रवृति के थे। उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा मंदिरों को अनेक ग्राम अग्रहार के रूप में भी दान दिये। अधिकतर कत्यूरी शासक शैव मतावलम्बी थे। परन्तु उन्होंने अन्य मतों या सम्प्रदायों को मानने वालों के साथ भेदभाव नहीं किया। उनके द्वारा वैष्णव मंदिरों को भी भूमि दान दी गयी। कत्यूरी काल में ब्राहमण धर्म को उत्ताखण्ड में व्यापक सम्मान मिला। कत्यूरी शासक अपने राजा का प्रशासन मंत्री परिषद के मंत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियों द्वारा संचालित करते थे। कत्यूरी शासकों के अभिलेखों में मंत्रियों तथा पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची उत्कीण मिलती है। इन मंत्रियों तथा पदिधिकारियों की नियुक्ति शासक द्वारा स्वयं की जाती थी। भिन्न-भिन्न कार्यो के लिये भिन्न मंत्री व अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। कत्यूरी काल के कुछ प्रमुख पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित थे- अमात्य, राजामात्य, महासंधिविग्रहाधिकृत, कुमारमात्य, महादानाक्षपटलाधिकृत, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महाराज प्रमातार, उपरिक, महाकर्ता, गौल्मिक एवं शौल्किक आदि। कत्यूरी वंश के शासकों ने 250 वर्षों से भी अधिक समय तक उत्तराखण्ड में शासन किया। कत्यूरी सेना चार भागों में विभक्त थी- पैदल, अश्व, हाथी तथा ऊँट। अन्तिम तीन सेनाओं के मुखिया अश्वबलाधिकृत, हस्तिबलाधिकृत, ऊष्टबलाधिकृत कहे जाते थे। इन तीनों का भी एक संयुक्त सर्वोच्च अधिकारी होता था, जिसे हस्त्यश्वोष्ट्रबलाधिकृत कहा जाता था। सेना का संचालन शासक द्वारा ही होता था। कत्यूरी सेना के हाथी एवं ऊँटों का प्रयोग तराई, भाबर के क्षेत्रों में ही होता था। प्रान्तपाल नामक एक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है जो कि राज्य की सीमाओं की सुरक्षा करता था। नदी घाटों पर आवागमन की सुविधा कर वसूली तथा अवांछित व्यक्तियों के कार्यकलापों की देखरेख का कार्य तरपति नामक अधिकारी करता था। पुलिस अधिकारियों के अतिरिक्त दण्डिक, चाट, भाट आदि कर्मचारी भी थे। अपराधियों को धर पकड़ने वाला अधिकारी दोषापराधिक कहलाता था। गुप्तचर विभाग की व्यवस्था भी थी। इस विभाग का मुख्य अधिकारी दुःसाध्य साधनिक था। चोरोंद्वरणिक नाम अधिकारी भी होता था जो चोर, लुटेरों को पकड़ता था। इससे ज्ञात होता है कि कत्यूरी शासकों ने राज्य की आन्तरिक शान्ति एवं जनसुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। भूमिकर के अतिरिक्त वन एवं खनिजों से भी कर लिया जाता था। प्रमावतार भूमि नाप करने वाला अधिकारी था। भूमि नापने हेतु द्रोणवापम तथा नालीवापम प्रणाली प्रचलित थी। भूमि के पट्टे या अभिलेख पट्टकोपचरिक नामक अधिकारी के पास रहते थे। कत्यूरी अभिलेखों ने उत्कीर्ण भोगपति, शौल्किक अधिकारी भोग शुल्क आदि करों को वसूला करते थे। कत्यूरी शासक के आय के अन्य श्रोत, वन खनिज तथा पशु थे। वनों की रक्षा के लिये खण्ड रक्ष तथा पशुओं के लिये गाय-भैंस अधिकारियों की

भी नियुक्ति की जाती थी। दान में दी गयी अग्रहार भूमि करमुक्त थी। भौटान्तिक व्यापार से भी कत्यूरी राज्य को अवश्य कुछ न कुछ आय होती होगी।

2. **प्रान्तीय प्रशासन-** कत्यूरी शासकों द्वारा उत्कीर्ण लेखों में उपरिक नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। इसकी समानता गुप्त कालीन प्रान्तपति से की जा सकती है। प्रान्तपति या उपरिक के अधीन अनेक आयुक्त होते थे जो प्रान्तीय प्रशासन की देखरेख करते थे। सम्भवतः इस काल में पूर्ववर्ती भारतीय साम्राज्यों की भांति प्रान्तों को भुक्ति कहा जाता था। कत्यूरी अभिलेखों में जय कुल भुक्ति का उल्लेख मिलता है। कत्यूरी वंश के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर, टंकणपुर, अन्तरागविषय तथा एशालविषय का उल्लेख मिलता है। जिससे सिद्ध होता है कि कत्यूरी प्रान्त अनेक विषयों में विभक्त था। राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्रामों में राज्य की ओर से महामनुष्यम् तथा मुकद्दम नामक अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

अभ्यास प्रश्न- 3

5. कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय क्या था?
6. इस काल में राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

1.2.4 चंद वंश

चंद वंश उत्तराखण्ड के इतिहास का एक महत्वपूर्ण राजवंश था। इस वंश का प्रारम्भ 10वीं और 11वीं सदी से प्रारम्भ हो गया था तथा 18वीं सदी तक इसका अस्तित्व उत्तराखण्ड की धरती पर बना रहा। इस वंश का सबसे पुरातन अभिलेख 1317 ई0 में राजा अभय चंद द्वारा प्रचलित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य पूर्ववर्ती चंद राजाओं के समय उत्कीर्ण किये गये अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख दानपात्रों के रूप में उत्कीर्ण किये गये हैं। चंद कालीन अभिलेखों के अतिरिक्त इस काल से सम्बन्धित अनेक मंदिर, महल, किले, नौले उत्तराखण्ड की भूमि में यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं। चंद वंश के शासन प्रबन्ध, वित्त व्यवस्था और सेना के सम्बन्ध में जानने के लिए इन बिन्दुओं पर विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **शासन प्रबन्ध-** चंद वंश पूर्वी उत्तराखण्ड का अंतिम क्षेत्रीय राजवंश था। इस वंश के पतन के पश्चात 132 वर्षों तक यहाँ विदेशी शासन रहा जो कि क्रमशः गोरखों तथा अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया। चंद काल में प्रशासन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी राजा होता था। वह अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था, जिसकी सहायता से राजा के विभिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते थे। चंद राजा वीर, साहसी, धैर्यवान, दानदाता, धार्मिक, विद्या प्रेमी, विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ थे। चंद राजाओं ने शासन प्रबन्ध में सहायता हेतु अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की। युवराज, मंत्री, दीवान, राजगुरू, राजपुरोहित, सेनापति, फौजदार, रसोई दरौगा, खजानची, ह्यूपाल काराखेड़ा, राजचेली(राजमहल की दासी) आदि अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता से चंद राजा अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करते थे। उन्होंने प्रशासनिक सुविधा हेतु प्रजा को कई भागों में विभाजित किया था, यथा चार बुढ़ा, पांच थोक, चार चौथानी, छः धरिया, बारह अधिकारी, पंचबिडिया, खतीमन ब्राहमण, पौरी पन्द्रह विश्वा। चंद काल में ग्रामों का प्रशासन ग्राम प्रधान के द्वारा चलाया जाता था। उसका कार्य भू-राजस्व वसूलना तथा ग्रामों की सुरक्षा प्रबन्ध की देख-रेख होता था। उसकी सहायता के लिये कोटाल तथा पहरी गांव की चौकीदारी करता था। पहरी निम्न जाती से सम्बन्धित होता था।
2. **आय के स्रोत-** राज्य की आय के मुख्य स्रोतों में भू-राजस्व प्रमुख था। भू-राजस्व भूमि के आधार पर निर्धारित किया जाता था। उपजाऊ भूमि पर अन्य भूमि की अपेक्षा अधिक कर लगाया जाता था। भूमि

कर कठोरता से वसूला जाता था। यद्यपि प्राकृतिक प्रकोपों का लाभ कृषकों को मिलता था। भू-राजस्व के अतिरिक्त चंद राज्य की आय के अन्य स्रोत राजाओं द्वारा प्रजा पर लगाये गये अन्य विभिन्न प्रकार के कर थे। यथा- झूलिया, सिरती बैकर, कूत, भेंट, घोड़ियालों, कुकरियालों, मांगाकरक, स्यूक गरखानेगी, भुकड़िया बाजदार बाजनियौ, चराई कर, गृह कर इत्यादि। इन करों के अतिरिक्त वन तथा खनिजों से सम्बन्धित कर भी आय के स्रोत थे। भोटान्तिक-तिब्बत व्यापार से भी चंदों को अच्छी आय प्राप्त होती थी।

3. **सेना-** चंद राज्य के पास शक्तिशाली सेना थी। सेना पैदल तथा घुड़सवारों से मिलकर बनी थी। सेना का मुख्य अधिकारी सेनापति होता था। सेनिकों व सेनाधिकारियों को उनका वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था। अपनी शक्तिशाली सेना के कारण ही चन्द राजाओं ने पंवार, डोटी जैसे शत्रु राज्यों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की।
4. **लोकहितकारी कार्य-** चंद राजाओं ने लोकहितकारी कार्यों की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने पेय जल हेतु अनेक नौलों का निर्माण कराया। मंदिरों का निमार्ण एवं पुर्ननिर्माण करवाया। फलदार बाग लगवाये। संस्कृत शिक्षा हेतु विद्यालय तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। विद्वानों को आश्रय दिया। मंदिरों को भू-दान दिया।

अभ्यास प्रश्न- 4

7. चन्द वंश का प्रारम्भ किस सदी से हुआ?
8. चंद काल में प्रशासन का मुख्य अधिकारी कौन होता था?
9. चंद काल में ग्रामों का प्रशासन किसके द्वारा होता था?

1.2.5 रैका वंश

कत्यूरी वंश की राजशक्ति कमजोर पड़ जाने के कारण एक शक्तिशाली शासक के अभाव में कत्यूरी वंश के सामन्तों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली तथा एक स्वतंत्र राजा की भांति अपनी अधिकृत क्षेत्र में राज्य करने लगे। सीरा व डोटी भी ऐसे ही क्षेत्रों में थे, जहाँ कत्यूरी वंश के सामन्तों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। इन्हें कत्यूरियों की एक शाखा माना गया तथा रैका नाम से जाना गया। रैका वंश के इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले मुख्य स्रोत इस वंश से सम्बन्धित ताम्र अभिलेख तथा डोटी एवं सीरा से प्राप्त वंशावलियां हैं। रैका वंश के सम्बन्ध में रैकाओं द्वारा लिखित अभिलेख तथा चंद राजाओं के अभिलेख महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। सीरा तथा डोटी के रैका कत्यूरी शासकों की भांति ब्राहमण धर्म को मानने वाले थे।

1.2.6 पंवार वंश

मध्यकालीन उत्तराखण्ड के इतिहास में दो राजवंशो का स्थान महत्वपूर्ण है। पूर्वी उत्तराखण्ड का चंद वंश तथा पश्चिमी उत्तराखण्ड का पंवार वंश। कत्यूरी वंश के पतन के बाद कत्यूरी वंश के वंशजों ने अनेक स्थानों पर अपने-अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। पश्चिमी उत्तराखण्ड में भी कत्यूरी राज्य-क्षेत्र अनेक छोट-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। ये छोटे-छोटे राज्य गढ़ कहलाने लगे। गढ़ उस समय संख्या में 52 थे। इनमें एका न था। ये छोटी-छोटी बातों के लिये लड़ते रहते थे। पंवार वंश के राजाओं के गढ़ का नाम चांदपुर था। पंवार राजा शक्तिशाली थे। इन्होंने अपनी शक्ति के बल पर समस्त गढ़ों को अपने अधीन कर लिया और एक गढ़ देश की स्थापना की। इसी गढ़ देश को गढ़वाल कहा जाता है। पश्चिमी राजाओं के दरबारी कवियों के अनुसार ये राजा चन्द्र वंश से सम्बन्धित थे। जबकि इस वंश के परवर्ती राजाओं ने अपने वंश को पंवार वंश कहा। विशेषकर राजा सुदर्शन शाह ने (1815-1859ई0) को अपने वंश को पंवार वंश कहा।

1. **पंवार वंशीय प्रशासन-** पंवार वंश के राजाओं ने जिस प्रकार पक्षी तिनका-तिनका कर घोंसले का निर्माण करते हैं, ठीक वैसे ही 52 गढ़ों को मिला कर पंवार राज्य का निर्माण किया। पंवार राज्य का प्रधान राजा होता था। वह समस्त भूमि, वन तथा खनिज का स्वामी समझा जाता था। वह भूमिदान कर सकता था। पंवार वंशी राजा निरंकुश नहीं थे। वे प्रजा की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते थे। प्रजाहित का ध्यान रखते थे। विद्वानों तथा कलाकारों के संरक्षक भी थे। राजकार्यों में कार्य करने के लिये वे उच्च अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे। राजा द्वारा निम्न उच्चाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। यथा वजीर, दिवान, फौजदार, दफ्तरी, नेगी, धर्माधिकारी गोलदार, वकील इत्यादि।

   राजा के बाद सबसे शक्ति सम्पन्न अधिकारी मुख्तार होता था। वह वजीर या दीवान के समान था। शक्तिहीन राजाओं के काल में वह राज्य का सर्वेसर्वा बन जाता था। दफ्तरी का कार्यालय सचिवालय की भांति था। वह राज्य के कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, वेतन, पुरस्कार, दण्ड, जागीर आदि से सम्बन्धित होता था। वह राजा के आदेशों का प्रसार भी करता था। फौजदार सैनिक अधिकारी थे, जो परगनों में नियुक्त किये जाते थे। पंवार राज्य में नेगी भी उच्चाधिकारी होते थे। ये कुलीन परिवारों के प्रतिनिधि थे। राजा इनसे महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श लेता था। नेगी का पद वंशानुगत था। धर्माधिकारी धर्म विभाग का प्रधान था। वह वंशानुगत पद था। गोलदार का कार्य राज्य के प्रमुख स्थलों राजमहल राजकोष आदि की सुरक्षा करना था। वकील दूत का कार्य करते थे। इन अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक कर्मचारी भी होते थे। यथा खवास-खवासिन(सेवक-सेविकाएं), चोपदार यह राजा के साथ चांदी का दण्ड लेकर चलता था। सोदी राजपरिवार के लिये भोजन की व्यवस्था करता था। चन्ड संदेशवाहक का कार्य करता था। उच्चपदाधिकारियों को वेतन, जागीर के रूप में दिया जाता था। दैनिक व्यय व कर्मचारियों को व्यय के लिये कुछ नकद राशि भी दी जाती थी। कुछ कर्मचारियों को प्रत्येक फसल के समय गांव से कुछ अन्न नाली(अनाज मापने का पात्र) के रूप में दिया जाता था।

2. **आय के स्रोत-** पंवार राज्य के आय का प्रमुख स्रोत कृषि से प्राप्त भू-राजस्व था। राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। किसी भी व्यक्ति को भूमि दान में दे सकता था। भूमि रौत, जागीर तथा संकल्प के द्वारा दान में दी जाती थी। रौत उस भूमि को कहा जाता था जो सैनिकों को युद्ध में वीरता तथा साहस दिखाने के लिये दी जाती थी। भूमि अनेक थातों में विभक्त थी। प्रत्येक थात, थातवान के अर्न्तगत आता था। वह एक जमींदार की भांति था। उसका कार्य अपनी थात का भू-राजस्व एकत्रित कर राजकोष में जमा करना था। खायकर एक प्रकार के स्थाई कृषक थे, जबकि सिरतान अस्थाई कृषक। ये जमींदार को भू-कर के अतिरिक्त समय-समय पर भेंट, दस्तूर तथा मिठाई के रूप में कर देते थे। भू-राजस्व की वसूली करने वाले अन्य अधिकारी थोकदार प्रधान तथा बूढ़ा थे। थोकदार परगनों से भू-राजस्व एकत्रित करते थे। प्रधान ग्रामों से राजस्व की वसूली करते थे। भोटान्तिक भू-राजस्व वसूली करने वाले अधिकारी को बूढ़ा कहा जाता था। थोकदार को समाणा नाम से भी जाना जाता था। सम्पूर्ण राज्य के भू-राजस्व के दस्तावेज तथा आंकड़े राज्य की राजधानी में दफ्तरी के पास रहते थे। भूमि नाप की इकाई नाली थी। भू-राजस्व की दर उपज के 1/3 भाग से 1/2 भाग तक थी। साधारण भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/3 भाग तथा उपजाऊ भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/2 भाग लिया जाता था। कुल 68 प्रकार के आय के अन्य स्रोत थे जिनमें से 36 कर थे तथा 32 देय।

   इस प्रकार पंवार राजाओं ने एक व्यवस्थित प्रशासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। निरन्तर युद्धों में उलझे रहने पर भी राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से चलता रहता था।

अभ्यास प्रश्न- 5

10. पंवार वंश में खायकर किन्हें कहा जाता था?

11. पंवार वंश में भूमि नाप की इकाई क्या थी?

1.2.7 गोरखा शासन

गोरखा राज्य के उद्-भव से पूर्व नेपाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। यथा भाट गांव वेलपा, डूलू, डोटी, जुमला काठमांडू या कांतिपुर इत्यादि। इन राज्यों में किरात एवं वैश्य वंश के राजा राज्य करते थे। चंद राज्य पर आक्रमण के समय गोरखों का राजा रणबहादुर शाह(सन् 1777 से 1804ई0) था। इसके सत्ता प्राप्त करने तक गोरखा राज्य में नेपाल के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का समावेश हो चुका था। एक शक्तिशाली गोरखा सेना का संगठन भी हो चुका था। सन् 1790 ई0 तक गोरखा राजा ने चंद राजा द्वारा पदच्युत हर्षदेव जोशी से भी समझौता कर उसे अपनी सहायता हेतु मना लिया। चंद राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात 1791ई0 में गोरखा सेना ने पंवार राज्य पर आक्रमण कर दिया। गोरखा सेना पंवार राज्य पर विजय बनाने की योजना बनाती, उसी समय चीन ने नेपाल पर आक्रमण किया। अतः गोरखा सेनापतियों ने पंवार राजा प्रद्युम्मन शाह से श्रीनगर की सन्धि कर ली। यह सन्धि सन् 1792 में हुई। सन्धि की शर्तानुसार पंवार राजा को नेपाल की अधीनता स्वीकार कर उसे कर देना था। सन् 1803 ई0 तक पंवार राज्य की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। उसे प्राकृतिक प्रकोपों को भी सहना पड़ा। गोरखा सेना ने सुअवसर जान 1803 ई0 में पंवार राज्य में आक्रमण कर दिया और श्रीनगर पर अधिकार कर लिया।

1.2.7 गोरखा शासन

गोरखों का उत्तराखण्ड में शासन 1815 ई0 तक रहा। गोरखों ने उत्तराखण्ड को सैन्य शक्ति के द्वारा विजित किया था। अतः उनका प्रशासन भी सैन्य प्रशासन के द्वारा नियंत्रित होता था। फिर भी उन्होंने नेपाल तथा उत्तराखण्ड में प्रचलित शासन व्यवस्था के मिश्रित रूप को अपनाया। गोरखा शासन सैनिक शासन था। उसके सभी उत्तराधिकारी सेना सम्बन्धित होते थे। गोरखा सेना एक शक्तिशाली सेना थी। अपनी शक्ति के द्वारा ही उन्होंने विस्तृत भू-भाग पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। गोरखा सेना में प्रतिदिन परेड, उपस्थिति तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। सैनिक सामान्यतः एक वर्ष के लिये ही नियुक्त किये जाते थे। नियुक्ति काल में सैनिक जागरिया कहलाते थे। एक वर्ष बाद नई नियुक्तियां पुरानों के स्थान पर की जाती थी। जिन सैनिकों को एक वर्ष बाद परिवर्तित किया जाता था, इन्हें दो वर्षों तक सेना में नहीं लिया जाता था। ये सैनिक ढाकरिया कहलाते थे। आपात काल में इन्हें पुनः सैन्य सेवा में रख लिया जाता था। अस्थायी सेना में गोरखा लोंगो से भिन्न लोगों की नियुक्ति की जाती थी। गोरखा जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते थे, उन क्षेत्रों की जनता से भी सैनिकों की भर्ती कर लेते थे। सैनिक विजित क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। अस्थाई सेना से कभी उच्च एवं निम्न अधिकारी नहीं बनाया जाता था। गोरखा प्रशासन सैनिक प्रशासन था। अतः उसका न्याय प्रशासन भी सैनिक न्याय व्यवस्था पर आधारित था। मामलों की सुनवाई विचारी नामक अधिकारी द्वारा की जाती थी। विचारी की सहायता के लिये सेना होती थी। विचारी निरंकुश होता था। इस पर राजा के नियंत्रण की कोई व्यवस्था नहीं थी।

1. **आय के स्रोत-** गोरखा शासन के लिये मजबूत आर्थिक स्थिति का होना आवश्यक शर्त थी। गोरखा अधिकारी अधिकांशतः युद्धों में ही अपना समय व्यतीत करते थे। अतः उनके पास नई राजस्व नीति निर्मित करने का समय नहीं था। भू-राजस्व वसूलने वाले अधिकारी भी पूर्व काल की भांति रहे। राजस्व की वसूली में कमीण, सयाणा एवं ग्राम के प्रधान का महत्व बना रहा। भूमिकर का निर्धारण करते समय

कृषक के हित के बजाय सैनिकों के हित का ध्यान रखा जाता था। सैनिकों को वेतन देने के लिये मुख्य स्रोत भू-राजस्व ही था। जो लोग भूमि-कर देने में असमर्थ होते थे, उन्हें दास बना कर बेच दिया जाता था।

2. **अन्य स्रोत-** गोरखा शासकों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेक कर भी लिये जाते थे। पूर्व काल मे प्रचलित कर समाप्त कर दिये गये थे। इनके स्थान पर नये कर लगाये गये। कुछ प्रमुख कर निम्नलिखित थे- जैसे मौकर(गृहकर), बुनाई कर, घी कर, सलामी या नजराना जो उच्चाधिकारी को उपहार स्वरूप दिया जाता था। गोरखा शासन में लोगों को दास बना कर बेचा जाता था, जिसकी आय भी गोरखों की प्रमुख स्रोत थी। गोरखा शासन में उत्तराखण्ड के अनेक पुरूष-स्त्रियों को दास बना कर बेचा गया था।

इस प्रकार गोरखा शासन में सैनिक शासन होने के कारण गुणों की अपेक्षा दुर्गुण अधिक थे। गोरखा सैनिकों के अत्याचारों से जनता पीड़ित थी। सैनिक स्वयं लूटमार तथा व्यभिचार में लिप्त रहते थे। गोरखा शासन की न्याय तथा राजस्व व्यवस्था अन्यायपूर्ण थी।

अभ्यास प्रश्न- 6

12. गोरखा शासन किस प्रकार का शासन था?

13. गृहकर को गोरखा प्रशासन में क्या कहते थे?

1.3 अंग्रेजी शासन

अप्रेल 1815 ई0 में उत्तराखण्ड क्षेत्र के गोरखा प्रशासक चौतरिया बमशाह तथा अंग्रेजों के प्रतिनिधि ई0 गार्डनर द्वारा एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस प्रकार उत्तराखण्ड का राज्य भी अंग्रेजों के अन्तर्गत आ गया। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। उत्तराखण्ड एक बार फिर विदेशी शासकों के चंगुल में जा फंसा। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के दो भाग कर दिये। एक भाग को अन्य देशी रियासतों की भांति टेहरी रियासत के रूप में जाना गया। दूसरा भाग अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गया। टेहरी रियासत पूर्व पंवार वंश के वंशजों के अधीन कर दी गयी। टेहरी रियासत की राजधानी टेहरी थी। टेहरी रियासत नाममात्र को पंवार वंश अधीन थी, उसका वास्तविक शासन तो अंग्रेजों के द्वारा ही चलाया जाता था। टेहरी रियासत का प्रथम राजा सुदर्शन शाह था। जिसने 1815ई0 से 1859 तक शासन किया। उसके वंशजों ने 1949 ई0 तक टेहरी रियासत में शासन किया। टेहरी रियासत में अंग्रेजी सरकार का एक ऐजेन्ट भी नियुक्त किया जाता था। प्रारम्भ में यह ऐजेन्ट कुमाऊँ का कमीश्नर होता था। परन्तु 1825 ई0 से 1842 ई0 तक देहरादून जिले के डिप्टी कमीश्नर को टेहरी रियासत में सरकार का ऐजेन्ट बनाया गया। परन्तु 1842 ई0 में पुनः कुमाऊँ कमीश्नर को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी। टेहरी रियासत को 1937ई0 में पंजाब हिल स्टेट ऐजेन्सी के साथ संयुक्त कर दिया गया था। 1949 ई0 में टेहरी रियासत का भी अन्य भारतीय रियासतों की भांति विलीनीकरण कर दिया गया तथा टेहरी रियासत के राजा को पेन्शन दे दी गयी। टेहरी रियासत के अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तराखण्ड अंग्रेजों के द्वारा शासित किया गया। इसे प्रारम्भ में बंगाल प्रेसिडेन्सी से सम्बद्ध किया गया था। उत्तराखण्ड में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उसे कमीश्नरियों में बांटा गया था। कमीश्नरियों का प्रमुख कमीश्नर होता था। उसकी सहायता के लिये डिप्टी कमीश्नर, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, थोकदार, प्रधान, सयाणा आदि अधिकारी होते थे। उत्तराखण्ड में कमीश्नर का पद एक शक्तिशाली पद था। उत्तराखण्ड के प्रारंभिक कमीश्नरों ने तो स्वतंत्र रूप से निरंकुश शासक की भांति राज्य किया। प्रारम्भ में उत्तराखण्ड एक जिला था, परन्तु 1839 ई0 में गढ़वाल जिले का निर्माण किया गया। इस प्रकार उत्तराखण्ड में दो जिले कुमाऊँ तथा गढ़वाल(ब्रिटिश) हो गये। कालान्तर में इनमें और वृद्धि की गयी। यथा तराई जिला सन् 1842 व नैनीताल जिला 1891। कुमाऊँ कमीश्नरी के प्रारम्भिक

कमीश्नर बहुत शक्तिशाली थे। हैनरी रैमजे तक यह स्थिति बनी रही। रैमजे के बाद कमीश्नरों की स्थिति पूर्व की भांति न रही, वह केवल प्रशासक बने रहे। इन्हें अनेक न्यायिक व प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। सन् 1815 ई0 से 1947 ई0 तक उत्तराखण्ड में अनेकों कमीश्नरों का प्रशासन रहा।

1.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय

उत्तराखण्ड में इस समय हैनरी रैमजे का शासन चल रहा था। सन् 1857 की क्रान्ति का प्रभाव अभी तक उत्तराखण्ड की धरती पर नहीं पड़ा था। इस पर अंग्रेजी प्रशासन सतर्क था। अपने प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने मार्शल लॉ लगा दिया। उत्तराखण्ड के कुछ इलाकों में छोटी-छोटी घटनाएं घटित होने लगी। 17 सितम्बर 1857 में आन्दोलनकारियों द्वारा हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु कैप्टन मैक्सवल ने उन्हें पराजित कर दिया। बाद में 16 अक्टूबर 1857 ई0 को आन्दोलनकारी हल्द्वानी पर पुनः अधिकार करने में सफल रहे। परन्तु इस बार फिर उन्हें अंग्रेजी सेना ने खदेड़ दिया। उत्तराखण्ड का पड़ोसी क्षेत्र बरेली 1857 ई0 में क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। सन् 1858 ई0 में भारत का शासन कम्पनी सरकार से जाता रहा। अब भारत ब्रिटिश सरकार के हाथों में प्रत्यक्ष रूप से आ गया। महारानी विक्टोरिया को भारत के साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। साथ में भारतवर्ष में सुशासन का आश्वासन भी दिया गया। इस प्रकार सन् 1858 ई0 से उत्तराखण्ड भी साम्राज्ञी के अधीन आ गया।

1.5 सारांश

उत्तराखण्ड की शासन व्यवस्था में यहाँ के शासकों की शासन व्यवस्था व उनकी प्रशासनिक संरचना का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। 5वीं सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने-बाने में अपना प्रभाव छोड़ा, जो आज भी हमें देखने को मिलता है। हमने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तराखण्ड में प्रारम्भ के राजवंशों में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। कुणिन्द शासकों की सत्ता स्वतंत्र रही है। इसके बाद पौरव वंश का उल्लेख आता है। जिनकी प्रशासनिक व्यवस्था बहुत मजबूत थी। पौरव वंशीय शासक धार्मिक प्रवृति के थे तथा शासन को धार्मिक ग्रन्थों व स्मृतियों के अनुसार चलाने में विश्वास करते थे। उत्तराखण्ड के महत्वपूर्ण राजवंशों मे कत्यूरी शासन रहा है। कत्यूरी शासन सुव्यवस्थित व जनहितकारी थी। इसके बाद चंद, पंवार, गोरखा व अंग्रेजी शासन का प्रभाव उत्तराखण्ड में रहा जिसने उत्तराखण्ड की राजनीतिक चेतना को दिशा देने का काम किया।

1.6 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- प्रान्तों या प्रेदेशों के अधिकार में सत्ता का आवंटन करना, ग्रेन- वजन नापने की इकाई, भोटान्तिक व्यापार- भोटिया जनजाति के साथ होने वाला क्रय-विक्रय, अधिवेशन- सम्मेलन, उत्कीर्ण- उकेरे हुए या धातुओं में छपे हुए

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ताम्र धातु, **2.** पाणिनी, **3.** तीन, **4.** सिचाई वाली भूमि, **5.** कृर्षि, **6.** ग्राम, **7.** 10वीं-11वीं सदी, **8.** राजा, **9.** ग्राम प्रधान, **10.** एक प्रकार के स्थाई कृषक, **11.** नाली, **12.** सैनिक शासन, 13. मौकर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड का इतिहास- शिव प्रसाद डबराल।
2. कुमाऊँ का इतिहास- बद्री दत्त पाण्डे।
3. पाणिनी कालीन भारतवर्ष- बासुदेव शरण अग्रवाल।
4. केदार खण्ड- शिवानंद नौटियाल।
5. कुमाऊँनी भाषा साहित्य - त्रिलोचन पाण्डे।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गढ़वाल का इतिहास - पं0 हरिकृष्ण रतूड़ी।
2. स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ, गढ़वाल का योगदान- धर्मपाल सिंह मनराल।
3. उत्तराखण्डः इतिहास एवं संस्कृति- घनश्याम जोशी, चन्द्रशेखर दुम्का।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड के प्राचीन राजनैतिक इतिहास पर एक निबन्ध लिखिए।
2. उत्तराखण्ड में अंग्रेजी शासन के विकास और उसकी शासन प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 2 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन- एक पारिस्थिकी विश्लेषण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था
 2.2.1 तहसीलें
 2.2.2 कमीश्नर
 2.2.3 तहसीलदार
 2.2.4 कानूनगो
 2.2.5 पटवारी
 2.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयां
2.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढ़ाँचा
2.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना
 2.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी
 2.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति
2.5 हिमालयी राज्यों की तुलना
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

पहली इकाई में हमने उत्तराखण्ड के प्रशासनिक इतिहास पर विस्तृत चर्चा की और उत्तराखण्ड के सभी राजवंशों व उनके प्रशासनिक संगठनों व उनके कार्य प्रणालियों को समझने का प्रयास किया। पिछली इकाई में हमने जाना कि उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। 5वीं सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने-बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है।

उत्तराखण्ड की पारिस्थिकी हिमालयी प्रर्वतन-प्रक्रिया के महत्वपूर्ण एवं अत्यन्त जटिल इतिहास को प्रस्तुत करती है। हिमालय की पारिस्थितिकी के अध्ययन को हिमालय से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। राज्य का प्रथक नियोजन व प्रबन्धन प्रशासनिक इकाई के गठन का सशक्त आधार है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन की अवधारणा भी यही थी कि भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर बड़े राज्यों में समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाता है। बड़े राज्य अपने जातीय-सांस्कृतिक समुदायों की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाते हैं। उत्तर-प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र अपने

आप में भाषा, संस्कृति सहित विभिन्न भौगोलिक विशिष्टताएं लिये हुए है। इसका समुचित प्रबन्ध अलग राज्य बनने से ही हो सकता था।

इस क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए जिस प्रशासनिक ढाँचें को अंग्रेजी शासन ने बनाया और जो आज भी लगभग उसी तरह उत्तराखण्ड में लागू है। उस संरचना को भी हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे। अंग्रेजी शासन में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उत्तराखण्ड में छोटी सी प्रशासनिक इकाई का सृजन किया गया, उसे पटवारी हल्का कहा गया। जनता की सुविधा व प्रशासन की कुशलता के लिये पटवारी को राजस्व व पुलिस दोनों के अधिकार दिये गये। यह व्यवस्था आज भी पर्वतीय क्षेत्र में मौजूद है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के लिये पूर्व से ही पृथक व्यवस्थाएं थीं। उत्तराखण्ड के इन सभी प्रशासनिक पहलूओं पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक स्थिति क्या है, यह जान पायेंगे।
- राज्य की विशेष परिस्थितियाँ क्या हैं, जिस कारण ये भारत के अन्य राज्यों से भिन्न हैं। इसे जान पायेंगे।
- वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य की स्थिति के बारे में समझ पायेंगे।
- राज्य की प्रशासनिक ईकाइयाँ कौन-कौन सी हैं तथा वो अपना काम कैसे करती हैं, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशासनिक तंत्र की कार्य प्रणाली के बारे में जान पायेंगे।

2.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था

ब्रिटिश काल में इस पर्वतीय राज्य को लेकर अंग्रेजों की नीति भिन्न थी। ट्रेल ने इस व्यवस्था पर विशेष टिप्पणी करते हुए कहा कि, ''इस प्रान्त में चोरी का नितान्त अभाव और लोगों की परम नैतिकता को देखते हुए किसी भी प्रकार की पुलिस व्यवस्था अनावश्यक समझी जायेगी।'' पर्वतीय क्षेत्र में पुलिस प्रशासन का दायित्व मुख्य रूप से पटवारी, पेशकार आदि राजस्व अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया गया। अपने कार्य में उन्हें थोकदार व प्रधानों से सहायता मिलती थी। कुमाऊँ कमिश्नर रैमजे ने इस व्यवस्था को संतोषजनक बताते हुए कहा कि, ''मैं समझता हूँ कि हमारा ग्रामीण पुलिस प्रशासन पूरे भारतवर्ष में सर्वोत्तम है। इसमें परिर्वतन करना समझदारी नहीं होगी। ग्रामीण पुलिस व्यवस्था बहुत कम खर्चीली है, क्योंकि सरकार को उस पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है (भाबर पुलिस को छोड़ कर) साथ ही वेतनभोगी पुलिसकर्मियों के खर्चे से होनी वाली चिन्ताएं और मुसीबतें भी यहाँ पर नहीं हैं। ये तथ्य उसके पक्ष में हैं।'' ये व्यवस्था आज भी अधिकांश पर्वतीय हिस्सों में लागू है। आज भी पर्वतीय क्षेत्रों में पटवारी संचालित पुलिस प्रशासन व्यवस्था है।

पुलिस प्रशासन के लिये समस्त कुमाऊँ जिला एक पुलिस अधीक्षक के अधीन था। उसकी सहायता के लिये सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, इन्सपेक्टर और सब-इन्सपेक्टर होते थे। पुलिस चौकियाँ, हैड कान्सटेबल के अधीन होती थी। सन् 1838 में कुमाऊँ जिले का पुनर्गठन कर गढ़वाल और कुमाऊँ दो जिलों का निर्माण किया गया। उनके मुख्यालय क्रमशः श्रीनगर और अल्मोड़ा में स्थापित किये गये। गढ़वाल राज्य का वह भाग जो अंग्रेजों ने गढ़वाल नरेश से हस्तगत किया था, सन् 1815 में कुमाऊँ जिले का एक परगना बना दिया गया था। दोनों नवगठित

जिलों को सीनियर असिस्टेंट कमीश्नर के अधीन कर दिया गया। गढ़वाल जिले के मुख्यालय को सन् 1840 में श्रीनगर से पौढ़ी तब्दील कर दिया गया। सन् 1842 में भाबर और तराई क्षेत्र को, जिसे कि अच्छी पुलिस व्यवस्था के उदेश्य से कुमाऊँ जिले से अलग कर दिया गया था पुनः कुमाऊँ में शामिल कर दिया। सन् 1891 में कुमाऊँ जिले को अल्मोड़ा और नैनीताल दो जिलों में बांट दिया गया और इन नवगठित जिलों के प्रधान प्रशासक को डिप्टी कमीश्नर कहा गया। इस नये जिले के निर्माण का मुख्य कारण कुमाऊँ जिले का आकार घटा कर उसे प्रशासनिक दृष्टि से अधिक सुविधा जनक बनाना था। उत्तराखण्ड की प्रारम्भिक पुलिस व्यवस्था को समझने के लिए निम्नांकित व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हैं-

2.2.1 तहसीलें

अंग्रेजी शासन काल में तहसील प्रशासनिक ढाँचें की एक महत्वपूर्ण इकाई थी। आरम्भ में कुमाऊँ जिले की सात तहसीलें अल्मोड़ा, काली कुमाऊँ, पाली-पछौं, कोटा, सीर, फल्दाकोट और रामनगर में स्थापित थी। गढ़वाल तब कुमाऊँ जिले का एक परगना था और सन् 1815 में वहाँ पर श्रीनगर और कैन्यूर(चाँदपुर) में दो तहसीलें थी। सन् 1823 में प्रशासनिक खर्चे में कमी करने के उदेश्य से कुमाऊँ जिलें में कुल चार तहसीलों का प्रावधान किया गया। हजूर और काली कुमाऊँ, कुमाऊँ क्षेत्र में और श्रीनगर और चाँदपुर गढ़वाल क्षेत्र में। इस प्रकार जिलों और तहसीलों के संगठन में समय-समय पर फेर बदल होते रहे।

2.2.2 कमिश्नर

अंग्रेजी शासन के दौरान कमिश्नर ही एक मात्र ऐसा अधिकारी था जो सरकार का प्रतिनिधित्व करता था। उसके कार्य में कानून व व्यवस्था, पुलिस, कारागार, न्यायिक कार्य, राजस्व, यातायात, उत्पाद शुल्क, वन, प्रशासन आदि शामिल थे। सन् 1894 तक उसे मृत्यु दण्ड देने का अधिकार भी था। सन् 1894 से 1914 तक कमिश्नर ने सेशन जज का कार्य भार भी सम्भाला और तभी वहाँ पर एक अलग अदालत की भी स्थापना हुई। धीरे-धीरे मैदानी प्रदेश के नियम भी वहाँ लागू हो गये। प्रशासन की दृष्टि से देहरादून को एक अलग श्रेणी में रखा गया था। सन् 1815 में उसे सहारनपुर जिले में शामिल किया गया था। सन् 1815 में देहरादून को कुमाऊँ के कमीश्नर के अधीन कर दिया गया, क्योंकि मैदानी क्षेत्रों के कायदे-कानून देहरादून के पर्वतीय लोगों के लिये अनुपयोगी थे। सुपरिन्टेंडेंट देहरादून उस समय जिले का सर्वोच्च अधिकारी था। 1 मई 1829 ई0 को देहरादून को मेरठ डिवीजन में शामिल कर दिया गया। सन् 1947 में सुपरिन्टेंडेंट का पदनाम जिला मजिस्ट्रेट अथवा कलेक्टर में बदल दिया गया। वो राजस्व और अन्य करों की वसूली और कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये उत्तरदायी था। कलेक्टर का दफ्तर कलक्ट्रेट कहलाता था, जो कि जिला मुख्यालय में स्थित होता था। कलक्ट्रेट में रिकार्ड रूम, कोर्ट स्टाफ, तहसील स्टाफ और लैन्ड रिकार्ड आफिस शामिल होते थे। ऑफिस सुपरिन्टेंडेंट सभी कर्मचारियों का मुखिया होता था। प्रशासन की यह पद्धति मामूली परिर्वतन के साथ आज भी लागू है।

2.2.3 तहसीलदार

जिलों को राजस्व वसूली के लिये तहसीलों में बाँटा गया। इसका कार्यभार तहसीलदार को सौंपा गया। तहसीलदार के दफ़्तर के मुख्य कर्मचारियों में मोहरिर माल, न्यायिक मोहरिर, अहलमद, नाजिर, अमीन और कुर्क अमीन शामिल थे। रजिस्ट्रार कानूनगो भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों के संकलन और रखरखाव के लिये जिम्मेदार था। तहसील के प्रधान अधिकारी को सब-डिवीजनल आफिसर(एस0 डी0 ओ0) कहते थे। एस0 डी0 ओ0 को सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट(प्रथम श्रेणी) और असिस्टेंट कलेक्टर(प्रथम श्रेणी) भी कहते थे। एस0 डी0 ओ0 का कार्य शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी दायित्वों के अलावा राजस्व सम्बन्धी व अन्य आपराधिक मामले निपटाना, भूमि के नक्से व दस्तावेज तैयार करना तथा राजस्व का निर्धारण और वसूली करना था।

2.2.4 कानूनगो

कानूनगो राजस्व सम्बन्धी मामलों में परगने का सर्वोच्च अधिकारी होता था। परगना तहसील से छोटी प्रशासनिक इकाई थी। हालांकि अंग्रेजों के आने से पहले भी उत्तराखण्ड परगनों में विभक्त था। कानूनगो के पास पुलिस अधिकार होते थे। राजस्व भी उनके अधीन होती थी। इतिहास में इस बात की जानकारी भी मिलती है कि राजाओं के शासन काल में कानूनगों पद पर कुछ परिवारों का वंशानुगत अधिकार माना जाता था। आज कानूनगों पद पूर्ण रूप से सरकारी हो गया है जो राजकीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्यों को अपने अधिकारियों के निर्देशानुसार सम्पन्न करके अपना योगदान दे रहे हैं।

2.2.5 पटवारी

परगना कई पट्टियों में विभक्त होता था। उत्तराखण्ड में राजवंश काल में पट्टी एक प्रशासनिक इकाई थी। अंग्रेजी शासन काल में एक अंग्रेज अधिकारी वैकेट ने पटवारियों के लिये सुविधाजनक मण्डल या हल्का बनाने के उद्देश्य से इसका पुनर्गठन किया। पटवारी पट्टी का राजस्व अधिकारी था। उसे पुलिस के कुछ अधिकार भी सौंपे गये थे। पटवारी के दफ़्तर को पटवारी चौकी भी कहा जाता था। वहीं उसका निवास भी होता था। उसके क्षेत्र में यदि कोई आपराधिक घटना होती थी तो उसकी सूचना तुरन्त पटवारी को दी जाती थी। पटवारी पद की स्थापना सन् 1819 में कमीशनर ट्रेल ने लिखवाड़ के स्थान पर की थी। लिखवाड़ पहले कानूनगो के सहायक के रूप में काम करते थे। हर पट्टी में कई गाँव होते थे। गाँवों के मुखिया को पधान अथवा मालगुजार कहते थे, जिसका कार्य राजस्व सम्बन्धी एवं पुलिस दायित्वों को निभाना होता था। जिसके बदले में उसे थोड़ी जमीन आवंटित की जाती थी, जिसे पधानचारी कहते थे। पधान एक सहायक को भी नियुक्ति देता था, जिसे कोतल कहते थे। आज भी उत्तराखण्ड में परगने पट्टियों में विभक्त हैं तथा पटवारी पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद है। वो राजस्व कार्यों के साथ-साथ पुलिस का काम भी उसी भाँति कर रहा है, जैसे अंग्रेजी शासन काल में कर रहा था।

2.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयां

थोकदार एक महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा है। राजाओं के शासनकाल में थोकदार एक मंत्रीवर्गीय अधिकारी होता था। थोकदार सामान्यतः वंशागत होता था। थोकदार का कार्य पुलिस और प्रशासनिक दायित्व निभाना होता था। अंग्रेजों ने थोकदार व्यवस्था को उपयोगी बनाने के उद्देश्य से थोकदार पट्टा देने की प्रथा शुरू की, जिसमें थोकदार के अधीन आने वाले गाँव, उसके दायित्व व उसकी फीस का उल्लेख होता था। ‘हक थोकदारी’ और ‘दस्तूर थोकदारी’ ऐसे शुल्क थे जो गाँव के पधान थोकदारों को देते थे। थोकदारों को सयाना, कुमीन अथवा बूढ़ा कहा जाता था। सन् 1821 में राजस्व वसूली की जिम्मेदारी थोकदारों के बजाय मालगुजारों अथवा पधानों को दे दी गयी। सन् 1856 में उनके पुलिस अधिकार भी छीन लिये गये, परन्तु अंग्रेजी शासन के अन्त तक थोकदारों का पहाड़ी समाज में एक विशिष्ठ स्थान बना रहा।

उत्तराखण्ड के राजवंशीय काल में परगने और पट्टियाँ थीं, जिन्हें भली प्रकार से संगठित नहीं किया गया था। प्रशासनिक सुविधा के लिये सन् 1821 में उन्हें पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप कई पट्टियों का विलय कर दिया गया व कई परगनों को समाप्त कर दिया गया। कुमाऊँ क्षेत्र में परगनों की संख्या 19 से घटाकर 14 कर दी गयी। गढ़वाल क्षेत्र में यह संख्या 17 से घटाकर 12 कर दी गयी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि उचित भूमि व्यवस्था के लिये अंग्रेजी सरकार ने सन् 1815 से 1928 के बीच गढ़वाल में 12 और कुमाऊँ में 10 बन्दोबस्त किये। टिहरी राज्य में इस प्रकार के 5 बन्दोबस्त किये गये। स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड क्षेत्र में केवल एक बन्दोबस्त हुआ है।

राजस्व प्रबन्ध के लिये अल्मोड़ा जिले के 12 परगनों को 4 तहसीलों में संगठित किया गया था। रानीखेत अथवा पल्ली तहसील, अल्मोड़ा, चम्पावत और पिथौरागढ़। जौहार, दर्मा, सीरा, सोर, अस्कोट के परगने तथा अठिगाँव बल्ला और अठिगाँव पल्ला परगनों के कुछ गाँवों को मिला कर सन् 1960 में पिथौरागढ़ जिला संगठित किया गया। इस नवनिर्मित जिले में 5 तहसीलों की व्यवस्था की गयी। मुनस्यारी, धारचूला, डीडीहाट, पिथौरागढ़ एवं चम्पावत।

नैनीताल जिले के राजस्व प्रबन्ध के लिये 4 परगनों को 6 तहसीलों में संगठित किया गया। नैनीताल, हल्द्वानी, किच्छा, बाजपुर, खटीमा और काशीपुर। सन् 1997 में तराई और भाबर के परगनों और काशीपुर पट्टी को मिला कर उधम सिंह नगर जिले का गठन किया गया। इस नवगठित जिले की 5 तहसीलों में काशीपुर, बाजपुर, रूद्रपुर, किच्छा और खटीमा शामिल हैं।

सन् 1823 में अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ गढ़वाल को 11 परगनों में संगठित किया व भाबर को इसका 12वाँ परगना बनाया। गढ़वाल जिले में राजस्व व्यवस्था के लिये 12 परगनों को चार तहसीलों में विभाजित किया गया था। पौढ़ी, लैन्सडाउन, थैलीसैण और कोटद्वार। टिहरी रियासत सन् 1949 में भारतीय संघ में शामिल हुयी। उसमें 11 परगने शामिल थे। राजस्व व्यवस्था के लिये इन परगनों को टेहरी, प्रतापनगर, देवप्रयाग तहसीलों में बाँटा गया। सन् 1960 में रवाई और उत्तरकाशी परगनों को मिला कर उत्तरकाशी जिले का निर्माण किया गया।

2.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढाँचा

आजादी के समय कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल जिले थे। सन् 1949 में टेहरी रियासत को एक जिला बना कर कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिया गया। यह व्यवस्था सन् 1960 तक चली। उस दौरान चीन के साथ बिगड़ते सम्बन्धों के कारण सुरक्षा के दृष्टि से टेहरी, गढ़वाल और अल्मोड़ा के सीमान्त प्रदेशों को क्रमशः उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिलों में संगठित किया गया। इस प्रकार कुमाऊँ मण्डल में 7 जिले हो गये। जिलों की बढ़ती संख्या को देख कर सन् 1970 में गढ़वाल मण्डल की स्थापना की गयी। जिसमें उत्तरकाशी, चमोली, गढ़वाल और टेहरी जिले शामिल किये गये। सन् 1975 में देहरादून जिले को भी गढ़वाल मण्डल में मिला दिया गया। सन् 1997 में गढ़वाल, चमोली और टेहरी जिलों के कुछ भागों को मिला कर रूद्रप्रयाग जिले का गठन हुआ। इसे भी गढ़वाल मण्डल में शामिल किया गया। सन् 1970 में गढ़वाल मण्डल बन जाने के बाद कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जिले रह गये। सन् 1996 में नैनीताल जिले का तराई प्रदेश जिला उधम सिंह नगर नाम से गठित कर दिया गया। कुछ समय बाद बागेश्वर व चम्पावत क्षेत्र भी जिले बना दिये गये। ये तीनों जिले भी कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिये गये।

2.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना

9 नवम्बर, सन् 2000 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक, 2000 के अन्तर्गत उत्तरांचल (वर्तमान में उत्तराखण्ड) राज्य को देश का 27वाँ राज्य बनाया गया। 13 पर्वतीय जिलों को इस राज्य में स्थान दिया गया। राज्य के प्रथम मुख्यमन्त्री नित्यानन्द स्वामी बनाये गए तथा प्रथम राज्यपाल श्री सुरजीत सिंह बरनाला थे।

संविधान के अनुच्छेद- 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि यह राज्यों, जिसमें संघ राज्य क्षेत्र भी सम्मिलित है, के क्षेत्रों को मिलाकर नए राज्यों का निर्माण कर सकती है। संसद सामान्य बहुमत अथवा सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा नए राज्य का निर्माण, सीमा परिवर्तन या नाम बदल सकती है। लेकिन इससे पूर्व नए राज्य के निर्माण से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्यों को विधेयक विचारार्थ भिजवाता है। राज्य का विधानमण्डल विधेयक पर विचार-विमर्श करके अपने सुझावों सहित

विधेयक को निर्धारित अवधि में वापस कर देता है। सुझावों को मानना संसद के लिए आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा विचार-विमर्श की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि राज्य इस विधेयक को निर्धारित अवधि में प्रेषित नहीं करता है, तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद में ऐसे ही प्रस्तुत करवा सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य में इस आशय का विधेयक पारित होना अनिवार्य है।

2.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी

केन्द्र सरकार द्वारा उत्तराखण्ड को 1 अप्रेल, 2001 से विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया गया। विशेष राज्य का दर्जा पाने वाले सभी 11 राज्य पर्वतीय राज्य हैं। विशेष श्रेणी का दर्जा प्राप्त राज्यों को केन्द्रीय सहायता एक विशेष रियायती पैमाने पर मिलती है। अब उत्तराखण्ड को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में 90 प्रतिशत हिस्सा अनुदान का और 10 प्रतिशत ऋणों का है। जबकि अन्य राज्यों को मिलने वाली सहायता में अनुदान का भाग 70 प्रतिशत तथा ऋण का हिस्सा 30 प्रतिशत होता है। विशेष श्रेणी प्राप्त राज्यों को ये सुविधाएँ स्थायी रूप में जारी रहेंगी।

2.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्याधीन सेवाओं, शिक्षण संस्थाओं, सार्वजनिक उद्यमों, निगमों एवं स्वायत्तशासी संस्थाओं में आरक्षण हेतु शासनादेश जारी किया जिसके तहत अनुसूचित जाति 19 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति 04 प्रतिशत,अन्य पिछड़ा वर्ग 14 प्रतिशत तथा महिलाओं, भूतपूर्व सैनिकों, विकलांग व्यक्तियों तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों को क्षैतिज आरक्षण अनुमन्य होगा, जिसमें भूतपूर्व सैनिक 02 प्रतिशत, विकलांग 03 प्रतिशत तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रित 02 प्रतिशत।

आरक्षण के सम्बन्ध में स्थायी रूप से नीति का निर्धारण पृथक रूप से किया जाएगा। आरक्षण का लाभ उत्तराखण्ड के मूल निवासियों को ही प्राप्त होगा। मूल निवासी केवल उन्हीं व्यक्तियों को माना जाएगा जो कम से कम 15 वर्षों से राज्याधीन क्षेत्र में निवास कर रहे हैं।

विशेष श्रेणी प्राप्त राज्य हैं- असम सन् 1969, नागालैण्ड सन् 1969, जम्मू-कश्मीर सन् 1969, हिमाचल प्रदेश सन् 1971, मणिपुर सन् 1972, मेघालय सन् 1972, त्रिपुरा सन् 1972, सिक्किम सन् 1975, मिजोरम सन् 1975, अरूणान्चल प्रदेश सन् 1975 और उत्तराखण्ड सन् 2001 ।

2.5 हिमालयी राज्यों की तुलना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय आसाम भारत का केवल एकमात्र हिमालयी राज्य था। देश के शेष हिमालयी क्षेत्र कसी-न किसी राज्य/रियासतों का भाग थे। 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर के भारत में विलय होने के उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना था। जब भारत में विकास कार्यक्रम तथा पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित हुई तो देखा गया कि मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्र विकास दौड़ में कहीं अधिक पिछड़ रहे हैं। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मैदानी क्षेत्रों के साथ पर्वतीय क्षेत्रों का विकास भी सम्भव नहीं है तथा व्यावहारिक दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्रों का विकास मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है, क्योंकि दोनों के विकास की मूल आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ, आधार तथा मानक न केवल भिन्न हैं, बल्कि दोनों के विकास की आपसी समझ तथा अवधारणा भी भिन्न-भिन्न है। पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की भिन्न अवधारणा का सबसे प्रमुख कारण उनकी भौगोलिक, आर्थिक एवं संसाधनिक संरचना का मैदानी भागों से भिन्न होना था। भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना इस भिन्न अवधारणा का एक महत्वपूर्ण कारण था। दूसरा महत्वपूर्ण कारण था, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों को विकास के लिए एक भिन्न क्षेत्र अथवा 'विकास की एक भिन्न इकाई' के रूप में

स्वीकार किया जाना। इन्हें भारत की भिन्न सामाजिक-सांसकृतिक इकाइयों के रूप में भी चिन्हित किया गया था। इसी क्रम में पर्वतीय (हिमालयी) राज्यों की अवधारणा का जन्म और विकास हुआ। देश के अनेक बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, योजनाकारों और विभिन्न हिमालयी क्षेत्रों के निवासियों ने इस माँग को समय-समय पर आन्दोलनों के माध्यम से उठाया, फलतः हिमालयी राज्यों की अवधारणा ने मूर्त रूप ले लिया और वर्तमान समय के सभी हिमालयी राज्य अस्तित्व में आए। देखा जाए तो भारत के दक्षिण में भी पर्वतीय क्षेत्र हैं, पर वे न तो सांस्कृतिक रूप से भिन्न थे और न ही आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से ही। भारत में पर्वतीय राज्यों की अवधारणा मूलतः हिमालयी राज्यों की ही अवधारणा है। भारत में हिमालयी राज्यों के इतिहास क्रम को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

1. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सिर्फ आसाम ही देश का एकमात्र हिमालयी राज्य था।
2. 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर का भारत में विलय हुआ और उसके उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना।
3. सन् 1963 में नागालैण्ड राज्य का गठन किया गया, जो तदुपरान्त भारत का तीसरा हिमालयी राज्य बना।
4. जनवरी, 1971 में हिमालयी प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। इससे पूर्व में सन् 1966 में पंजाब के पहाड़ी भागों को भौगोलिक-सांस्कृतिक आधार पर हिमालयी प्रदेश में मिला दिया गया था।
5. सन् 1972 में त्रिपुरा तथा मणिपुर भी हिमालयी राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए।
6. सन् 1972 में मेघालय एक नया पर्वतीय राज्य बनाया गया। इससे पूर्व सन् 1970 में आसाम के दो जिलों को राजनीतिक, भाषायी एवं समाजिक-सांस्कृतिक आधार पर उपरान्त का दर्जा दिया गया था।
7. सन् 1975 में सिक्किम अपनी इच्छा से भारतीय गणराज्य में शामिल हुआ। इस प्रकार एक नया हिमालयी राज्य अस्तित्व में आया।

9 नवम्बर, 2000 में उत्तराखण्ड को भारतीय गणराज्य का 27वाँ तथा 11वाँ हिमालयी राज्य बनाया गया है। वर्तमान समय में इन हिमालयी राज्यों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है-

राज्य निर्माण की अवधि	राज्य	विधायकों की संख्या	लोकसभा के सांसदों की संख्या	आरक्षित	
				एससी	एसटी
सन् 1947 से पूर्व	असम	126	14	02	01
सन् 1947	जम्मू-काश्मीर	87	06	-	-
सन् 1966	नागालैण्ड	60	01	-	-
सन् 1971	हिमांचल प्रदेश	68	04	-	-
सन् 1972	मणिपुर	60	02	01	-
सन् 1972	मेघालय	60	02	02	-
सन् 1972	त्रिपुरा	60	02	01	-
सन् 1975	सिक्किम	32	01	-	-
सन् 1978	मिजोरम	40	01	01	-
सन् 1987	अरूणांचल प्रदेश	40	02	02	-
सन् 2000	उत्तराखण्ड	70	05	-	01

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में 11 राज्य बनाने के उपरान्त भी वर्तमान समय में फिर यह महसूस किया जाने लगा है कि देश के सामान्य भाग विकास और हिमालयी क्षेत्रों के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं में भी अन्तर है।

विकास के सन्दर्भ में सभी हिमालयी राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। हिमालयी राज्यों के पूर्ण विकास पर विमर्श के लिए एक नयी परिषद् के लिए 'हिमालयी विकास प्राधिकरण' की माँग की जाने लगी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. कुमाऊँ जिले को कुमाऊँ और गढ़वाल में कब बाँटा गया?
2. सन् 1838 में कुमाऊँ और गढ़वाल जिले का मुख्यालय कहाँ-कहाँ था?
3. तहसील के प्रधान अधिकारी को क्या कहते थे?
4. तहसील की छोटी प्रशासनिक इकाई को क्या कहा जाता था?
5. थोकदार को अन्य किन नामों से जाना जाता था?
6. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा कब प्राप्त हुआ?
7. केन्द्रीय सहायता में कितना भाग अनुदान का होता है?
8. उत्तराखण्ड राज्य में लोक सभा की कितनी सीटें हैं?
9. हिमालयी राज्यों में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?
10. भारतीय गणराज्य में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमने ये जाना कि पर्वतीय जिलों में प्रशासन की एक अनोखी व्यवस्था थी, जो भारत में अन्य कहीं नहीं पायी जाती थी। पटवारी की पुलिस के रूप में कार्य करना यहाँ की सबसे अनूठी प्रणाली है। पटवारी, पट्टी का सबसे बड़ा प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह प्रणाली अंग्रेजी शासन काल से आज भी जस की तस चली आ रही है। राजस्व कार्यों के अलावा राजस्व पुलिस की यह व्यवस्था केवल उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। तहसीलदार, कानूनगो, परगनों के अधिकारी लगान व राजस्व के कार्यों के साथ-साथ न्याय का कार्य भी करते थे। यह परम्परा आज भी चली आ रही है। देश में स्वाधीनता के बाद शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली का सुभारम्भ किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य है कि जनता हितकारी विकास कार्यों में स्वयं पहल करे। इस प्रणाली को स्वशासन के नाम से जाना जाता है। स्वशासन की इस प्रणाली ने उत्तराखण्ड राज्य में नये प्रशासकीय व्यवस्था को विस्तार देने का काम किया है।

2.7 शब्दावली

परगना- प्रशासन की छोटी इकाई, होरिजेंटल- क्षेतिज, लगान- एक प्रकार का कर, त्रिस्तरीय- तीन स्तर पर

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1838 में, **2.** अल्मोड़ा व श्रीनगर, **3.** एस0 डी0 ओ0, **4.** परगना, **5.** सयाना, कुमीन, बुढ़ा, **6.** 90 प्रतिशत **7.** 1अप्रैल 2001, **8.** पांच, **9.** 11वां, **10**. 27वां

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जे0 एच0 बैटन- आफिसीयल रिपोर्ट आन द प्राविन्स ऑफ कुमाऊँ।
2. एम0 एस0 बर्थवाल- गढ़वाल में कौन कहाँ।
3. एस0 पी0 डबराल- उत्तराखण्ड का इतिहास।

4. एस0 पी0 नैथानी- उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. उमा प्रसाद थपलियाल- उत्तरांचल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आयाम।
2. पी0 एस0 नयाल- स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान।
3. बी0 डी0 पाण्डे- कुमाऊँ का इतिहास।
4. प्रो0 शेखर पाठक- संपादक, पहाड़ पत्रिका।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड में प्रारम्भिक पुलिस व्यवस्था का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. हिमालयी राज्यों के इतिहास पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई- 3 केन्द्र-राज्य सम्बन्ध- विधायी और प्रशासनिक

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन
3.3 विधायी सम्बन्ध
3.4 प्रशासनिक सम्बन्ध
3.5 अवशिष्ट शक्तियाँ
3.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति
3.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना
3.6.1 राज्यः विधायी संरचना
3.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना) राज्यपाल
3.6.2.1 राज्यपाल की स्थिति
3.6.2.1 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
3.6.3 राज्य मन्त्रिपरिषद्
3.6.3.1 राज्य मन्त्रिपरिषद् का गठन
3.6.3.2 राज्य मन्त्रिपरिषद् की कार्यकाल
3.6.4 मन्त्रियों की नियुक्ति
3.6.5 राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद् के मध्य सम्बन्ध
3.6.6 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
3.6.6.1 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियां
3.6.6.2 महाधिवक्ता
3.6.7 शासन के विभाग एवं कार्यालय
3.6.8 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने उत्तराखण्ड में प्रशासनिक इकाईयों का विस्तृत अध्ययन किया। जिससे हमने जाना कि उत्तराखण्ड में राजवंशीय काल व अंग्रेजी शासन काल में किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाया गया था और कमिश्नरी से लेकर पटवारी तक किस प्रकार प्रशासनिक तंत्र कार्य करता था? इस पर विस्तृत चर्चा की गयी। इस इकाई में ये भी जाना गया कि उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक संरचना क्या है और वह कैसे काम कर

रही है तथा इस बात का भी अध्ययन किया गया कि आज भी बहुत सी प्रशासनिक प्रणाली वैसे ही कार्य कर रही हैं जैसे कि अंग्रेजी या राजवंशीय शासन काल में करती थी। अब हम इकाई तीन में राज्यों का केन्द्र के साथ सम्बन्धों की चर्चा करने जा रहे हैं।

भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है। परन्तु उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। कुछ आलोचक हालांकि यह कहते नहीं चूकते कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण जिस आधार पर किया गया है, उससे राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं की भाँति हो गयी है। आलोचक चाहे कुछ भी कहें, भारतीय संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण कर दोनों को मजबूती देने का प्रयास किया है। हमारे संविधान के अनुच्छेद-1 में भारत को ''राज्यों का संघ'' कहा गया है। भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है परन्तु निश्चय ही उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। भारत वास्तव में एक संघ है, यद्यपि यहाँ केन्द्र अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम संघ और राज्यों के आपसी सम्बन्धों की समीक्षा करे। भारत इस समय कठिन दौर से गुजर रहा है। केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संवैधानिक विभाजन के अतिरिक्त केन्द्र राज्य का एक विशिष्ट लक्षण है- केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला अतिरिक्त संवैधानिक तत्व। इन सभी तत्वों व संविधान द्वारा दिये गये प्रावधानों का हम इस इकाई अध्ययन करेंगे तथा केन्द्र और राज्य के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- केन्द्र और राज्य कैसे काम करते हैं, इसे जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्य सम्बन्धों की संवैधानिक व्यवस्था और शक्तियों का आवंटन के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी प्रशासनिक सम्बन्ध के विषय में जान पायेंगे।
- केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध उत्तराखण्ड के परिपेक्ष में क्या रहे हैं, इसके सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- राज्य गठन से पूर्व केन्द्र की भूमिका व राज्य गठन के बाद केन्द्र की भूमिका को समझ पायेंगे।

3.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन

हम उपर चर्चा कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद-1 में कहा गया है कि ''इण्डिया अर्थात भारत राज्यों का संघ होगा।'' संघ तथा घटक इकाईयों के बीच सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग-11, 12, 13 और 18 में पर्याप्त रूप से की गयी है। भाग-11 दो अध्यायों में विभाजित है। अध्याय-1 में विधायी शक्तियों और सम्बन्धों की (अनुच्छेद 245 से 363) चर्चा की गयी है। अध्याय- 2 प्रशासनिक सम्बन्धों से सम्बन्धित है। संविधान के अनुच्छेद- 256 से 263 तक इन सम्बन्धों के बारे में चर्चा की गयी है। भाग-12 में चार अध्याय हैं, जिनमें वित्तीय मामलों का वर्णन किया गया है। संविधान का भाग 18 संकटकालीन उपबन्धों से सम्बन्धित है। इन सम्बन्धों की चर्चा संविधान के अनुच्छेद- 352 से 360 में की गयी है। केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को जानने के लिये दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को जानना अति-आवश्यक है।

3.3 विधायी सम्बन्ध

अनुच्छेद- 245 से 255 में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का घोषणा-पत्र है। संसद भारत के समूचे राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकती है। केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों का संचालन तीन सूचियो संघ, राज्य व समवर्ती सूची के आधार पर होता है। इन सूचियों को संविधान की 7वीं अनुसूची में रखा गया है। किसी राज्य का विधानमण्डल समूचे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकता है। राज्य की कोई विधि शून्य हो जाऐगी, यदि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होता है। (कोचीन बनाम मद्रास राज्य, ए0आई0आर0 1960 एस0सी0 1080) और जब तक कि उद्देश्य तथा राज्य के बीच पर्याप्त सम्बन्ध नहीं दर्शाया जा सकता (बम्बई राज्य बनाम आर0एम0डी0सी0, ए0आई0आर0 1957, एस0सी0 699, टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी बनाम बिहार राज्य, ए0आई0आर0 1958, एस0सी0 452)। लेकिन संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के बारे में राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन के आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती (अनुच्छेद- 245)। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां है अर्थात् संघ सूची, समवर्ती सूची और राज्य सूची, जिनमें क्रमशः 97, 52 और 66 मदें(विषय) हैं। अनुच्छेद- 246 में व्यवस्था है कि संघ सूची की मदों के बारे में संसद को विधियां बनाने की अनन्य अधिकारिता होगी, राज्य सूची की मदों में राज्य के विधानमण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्तियां प्राप्त होगी और समवर्ती सूची में शामिल मदों में केन्द्र एवं राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार होगा। यदि समवर्ती सूची के मदों के बारे में संघ के संसद एवं राज्य के विधान मण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो उन परिस्थितियों में संघ के संसद द्वारा बनाई गई विधियां प्रभावी रहेंगी और राज्य की विधि उस विसंगति की मात्रा तक शून्य रहेगी, सिवाय उस स्थिति के जहाँ राज्य की विधि राष्ट्रपति के पर विचार हेतु आरक्षित रखी गई हो और उस पर उसकी सहमति मिल गई हो (अनुच्छेद- 245)। साथ ही संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि, करार, अभिसमय अथवा विनिश्चय को कार्यरूप देने के लिए समूचे देश या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बना सके।

संघ सूची में ऐसे विषय शामिल हैं, जिनका सम्बन्ध संघ के सामान्य हित से है और जिनके बारे मे समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता अनिवार्य है। राज्य सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं, जो हित तथा व्यवहार की विविधता की छूट देते हैं। समवर्ती सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं जिनके बारे में समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता वांछनीय तो है पर अनिवार्य नहीं है, भले ही राज्य सूची में शामिल विषयों के बारे में राज्यों को अनन्य शक्तियां प्रदान की गई है। पर इस सामान्य नियम के दो अपवाद है। अनुच्छेद- 249 के अधीन यदि राज्य सभा के उपस्थित तथा मत देने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प के जरिए यह घोषणा कर दी जाए कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि राज्य सूची में शामिल किसी विषय के बारे में संसद विधियां बनाए तो समूचे भारत या उसके किसी भाग के लिए उस विषय के बारे में संसद विधियां बनाने के वास्ते सक्षम होगी। ऐसा संकल्प एक वर्ष तक वैध रहता है। उसकी अवधि को और एक वर्ष के लिए बाद के संकल्प द्वारा बढाया जा सकता है। ऐसे संकल्प के अधीन बनाई गई विधि संकल्प की अवधि बीत जाने के बाद 6 मास की समाप्ति के बाद प्रभावी नहीं रहेगी। पुनः अनुच्छेद- 250 के अधीन, जब आपात की घोषणा लागू हो तो संसद को अधिकार दिया गया है कि वह समूचे भारत या उसके किसी भाग के वास्ते राज्य सूची में शामिल किसी मद के लिए विधियां बना सकती है। ऐसी विधियों की वैधता की अधिकतम अवधि आपात की समाप्ति के बाद मास की होगी।

यदि अनुच्छेद- 249 तथा 250 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधियां तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी और राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी और संसद द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहेगी। (अनुच्छेद- 251)

अनुच्छेद- 252 के अनुसार दो या दो अधिक राज्यों के विधानमण्डल एक संकल्प पारित करके संसद से अनुरोध कर सकते हैं कि वह राज्य सूची के किसी विषय के बारे में विधियां बनाए। ऐसी विधियों का विस्तार अन्य राज्यों पर किया जा सकता है, बशर्ते कि सम्बद्ध राज्यों के विधानमण्डल उस आशय के संकल्प पारित करें।

3.4 प्रशासनिक सम्बन्ध

संविधान के अनुच्छेद- 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद- 162 के अनुसार राज्यों की शक्तियां उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानमण्डलों को कानून बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद- 256 से अनुच्छेद- 265 तक संघ तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों के विनियमन की व्यवस्था करते है। संघात्मक प्रणालियों में सामान्यतया ऐसा होता है कि संघ तथा राज्यों के आपसी प्रशासनिक सम्बन्ध झमेलों से ग्रस्त रहते हैं। भारत के संविधान का उद्देश्य है कि दोनों स्तरों के बीच सम्बन्धों का निर्वाह सहज रूप से होता रहे। वह उपबंध करता है कि राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार हो कि संसद द्वारा बनाई गई विधियों का पालन सुनिश्चित हो सके। संघ की कार्यपालिका को राज्यों को ऐसे निर्देश देने का भी अधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।

इसी प्रकार अनुच्छेद- 257 का उपबंध है कि हर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि वह संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में बाधक न हो। संघ इस सम्बन्ध में तथा रेलों के संरक्षण एवं राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार-साधनों को बनाए रखने के बारे में आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। केन्द्रीय निर्देशों के पालन में जो अतिरिक्त व्यय राज्य करेगा, केन्द्र उसकी भरपाई राज्य को करेगा। अनुच्छेद- 261 का उपबंध निर्देश देता है कि भारतीय राज्य क्षेत्र के सभी भागों में संघ तथा राज्यों के सार्वजनिक कार्यों, अभिलेखों तथा न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास एवं पूरी मान्यता दी जाएगी। यह बात संघ एवं राज्यों के आपसी सम्बन्धों के सुचारू निर्वाह में अति सहायक होती है। अन्तर्राज्यिक नदियों पर संसदीय नियंत्रण तथा अंतर्राज्यिक जल-विवादों के न्याय-निर्णयन सम्बन्धी उपबंधों के कारण संघ तथा राज्यों के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच संघर्ष की ढेर सारी संभावनाएं समाप्त हो गई हैं (अनुच्छेद- 262)। वास्तविकता तो यह है कि संविधान-निर्माता किसी बात की सम्भावना नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने अन्तर्राज्यिक परिषदों की व्यवस्था की। अनुच्छेद- 263 राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यिक परिषद की स्थापना का अधिकार प्रदान करता है। इन परिषदों को उद्देश्य है कि वे राज्यों के आपसी विवादों तथा राज्यों के या संघ एवं राज्यों के सामन्य हित के आपसी मामलों के बारे में जाँच करें और उन्हें सलाह दें तथा नीति एवं कार्यवाही के बेहतर समन्वय के बारे में सिफारिशें करे।

अनुच्छेद- 258 के अधीन राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से सम्बन्धित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है। इसी प्रकार अनुच्छेद- 258 के अधीन किसी राज्य का राज्यपाल भारत सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से सम्बन्धित कृत्य सौंप सकेगा, जिन पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

प्रशासनिक सम्बन्धों के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार राज्यों पर आश्रित रहती है। प्रत्येक संघ में दो प्रकार की सेवाओं का प्रावधान होता है। प्रथम संघीय या केन्द्रीय सेवाएं व द्वितीय राज्य की सेवाएं। ये दोनों सेवाएं अपने-अपने क्षेत्र में

काम करती हैं। भारत में संघीय सेवाएं न होने के कारण उसे अपनी विधियों को लागू करने के लिये राज्य की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में केवल अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

3.5 अवशिष्ट शक्तियाँ

अवशिष्ट शक्तियाँ वे शक्तियाँ होती हैं,जिनका उल्लेख किसी भी सूची में नहीं होता। यह तथ्य है कि संविधान निर्माता चाहे कितने ही सावधान और सतर्क क्यों न रहें वे ऐसी व्यापक सूची नहीं बना सकते जिसमें समस्त शासकीय शक्तियां का स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया हो। वर्तमानकाल की परिवर्तनशील परिस्थितियों में नित्य नये विषय उत्पन्न होते रहते हैं। आज से दो पीढ़ी पूर्व कोई भी यह नहीं समझता था कि वायुपथ पर भी शासकीय नियंत्रण की आवश्यकता होगी। परन्तु विभागों के विकास और वायु यातायात के प्रसार के कारण वायुपथ पर सरकारी नियम होना आवश्यक ही नहीं वरन् परम आवश्यक हो गया है। अतः प्रत्येक संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियों को संघ के किसी पक्ष को सौंप देता है। वर्तमान संघ राज्यों में से संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संविधान ऐसे हैं जो इकाईयों को अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान करते हैं, परन्तु कनाडा के संविधान में यह शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान की गयी है। यही शक्ति भारतीय संविधान द्वारा भी केन्द्र को सौंपी गयी है। संघ सूची में से किसी भी विषय पर संसद अतिरिक्त न्यायालय स्थापित कर सकती है। साथ ही संसद को यह अधिकार भी है कि किसी देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से की गई संधि, करार अथवा उपसंधि के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कानून बनाये। इन सब का प्रभाव है कि संघीय शासन, राज्यों की तुलना में सबल रहेगी।

3.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति

राज्य सूची में दिये गये विषयों पर राज्य विधानमण्डलों को विधि निर्माण करने को अनन्य अधिकार प्राप्त है। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिये तथा कुछ विशेष अवस्थाओं में संघीय संसद उन विषयों पर भी विधि-निर्माण कर सकती है जो केवल राज्यों के क्षेत्राधिकार में है। इन विधि-निर्माण के क्षेत्रों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. यदि राज्य सभा उपस्थित व मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा यह प्रस्ताव पारित कर देती है कि वैसा करना राष्ट्रीय हित की दृष्टि से आवश्यक है तो संसद राज्य सूची में वर्णित किसी भी विषय पर विधि निर्माण कर सकती है। यह प्रस्ताव एक बार पारित हो जाने के उपरान्त एक वर्ष तक प्रभावी रहेगा, परन्तु राज्यसभा जितनी बार चाहे उसे पुनः पारित करके उसकी अवधि बढ़ाती रह सकती है। जब तक यह प्रस्ताव प्रभावी रहेगा, तब तक संसद उसमें वर्णित विषयों पर विधि निर्माण कर सकती है।
2. अनुच्छेद- 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा की गयी आपातकालीन घोषणाओं के दौरान, राज्य सूची के किसी भी विषय पर समस्त भारत व उसके किसी भी भाग के लिये, संसद विधि निर्माण कर सकती है। आपातकालीन घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद ऐसी विधियाँ, उस मात्रा में जिसमें वे संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों प्रभावहीन हो जायेंगी।
3. यदि किसी भी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाती है तो राष्ट्रपति संवैधानिक विफलता से उत्पन्न आपात की घोषणा करके सम्बन्धित राज्य के लिये विधियाँ निर्मित करने की शक्ति संसद को दे सकता है। ऐसे सम्बन्धित राज्य के लिये संसद राज्य सूची में वर्णित विषयों पर विधियाँ बना सकती है।
4. यदि दो या दो अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पारित करके संसद से अनुरोध करें कि वह उनके लिये किसी राज्य सूची के विषय पर संयुक्त विधि बना दे तो वह ऐसा कर सकती है। बाद में इस प्रकार की

विधि को अन्य राज्य भी अपने यहाँ के विधानमण्डलों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव पारित करके स्वीकार कर सकते हैं। संसद को किसी संधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संविदा को कार्यान्वित कराने के लिये ऐसी विधियां निर्मित करने की शक्ति है जो आवश्यक हो, भले ही उन विधियों का सम्बन्ध राज्य सूची के विषयों से ही सम्बन्धित क्यों न हो।

3.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना

फरवरी, 2002 में उत्तराखण्ड विधानसभा के लिए पहली बार चुनाव सम्पन्न हुए। 927 व्यक्तियों ने चुनाव में भाग लिया जिसमें 58 महिला उम्मीदवार थी। मात्र 4 महिलाएँ ही चुनाव जीत सकीं जो कुल विधानसभा सदस्यों की संख्या का 3.67% है। कुल 54.34% मतदान हुआ। 70 सदस्यों की विधानसभा में 3 क्षेत्र अनुसूचित जनजाति व 12 क्षेत्र अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित थे।

जनपदवार राज्य के विधानसभा क्षेत्र-

क्र0सं0	जनपद	विधानसभा क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	3
9	अल्मोड़ा	7
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	7
12	चम्पावत	2
13	पिथौरागढ़	5

प्रथम निर्वाचित विधानसभा में कांग्रेस ने 36 क्षेत्र जीतकर बहुमत प्राप्त कर लिया। तीन बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे नारायण दत्त तिवारी को राज्य के राज्यपाल सुरजीत सिंह बरनाला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलाई। नित्यानन्द स्वामी तथा भगत सिंह कोश्यारी के पश्चात श्री तिवारी राज्य के तीसरे मुख्यमन्त्री बने। श्री तिवारी राज्य के प्रथम निर्वाचित मुख्यमन्त्री थे। श्री तिवारी ऐसे प्रथम व्यक्ति है, जिन्हें दो राज्यों का मुख्यमन्त्री बनने का श्रेय प्राप्त है। श्री यशपाल आर्या को विधानसभा का अध्यक्ष चुना गया। श्री भगत सिंह कोश्यारी को विधानमण्डल दल का नेता चुना गया जो विधानसभा में विपक्ष के नेता चुने गए थे। श्री निजामुद्दीन बहुजन समाज पार्टी तथा श्री काशी सिंह उत्तराखण्ड क्रान्ति दल के नेता चुने गए थे।

राज्य के प्रथम चुनावों में प्रमुख राष्ट्रीय दलों तथा सभी क्षेत्रीय दलों ने विधानसभा के लिए अपने-अपने प्रत्याशियों को उम्मीदवार बनाया।

वर्तमान परिसीमन के आधार पर जिलेवार विधान सभा क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार हो गयी है-

क्र0सं0	जनपद	विधानसभा क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	2
9	अल्मोड़ा	5
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	9
12	चम्पावत	3
13	पिथौरागढ़	5

अनूसुचित जनजातियों हेतु आरक्षित 3 विधानसभा क्षेत्र हैं- चकराता(देहरादून), खटीमा(ऊधमसिंह नगर) और धारचूला(पिथौरागढ़)

3.6.1 राज्य की विधायी संरचना

राज्य में कुल लोकसभा क्षेत्रों की संख्या- 5 (गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी व हरिद्वार (सुरक्षित))। राज्य में कुल राज्यसभा क्षेत्रों की संख्या- 3 राज्य में कुल विधानसभा क्षेत्रों की संख्या- 70 और विधायक राज्यपाल द्वारा एंग्लो-इण्डियन समुदाय से मनोनीत एक सदस्य, कुल 71 विधायक।

राज्य का विधानमण्डल एक सदनात्मक (विधानसभा) है। अनुसूचित जाति के लिए 12 क्षेत्र आरक्षित तथा अनुसूचित जनजाति के लिए 3 क्षेत्र आरक्षित हैं।

3.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना): राज्यपाल

भारत के संविधान के अनुच्छेद-1 में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। केन्द्र में जिस प्रकार राष्ट्रपति, कार्यपालिका का प्रमुख (अध्यक्ष) होता है उसी प्रकार राज्यों में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। भारत में केवल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में लगभग वैसी ही शासन व्यवस्था अपनायी गई है, जैसी केन्द्र में अर्थात् संसदीय शासन व्यवस्था। संसदीय शासन में कार्यपालिका का अध्यक्ष वास्तविक शक्तियों का उपयोग नहीं करता, बल्कि वास्तविक अधिकार मन्त्रिपरिषद् के हाथों में होते है। राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मन्त्रिपरिषद् होती है। आमतौर पर राज्यपाल अपनी शक्तियों का उपयोग मुख्यमन्त्री व मन्त्रिमण्डल की सलाह से करेगा, जो कि राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु संविधान के अनुसार राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का उपयोग करते समय राज्यपाल राष्ट्रपति के

प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन व्यवस्था में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मन्त्रिपरिषद् राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है।

संविधान के अनुच्छेद-153 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा। सन् 1956 में किए गए संशोधन के अनुसार एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल के रूप में भी नियुक्त किया जा सकता है। सन् 1972 में उत्तर-पूर्व क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के पाँच राज्यों नागालैण्ड, असोम, मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त किया गया। अनुच्छेद-154 के अनुसार राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में उसी प्रकार निहित होगी, जैसी कि संघ में राष्ट्रपति को प्राप्त हैं। राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति के समान किसी निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित नहीं होता, बल्कि अनुच्छेद- 155 के तहत् राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।

3.6.2.1 राज्यपाल की स्थिति

संविधान द्वारा राज्यों में भी संघीय क्षेत्र के समान संसदीय शासन की व्यवस्था की गई है और संसदीय व्यवस्था में शासन की शक्तियाँ ऐसी मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है, जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हो। अतः मन्त्रिपरिषद् राज्य की वास्तविक प्रधान है और राज्यपाल केवल एक संवैधानिक प्रधान। संविधान के अनुच्छेद-163(1) के अनुसार जिन बातों में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कार्यों का निर्वहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होती है। संविधान, राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता। केवल असम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैण्ड के राज्यपाल को ही इस प्रकार की स्वविवेक की शक्तियाँ प्राप्त हैं। अतः राज्यपाल राज्य शासन का निर्विवाद वैधानिक अध्यक्ष है।

3.6.2.2 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

राज्य प्रसाशन में राज्यपाल की वही स्थिति है जो संघीय शासन में राष्ट्रपति की होती है अर्थात् राज्यपाल राज्य शासन का संवैधानिक अध्यक्ष तो है, किन्तु वास्तिविक शक्तियाँ मन्त्रिपरिषद् में निहित है। राज्यपाल केवल स्वविवेकी शक्तियों को छोड़कर अपनी अन्य सभी शक्तियों का उपयोग मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से करता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के अनुसार, ''उन सिद्धान्तों के अनुसार, जिन पर राज्यों का शासन आधारित है, राज्यपाल को प्रत्येक दशा में मन्त्रिपरिषद् का परामर्श अवश्य मानना होगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना होगा, जिसके कारण उसे अपने स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना पड़े।''

राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियाँ उसकी वास्तविक स्थिति को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाती है। किन्तु हाल के वर्षो में राज्यपाल का पद काफी विवादास्पद हो गया है।

3.6.3 राज्य मन्त्रिपरिषद्

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 163 के अनुसार राज्य में राज्यपाल को परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है। राज्यपाल द्वारा स्वविवेकी कार्यो को छोड़कर अन्य सभी शासकीय कार्यों में मन्त्रिपरिषद्, राज्यपाल को परामर्श देगी। राज्य मन्त्रिपरिषद् राज्य की वास्तविक कार्यापालिका है, क्योंकि वास्तव में राज्य की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राज्य मन्त्रिपरिषद् में निहित है। राज्य मन्त्रिपरिषद् का प्रधान मुख्यमन्त्री होता है।

3.6.3.1 राज्य मन्त्रिपरिषद् का गठन

अनुच्छेद-163 के अनुसार, राज्यपाल को उसके विवेकाधीन कृत्यों को छोड़कर अन्य कार्यों में सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा। मन्त्रिपरिषद का गठन राज्यपाल द्वारा किया जाता है।

राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है तथा मुख्यमन्त्री की सलाह पर वह अन्य मन्त्रियों को भी नियुक्त करता है। मन्त्रिपरिषद् में सामान्यतः उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है जो राज्य विधानसभा या राज्य विधानपरिषद् के सदस्य हों। किन्तु विशेष परिस्थितियों में मन्त्रिपरिषद् में ऐसे व्यक्तियों को भी शामिल किया जा सकता है, जो इनके सदस्य न हों। किन्तु, इस प्रकार नियुक्त सदस्य को 6 माह के भीतर इनमें से किसी का सदस्य बनना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उनका मन्त्री पद स्वतः ही समाप्त हो जाता है, किन्तु संविधान में यह व्यवस्था नहीं दी गई है कि ऐसा व्यक्ति त्यागपत्र देकर पुनः मन्त्रिपरिषद् का सदस्य बन सकता है या नहीं। सरकार इस प्रावधान का लाभ उठाते हुए पुनः उस व्यक्ति को मन्त्रिपरिषद् में शामिल कर लेती है।

3.6.3.2 मन्त्रिपरिषद् का कार्यकाल

मन्त्रिपरिषद् तब तक कार्यरत रहती है, जब तक मुख्यमन्त्री अपने पद बना रहता है। मुख्यमन्त्री के त्यागपत्र देने या बर्खास्त होने से मन्त्रिपरिषद् स्वतः ही विघटित हो जाती है।

1. राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद- राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी है और मन्त्रिपरिषद् वास्तिविक कार्यपालिका होती है। संविधान में वर्णित राज्यपाल की सत्ता को स्वीकृत कर लिया जाए तो राज्यपाल राज्य का वास्तविक शासक बन जाता है। मन्त्रिगण राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही पदासीन रहेंगे अर्थात् मन्त्रिपरिषद् तब तक पदासीन रहेगा जब तक उसे विधानसभा का बहुमत या समर्थन प्राप्त है। सामान्य स्थिति में राज्यपाल से मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के आधार पर ही कार्य करने की आशा की जाती है। अनुच्छेद- 167 के अनुसार मुख्यमन्त्री का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन सम्बन्धित मंत्रिपरिषद् के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को दे। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मन्त्रिपरिषद् की सलाह के बिना भी कार्य कर सकता है। जैसे संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर इस परिस्थितियों में राज्यपाल मंत्रिपरिषद् को बर्खास्त कर सकता है।
2. **अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति-** मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। संविधान में न तो मन्त्रियों की संख्या निश्चित की गई है और न ही श्रेणियाँ। मन्त्रिपरिषद् का आकार राज्य की परिस्थिति तथा मुख्यमन्त्री की इच्छानुसार बदलता रहता है। किसी राज्य का मुख्यमन्त्री चाहे तो उपमुख्यमंत्री पद की व्यवस्था कर सकता है। राज्य स्तर पर भी मन्त्रिपरिषद् में चार स्तर के मंत्री होते है- कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव। कैबिनेट स्तर तथा राज्य स्तर के मंत्री एक या एक से अधिक विभागों का कार्यभार सम्भालते हैं। उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नीचे दर्जे के मंत्री होते हैं। वे कैबिनेट मन्त्रियों व राज्यमन्त्रियों के सहायक के रूप में कार्य करते हैं। उन्हें मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में वे तब भी भाग ले सकते हैं, जबकि उनके विभाग से सम्बन्धित मंत्री अनुपस्थित होता है। मुख्यमंत्री ही मन्त्रियों में विभागों के बंटवारे से सम्बन्धित आदेश जारी करवाता है।

3.6.4 मंत्रियों का कार्यकाल

सभी मन्त्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करेंगे। प्रसादपर्यन्त का तात्पर्य है- राज्यपाल के प्रति मन्त्रि का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व। अर्थात् मुख्यमंत्री के आदेशों का उल्लंघन करने या मन्त्रिपरिषद् के विरूद्ध आचरण करने पर किसी भी मंत्री को राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर बर्खास्त कर सकेगा। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी और विधानसभा का विश्वास प्राप्त रहने तक ही अपने पद रह सकेगी।

मन्त्रिपरिषद् का कोई भी मंत्री, जो निरन्तर 6 माह की अवधि तक राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं है, अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करते समय राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं है और मंत्री अपना पद

धारण करने के पश्चात भी वह 6 माह तक राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं था, तो छः माह की अवधि बीत जाने पर वह मंत्री, मन्त्रि पद पर नहीं रह सकेगा।

3.6.5 राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद् के मध्य सम्बन्ध

अनुच्छेद-163 (1) के अनुसार यद्यपि राज्यपाल भी मुख्यमंत्री (मन्त्रिपरिषद्) की सलाह के अनुसार कार्य करेगा तथापि इस अनुच्छेद में राज्यपाल की कुछ 'विवेकाधीन शक्तियों' का भी उल्लेख है, जिनके पालन में वह मुख्यमंत्री की सलाह लेने को बाध्य नहीं है। अनुच्छेद-163 (2) के अनुसार यदि वह प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसमें राज्यपाल को संविधान के अनुसार अपने विवके से कार्य करना चाहिए, तो उस स्थिति में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं। यह उल्लेखनीय है कि राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए करता है।

प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सम्मुख अपना पद ग्रहण करने से पूर्व पद एवं गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है। संविधान के अनुच्छेद-164 के अनुसार मन्त्रियों को जो मासिक वेतन तथा भत्ते मिलते हैं, वह समय-समय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा निश्चित किये जाते हैं।

3.6.6 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

मन्त्रिपरिषद् के निर्माण के लिए सबसे महव्वपूर्ण कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना है। अनुच्छेद- 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमन्त्री के परामर्श कर करेगा। मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु वास्तव में राज्यपाल बहुमत दल के नेता को ही सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। यदि विधानसभा में किसी भी दल का बहुमत न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

3.6.6.1 मुख्यमन्त्री के कार्य एवं शक्तियाँ

राज्य सरकार का वास्तिविक प्रधान मुख्यमन्त्री होता है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष बनाया गया है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमन्त्री में निहित है, उसी प्रकार राज्य में राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख है, किन्तु वास्तविक प्रधान मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री बहुमत दल का नेता होता है। वह राज्य का नायक और मुख्य प्रवक्ता भी होता है। मुख्यमन्त्री के व्यक्तित्व तथा राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य का आर्थिक तथा समाजिक विकास निर्भर है।

राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के संकेत के माध्यम से चलाया जाता है। वह राज्य शासन का कप्तान है तथा राज्य मन्त्रिमण्डल में उसकी विशिष्ट स्थिति होती है अर्थात् वह राज्य का वास्तविक शासक होता है।

राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री को अनेक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जैसे-

1. मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है और मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
2. राज्यपाल को राज्यशासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी निर्णयों से अवगत कराता है।
3. कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
4. विधानसभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यो की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तरदायित्व मुख्यमन्त्री पर भी होता है।
5. मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के मध्य विभागों का बँटवारा करता है।

6. मन्त्रिमण्डल के पुनर्गठन की शक्ति भी मुख्यमन्त्री को प्राप्त है। यदि वह आवश्यक समझे तो मन्त्रिमण्डल का विस्तार या संकुचन कर सकता है।
7. मुख्यमन्त्री राज्यपाल का प्रमुख सलाहकार होता है।
8. राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ राज्यपाल से परामर्श करके करवाता है।
9. मुख्यमन्त्री ही राज्य प्रशासन का मुख्य शासक होता है।

3.6.6.2 महाधिवक्ता

संविधान के अनुच्छेद-177 के अनुसार प्रत्येक राज्य का एक महाधिवक्ता होगा जो भारत के महान्यायवादी के समान होगा। भारत के महान्यायवादी के कृत्यों के समान वह राज्य में कार्य करेगा। राज्य का राज्यपाल उसे नियुक्त करेगा तथा राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त वह पद पर बना रहेगा। महाधिवक्ता पद के लिए वे योग्यताएं आवश्यक हैं, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निर्धारित की जाती हैं। इसका पारिश्रमिक राज्यपाल द्वारा निर्धारित होगा। महाधिवक्ता राज्य विधानमण्डल के सदनों की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है। अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु उसे सदन में मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है।

3.6.7 शासन के विभाग एवं कार्यालय

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्य में 38 विभागों को गठित किया है, जिनमें से 15 विभागों के मुख्यालय राजधानी देहरादून में तथा 6 विभागों के मुख्यालय नैनीताल में रखे गए हैं। कई प्रमुख शहरों में एक या दो विभागों के मुख्यालय बनाये गये हैं। राज्य के अलग-अलग शहरों में निम्नांकित विभागों का गठन किया गया है-

1. **देहरादून-** देहरादून में सम्पत्ति, खाद्य, बॉट-माप एवं उपभोक्ता संरक्षण, चुनाव कार्यालय, पुलिस, सतर्कता, सिंचाई, जल निगम, कोषागार, चिकित्सा, मुद्रणालय, नगर एवं ग्राम्य निदेशालय हैं।
2. **श्रीनगर-** श्रीनगर गढवाल में विकास आयुक्त, उद्योग एवं हथकरघा, खादी वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं खनिज विभाग हैं।
3. **नैनीताल-** नैनीतान में वन संरक्षण, ऊर्जा निगम, विद्युत सेफ्टी विभाग हैं।
4. **हल्द्वानी (नैनीताल)-** हल्द्वानी में श्रम, सेवायोजन, समाज कल्याण, परिवहन एवं आवास विभाग हैं।
5. **पौड़ी-** पौड़ी में विभागीय विशेषज्ञ संवर्ग विभाग है।
6. **नरेद्र नगर(टिहरी)-** नरेन्द्र नगर में होमगार्ड कमाण्डेन्ट का विभाग है।
7. **उधमसिंह नगर-** उधमसिंह नगर में महानिरीक्षक कारागार, उप गन्ना आयुक्त के विभाग हैं।
8. **अल्मोड़ा-** अल्मोड़ा में लोक निर्माण विभाग, निदेशक वैकल्पिक ऊर्जा, सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के विभाग हैं।
9. **रानीखेत-** रानीखेत में कृषि एवं उद्यान, सैनिक कल्याण विभाग हैं।
10. **गोपेश्वर-** गोपेश्वर में पशुधन एवं मत्स्य विकास विभाग है।
11. **रामनगर-** रामनगर में शिक्षा विभाग है।

3.6.8 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद कार्मिकों का विभाजन सबसे पेचीदा मुद्दा रहा है। भारत सरकार द्वारा किये गये अंतिम आबंटन के बाद भी कई कर्मचारी इच्छा के विपरीत उत्तर प्रदेश से उत्तराखण्ड आने को तैयार नहीं हुए। दूसरी तरफ कई ऐसे कर्मचारी थे जिन्होंने उत्तराखण्ड से उत्तर प्रदेश जाना मंजूर नहीं किया। उत्तराखण्ड के विकल्पधारी इसलिये भी उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं कर पाये, क्योंकि सम्बन्धित विभाग ने उन्हें उत्तर

प्रदेश से नये राज्य के लिये कार्य मुक्त नहीं किया था। जिसका सीधा प्रभाव उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखा गया।

भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के विभिन्न विभागों हेतु कार्मिकों का जो आबंटन किया गया। उसके अनुसार 'क' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 403, 'ख' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 1209, 'ग' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 16825 तथा 'घ' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 2875 थी। वर्ष 2007 के मध्य तक भी इसमें से 'क' श्रेणी के 31, ' 'ख' श्रेणी के 193, 'ग' श्रेणी के 2895 तथा 'घ' श्रेणी के 415 कार्मिकों ने उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं किया। अनेकों कर्मचारियों के न्यायालय में चले जाने के कारण भी मामले लटके रहे। युवा कल्याण विभाग, व्यापार कर विभाग, मनोरंजन कर, स्टाम्प एवं निबन्धन, आबकारी विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, गृह विभाग, विधि विज्ञान, पुलिस विभाग, नागरिक सुरक्षा, कारागार, अर्थ व संख्या प्रभाग के कार्मिकों के मामले न्यायालय में विचाराधीन है।

उत्तराखण्ड से उत्तर प्रदेश हेतु 'क' श्रेणी में 134, 'ख' श्रेणी में 663, 'ग' श्रेणी में 7200 तथा 'घ' श्रेणी में 218 कार्मिक अवमुक्त किये जाने के आदेश हैं। इनमें से भी खेल, ग्रामीण, अभियन्त्रण विभाग, आबकारी, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति तथा सिंचाई विभाग से सम्बन्धित कुछ कार्मिकों के मामले न्यायालय में लम्बित होने के कारण उन्हें कार्यमुक्त नहीं किया जा सका है। पुलिस कार्मिकों का विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया है। इसी प्रकार लगभग सभी विभागों में कार्मिकों के बटवारें को लेकर अभी तक समस्या बनी हुयी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान में केन्द्र राज्यों को लेकर कितनी सूचियाँ हैं?
2. समवर्ती सूची राज्य और केन्द्र की व्यवस्थापिका को समवर्ती शक्तियों के द्वारा कितने विषयों पर अधिकार प्रदान करती है?
3. विधायी शक्तियाँ किस अनुच्छेद में वर्णित हैं?
4. संकटकालीन उपबन्ध संविधान के किस भाग में हैं?
5. राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन होता है?
6. केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को लेकर कौन से आयोग बनाये गये हैं?
7. राज्य मंत्री परिषद का गठन किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?
8. राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल को किस अनुच्छेद के आधार पर सौंपी गयी है?
9. उत्तराखण्ड राज्य में कुल कितने विधानसभा क्षेत्र हैं?
10. उत्तराखण्ड राज्य में लोकसभा व राज्यसभा की कितनी सीटें हैं?

3.7 सारांश

केन्द्र राज्य सम्बन्धों में सुधार की दृष्टि से अनेकों प्रयास होते रहे हैं। सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने को लेकर राज्य और केन्द्र दोनों ने सार्थक प्रयास किये हैं। केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। अब समय आ गया है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की समस्या पर शान्तिपूर्वक व सकारात्मक विचार-विमर्श हो। देश संकटों से घिरा है ऐसे में केवल एक-दूसरे पर दोषारोपण करने से काम नहीं चलेगा। सही राजनीतिक पहल समय की माँग है। छोटे राज्यों की माँगों को उनकी सार्थकता के आधार पर गठन किया जाना आवश्यक है। आज की स्थितियों को देखते हुए सहकारी संघवाद एकमात्र समाधान है।

नये राज्य जो कुछ वर्ष पूर्व ही अस्तित्व में आये हैं, उन पर केन्द्र को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। नये राज्य भी केन्द्र के सहयोगी बने तभी दोनों की बीच सही तारतम्यता बनी रहेगी। देश के संविधान में वर्णित कल्याणकारी

राज्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य में स्वायत्त शासन को अधिक महत्व दिया गया है। राज्य में जनसंख्या के आधार पर नगरीय, ग्रामीण स्वायत्त संस्थाओं एवं संगठनों का वर्गीकरण ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम के रूप में किया गया है।

सारांशतः हम ये कह सकते हैं कि इस अध्याय में हमने केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संविधान में संवैधानिक शक्तियों का विभाजन व दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों पर गंभीरता से चिन्तन किया। इसके साथ ही हमने ये भी जानने का प्रयास किया कि उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना क्या है और वह किस प्रकार कार्य कर रही है।

3.8 शब्दावली

परिक्षेप- परिदृश्य, विनियम- अधिनियम, अभिलेख- लेख, कृत्य- कार्य, परिसीमन- सीमा निर्धारण

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 3(संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची), **2.** 52 विषयों पर, **3.** अनुच्छेद- 245 से 363, **4.** भाग-18, **5.** राज्यपाल, **6.** प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, **7.** 163 में, **8.** 154 के तहत्, **9.** 70, **10.** 5 व 3

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी-अवस्थी- भारतीय प्रशासन।
2. टी0सी0 भट्ट- उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास।
3. पी0 सी0 जोशी- उत्तराखण्ड के आईने में हमारा समय।
4. शेखर पाठक- पहाड़, (सम्पादक)।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुखराज जैन, वी0एन0 खन्ना, चन्द्रकुमार सक्सेना- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गणतन्त्र का संविधान।
2. एम0वी0 पायली- भारत की संवैधानिक सरकारें।
3. नन्द किशोर- क्षेत्रीय परिषदों की प्रभावी भूमिका।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अवशिष्ट शक्तियाँ क्या होती हैं? इस पर अपना लेख लिखिए।
2. राज्य के विधानमण्डलों को विधि निर्माण में क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं ? स्पष्ट करें।
3. उत्तराखण्ड की विधायी संरचना के बारे में आपकी जानकारी क्या है?
4. मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे होती है व उसके कार्य क्षेत्र क्या हैं?
5. उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड में कार्मिकों के विभाजन की स्थिति क्या है? समझायें।

इकाई- 4 भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध
4.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के संवैधानिक प्रावधान
4.4 वित्त आयोग
4.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण शिफारिशें
4.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य
4.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता
4.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

इससे पहले इकाई तीन में हमने जाना कि संविधान द्वारा केन्द्र-राज्य सम्बन्ध को लेकर क्या-क्या शक्तियाँ दी गयी हैं तथा इनका बटवारा संविधान में कैसे किया गया है? साथ ही हमने पिछली इकाई में केन्द्र तथा राज्य के विधायी और प्रशासनिक सम्बन्धों को भी विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया। उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना का भी इस इकाई में अध्ययन किया गया। साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया गया कि केन्द्र सरकार द्वारा कार्मिकों का बटवारा दोनों राज्यों(उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड) के बीच कैसे किया गया और उसकी वर्तमान स्थिति क्या है? इस इकाई में हम भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में चर्चा करेंगे। केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों के बारे भी हम केन्द्रीय प्रधानता वाली भारतीय संघवाद की सामान्य प्रवृति के दर्शन कर सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि वित्तीय दृष्टि से संघ अधिक शक्तिशाली है। लेकिन राज्यों के भी अपने संसाधन हैं। सुनियोजित अर्थव्यवस्था के माध्यम से देश की जरूरतों के स्वरूप को देखते हुए संघ राज्यों के लिये सारवान राशियों की व्यवस्था करता है।

नये राज्यों को सरकार द्वारा उचित सहयोग व विशेष अनुदान देकर आर्थिक रूप से मजबूत व सबल बनाने का प्रयास किया जाता रहा है। उत्तराखण्ड को भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की गयी है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। उत्तराखण्ड को लेकर वित्त आयोग की रिपोर्ट व योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड राज्य को विशेष राज्य के दर्जे के रूप में विशेष आर्थिक पैकेज दिया गया है जिसकी चर्चा हम अन्य राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के रूप में करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- केन्द्र-राज्य के वित्तीय सम्बन्धों के संवैधानिक रूप को समझ पायेंगे।
- राज्यों को लेकर 13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें के बारे में जान पायेंगे।
- केन्द्र द्वारा उत्तराखण्ड को दिये जाने वाला बजट व उसकी समीक्षा को समझ पायेंगे।
- परिसम्पत्तियों एवं दायित्वों का उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच बटवारे की स्थिति को जान पायेंगे।

4.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र तथा राज्य की सरकारों के बीच केवल विधायी व प्रशासनिक शक्तियों का ही बटवारा नहीं होता, वित्तीय स्रोतों का भी बटवारा होता है। भारत के संविधान के अलावा वित्तीय क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का इतना विस्तृत अध्ययन अन्य किसी देश के संविधान में नहीं मिलता है। भारत में संविधान द्वारा एक वित्त आयोग की व्यवस्था की गयी है। इसका मुख्य उद्देश्य है केन्द्र तथा राज्यों के मध्य साधनों से होने वाली प्राप्तियों का वितरण तथा समायोजन करना। इस वितरण प्रणाली में कभी-कभी केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद व तनाव भी उभर जाते हैं। भारतीय संविधान ने संघात्मक राज्यों की इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिये एक मौलिक कदम उठाया है। भारत सरकार अधिनियम- 1935 ने भी इस समस्या को सुलझाने का अच्छा प्रयास किया था। इस सारी समस्या को दूर करने के लिये राजस्व के समस्त स्रोत केन्द्र और प्रान्तों के मध्य बाँट दिये गये। कुछ विषय में केन्द्र कर लगाता व इक्कठा करता था, परन्तु जो कुछ भी प्राप्त होता था वह उसे प्रान्तों में बाँट देता था। इस अधिनियम की वास्तविक त्रुटि यह थी कि प्रान्तों को बहुत ही कम राजस्व स्रोत दिये गये थे। वर्तमान संविधान निर्माताओं ने 1935 के अधिनियम की त्रुटियों को छोड़ते हुए, उसकी व्यवस्था का अनुसरण किया है। संविधान में केन्द्र और राज्य के बीच साधनों के वितरण की व्यवस्था की गयी है। किन्तु वितरण की व्यवस्था के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग को विस्तारपूर्वक वितरण करने का कार्य सौंपा गया है।

4.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त हैं। जिनकों हम निम्न रूप में देख सकते हैं- कार्य, क्षमता, पर्याप्तता।

उपयुक्तत इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी। अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गयी। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के निरूपण को इस प्रकार देखा जा सकता है-

4.3.1 कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन

भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं हैं, प्रथम- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण निर्धारण कर दिया गया है और द्वितीय- करों से प्राप्त आय का बंटवारा किया जाता है।

केन्द्र के प्रमुख राजस्व स्रोत हैं- निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृर्षि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रेलें, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार, आदि। राज्यों के राजस्व श्रोत निम्न हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृर्षि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि ।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, विनियोजित किये जाने वाले शुल्कों के उदाहरण निम्नवत् हैं- बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डिया, चेकों आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक-श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहित विनियोजित किये जाने वाले करों के उदाहरण निम्न हैं- कृर्षि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान-प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किये गये विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय-विक्रय पर कर।

कतिपय कर केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किये जाते हैं, पर उनका विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर व दवा तथा शौक-श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

4.3.2 सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये दिया जाने वाला अनुदान

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह के सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। प्रथम- पटसन या उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों को दिया जाता है। द्वितीय- बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिये भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तृतीय- आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिये भी सहायक अनुदान केन्द्र द्वारा दिया जाता है। चतुर्थ- राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिये केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता करता है।

4.3.3 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वह विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय केन्द्र सरकार किसी प्रकार की शर्त भी लगा सकती है।

4.3.4 करों से विमुक्ति

राज्यों द्वारा केन्द्र की सम्पति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता, जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार केन्द्र सरकार भी राज्य सम्पत्ति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

4.3.5 भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मंत्रीमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकार के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जाँच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियंत्रण रखता है।

4.3.6 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा केन्द्र के करों की आय में भाग बांटने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

4.4 वित्त आयोग

वित्तीय आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के अनुच्छेद-280 में की गयी है। इसके अनुसार भारत का राष्ट्रपति अपने स्वविवेक से प्रति पाँच वर्ष के बाद एक नवीन वित्त आयोग गठित करेगा। वित्त आयोग में एक अध्यक्ष के साथ-साथ चार अन्य सदस्यों की संवैधानिक व्यवस्था है। इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है, जिसे सार्वजनिक कार्यों में व्यापक अनुभव होता है। शेष चार सदस्यों में एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इसी प्रकार का योग्यताधारी, एक ऐसा व्यक्ति किसी सरकार के वित्त तथा लेखाओं का विशेष ज्ञान हो, एक ऐसा व्यक्ति जिसे वित्तीय विषयों तथा प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव हो तथा एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो, होता है। वित्त आयोग का कार्य केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की आय का वितरण तथा केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को सहायता देना आदि विविध बातों के सम्बन्ध में सुझाव राष्ट्रपति को देना है। राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुतियों को संसद के समक्ष रखता है। अनुच्छेद-280 के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद- 270, 273, 275, भी इसकी पुष्टि करते हैं। भारतीय संविधान में वित्त आयोग के कतिपय कार्य सुनिश्चित किये गये हैं। इसके कार्यों में केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की शुद्ध आगमों का वितरण भारत की संचित निधि में से राज्यों के सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्त सुनिश्चित करना एवं सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गये किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश देना प्रमुख है।

वर्तमान में 13वाँ वित्त गठित किया जा चुका है। अब तक भारत में 12 वित्त आयोग गठित हो चुके हैं। जिनको निम्न तालिका में देखा जा सकता है-

वित्त आयोग	गठन का वर्ष	अध्यक्ष का नाम	क्रियान्वय का वर्ष	रिपार्ट देने का वर्ष
पहला	1951	के0सी0 नियोगी	1952-57	1952
दूसरा	1956	के0 सन्थानम	1957-62	1956 और 1957
तीसरा	1960	ए0के0 चन्दा	1962-66	1961
चौथा	1964	डॉ0 पी0वी0 राजामन्नार	1966-69	1965
पाचवां	1968	महावीर त्यागी	1969-74	1968 और 1969
छठा	1972	ब्रह्मानन्द रेड्डी	1974-79	1973
सातवाँ	1977	जे0एम0 शेलट	1979-84	1978
आठवाँ	1983	वाई0बी0 चव्हाण	1984-89	1983 और 1984
नवाँ	1987	एन0के0पी0 साल्वे	1989-95	1983 और 1984
दसवाँ	1992	के0सी0 पंत	1995-2000	1995
ग्यारहवाँ	1998	ए0एम0 खुसरो	2000-2005	2000
बारहवाँ	2002	सी0 रंगराजन	2005 – 2010	2004' अन्तरिम रिपोर्ट

4.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें

सरकार ने पूर्व वित्त सचिव विजय केलकर की अध्यक्षता वाले 13वें वित्त आयोग की रपट संसद में पेश की। केन्द्र और राज्यों के बीच केन्द्रीय करों के विभाजन से सम्बन्धित वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्न हैं-

1. विभाज्य केन्द्रीय करों की शुद्ध निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत हो।
2. विभिन्न करों के साथ लगाये गये उपकरों तथा अभिकरों की समीक्षा की जाये।
3. केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों में राज्यों को दिया जाने वाला हिस्सा 39.5 प्रतिशत रखा जाये।
4. राज्यों में वित्त उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियमों का अनुपालन बनाया जाये।
5. राज्यों में वर्ष 2011-12 तक राजकोषीय सुधार, मार्ग पर वापस आने की उम्मीद।
6. राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि में मिला दिया जाय।
7. राष्ट्रीय आपदा राज्यों के लिये अनुशंसा अवधि (अप्रैल 2010 से मार्च 2015) के दौरान आयोजन भिन्न राजस्व अनुदान के तहत 51,800 करोड़ रुपये आवंटित किये जाये। आयोजन भिन्न राजस्व घाटे की स्थिति से उबर चुके तीन विशेष श्रेणी के राज्यों के लिये 1500 करोड़ रुपये का निष्पादन अनुदान दिये जाये।
8. चार वर्षों के 2010-12, से 2014,15 के लिये सड़कों और पुलों के लिये अनुदान के रुप में 19,930 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश
9. वन, अक्षय उर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्ध के लिये 5000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
10. प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अनुदान के रुप में 24,068 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
11. राज्यों की सहायता अनुदान के रुप में सिफारिश अवधि के लिये 3,18,581 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश।
12. वित्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन के कारण राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की भरपायी के लिये 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किये जाने की सिफारिश। जी0एस0टी0 का क्रियानवयन अप्रैल 2013 या उसके बाद होने पर यह राशि घटकर 40,000 करोड़ रुपये तथा अप्रैल 2014 या उसके बाद इसका क्रियानवयन होने पर 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान।

4.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य

उत्तर प्रदेश राज्य के साथ परिसम्पत्तियों के बटवारें के बाद केन्द्र सरकार से नवगठित राज्य को सहायता मिलनी शुरु हो गयी है। देश के हिमालयी क्षेत्रों में 6 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती है। योजना आयोग भारत सरकार के आफिस मैमोरेंडम संख्या- एफ0 संख्या 4/28/2000 एफ0 आर0 (बी0)दिनांक 21 जनवरी 2002 के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद की 1 सितम्बर 2001 को सम्पन्न बैठक में उत्तराखण्ड को वर्ष 2001-02 से विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा दिया गया, किन्तु यह विधि बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हो पायी। निर्णय के अनुसार केन्द्रीय सरकार को सभी केन्द्र अनुदानित योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत अनुदान देना चाहिये था। किन्तु केन्द्र सरकार ने 2001-10 तक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य को मिलने वाली अनुदान राशि आवंटित नहीं की। यह अनुदान तभी मिल सकता है जब केन्द्र सरकार का वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय इसे स्वीकार करें।वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीनस्थ है। इस मंत्रालय ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली अनुदान राशि का प्रतिशत नहीं बढ़ाया। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के आफिस मेमोरेण्डम संख्या- 11015/1/2007 एन0 ई0 दिनांक 16 अक्टूबर 2000 के द्वारा उत्तर पूर्वी राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों की भांति 9:10 के अनुपात में

अनुदान देने के निर्देश जारी किये। 1:10 के अनुपात के अनुसार 2009-10 में उत्तराखण्ड को लगभग 2500 करोड़ रुपये की सहायता कम मिलि है।

पिछले दो वर्षों में केन्द्र सहायतित योजनाओं पर व्यय किये गये धनराशि निम्न रुप में देखी जा सकती है।

क्रम संख्या	2008-09 (रूपये करोड़ों में)	2009-10 (रूपये करोड़ों में)
1	परिव्यय 1275.85	1358.44
2	बजट प्राविधान 1683.52	1794.48
3	स्वीकृति 1552.59	1071.21
4	व्यय 870.73	995.01

इस आकड़े से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तराखण्ड को राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के बावजूद लगभग 20 प्रतिशत अनुदान पिछले 10 वर्षों से कम मिल रहा है। केन्द्रीय बजट से राज्यों को एक मुश्त रकम दी जाती है। विशेष श्रेणी के राज्यों को भारत सरकार या केन्द्र द्वारा दी जाने वाली प्रति व्यक्ति अनुदान राशि व प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत को हम सारणी के माध्यम से देख सकते हैं-

क्रम संख्या	विशेष श्रेणी राज्य	प्रति व्यक्ति अनुदान (रूपये में)	प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत
1	मिजोरम	48,193	48.5
2	नागालैंड	29,543	36.2
3	मणिपुर	28,229	51.2
4	हिमांचल प्रदेश	29,897	17.7
5	त्रिपुरा	26,091	26.1
6	अरुणांचल प्रदेश	23,264	58.1
7	जम्मू-काश्मीर	33,197	36.0
8	मेघालय	27,209	24.7
9	सिक्किम	27,554	57.8
10	उत्तराखण्ड	15,468	13.6

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि ,सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि राज्य सरकार की उपलब्धी है। उत्तराखण्ड के 09 पहाड़ी जिलों का योगदान 35 प्रतिशत है तथा सकल उत्पाद दर में 65 प्रतिशत वृद्धि हुयी है।

वर्ष 2008-09 में प्रति व्यक्ति आय में निम्न आकड़ों में देखा जा सकता है-

क्रम संख्या	जनपद	प्रति व्यक्ति आय)2008-09) रूपये में
1	उत्तरकाशी	25,379
2	चमौली	32,038
3	रुद्रप्रयाग	24,474
4	पौड़ी	28,139
5	पिथौरागढ़	28,596
6	बागेश्वर	22,709
7	अल्मोड़ा	28,896
8	टिहरी	33,999

9	नैनीताल	41,180
10	चंपावत	27,374
11	उधमसिंह नगर	33,895
12	हरिद्वार	50,227
13	देहरादून	43,522

4.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता

राज्य के आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान करने के लिये वार्षिक परियोजिना के परिव्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। 9वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल रू0 4430 करोड़ का परिव्यय था। 10वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य के लिये रू0 9000 करोड़ की योजना स्वीकृत की गयी। दोनों योजनाओं के परिव्यय से स्पष्ट होता है कि वार्षिक योजनाओं हेतु अनुमोदित परिव्यय और व्यय में निरन्तर वृद्धि हुयी है। केन्द्र की सहायता का लाभ उत्तराखण्ड सरकार को मिलता रहा है। राज्य के विकास में केन्द्रीय अनुदान का विशेष महत्व है। केन्द्रीय योजना आयोग ने राज्य की वर्ष 2005-06 की सालाना योजना के परिव्यय में एक साथ 45 प्रतिशत की वृद्धि की, जो राज्य के लिये एक बड़ी उपलब्धि थी। वर्ष 2004-05 में प्रदेश की योजना के लिये 1865 करोड़ का परिव्यय अनुमोदित था, जबकि इसे 2005-06 में 2700 करोड़ रूपये कर दिया गया। इसके बाद भी केन्द्र सरकार द्वारा राज्य के विकास के लिये निरन्तर अनुदान दिया गया।

4.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन

उत्तर प्रदेश से जब उत्तराखण्ड अलग राज्य के रूप में उभर के आया तब चूल्हे-चौके के अलग होने से कई तरह के हिस्से-बटवारें होने थे। कुछ परिसम्पत्तियों पर दोनों के बीच एक सहमति न होने के कारण केन्द्र को हस्तक्षेप करना पड़ा। केन्द्र सरकार के स्पष्ट आदेशों के बाद भी अनेकों मामलों में उत्तर प्रदेश रोड़े अटकाता रहा। जबकि दोनों प्रदेशों के शीर्ष अधिकारियों की बैठकों में महत्वपूर्ण मुद्दों पर वार्ता हो चुकी थी। नवम्बर 2007 के मध्य में अधिकारियों की इस बैठक में उत्तराखण्ड के अधिकारियों ने पहली माँग यही रखी कि जो सम्पत्ति नहर व रहवाहों के अलावा डैम आदि हैं, वह सभी उत्तराखण्ड को सौंप दिये जाएं। इस बात पर उत्तर प्रदेश के अधिकारियों ने कहा कि नहरों के प्रमुख कार्य गंगा प्रबन्धन बोर्ड को सौंपे जायें। इससे किसी एक राज्य का किसी भी नहर के संचालन पर एकाधिकार नहीं हो सकेगा। उत्तराखण्ड में स्थित नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशयों में से निकलने वाली नहरों की नीलामी को लेकर उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश में ऐसी ठनी कि मामला पहले ही न्यायालय में पहुँच गया था। 15 सितम्बर 2003 को नैनीताल हाईकोर्ट ने उत्तराखण्ड के पक्ष में फैसला देते हुए कहा था कि नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशय पूरी तरह उत्तराखण्ड राज्य में हैं और इस जलाशयों से निकलने वाली मछली की भी नीलामी का उत्तर प्रदेश विकास निगम लि0 को कोई अधिकार नहीं है। उत्तराखण्ड या उसका निगम ही इन जलाशयों की मछली की नीलामी कर सकता है। जबकि शारदा सागर जलाशय उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश दोनों राज्यों में पड़ता है, इसलिये इनमें से निकलने वाली मछलियों की नीलामी दोनों राज्य मिलकर कर सकते हैं।

आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये भारत सरकार की राय के अनुसार उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये 1 मार्च 2001 को मुख्य सचिव समिति का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त विभागों के स्तर पर उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश की संयुक्त विभागीय सचिव समितियों का गठन किया गया। 6 मार्च 2001 को उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्रियों के मध्य उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही के

सम्बन्ध में लखनऊ में बैठक आयोजित हुई। जिन 17 महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बैठक में विचार-विमर्श हुआ, उसमें नई दिल्ली स्थित उत्तर प्रदेश निवास उत्तराखण्ड को देने तथा उत्तर प्रदेश तराई बीज विकास निगम को दोनों राज्यों के सयुक्त स्वामित्व एवं प्रबन्धन में संचालित करने पर सहमति बनी। 10 अप्रेल 2006 को गृह मंत्रालय भारत सरकार के स्तर पर सम्पन्न समीक्षा बैठक में प्राप्त निर्देशों के अनुपालन की समीक्षा हेतु 30 अगस्त 2006 को प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वयक विभाग की अध्यक्षता में बैठक आयोजित हुई। भारत सरकार ने कतिपय प्रकरणों का निस्तारण दोनों उत्तरवर्ती राज्यों द्वारा समन्वित रूप से मई व जून 2006 तक किये जाने के निर्देश दिये थे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार द्वारा उनकी प्रगति की स्थिति से अवगत कराये जाने की भी अपेक्षा की गयी थी। उक्त सम्बन्धी प्रकरणों की प्रगति की समीक्षा प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वय विभाग द्वारा 30 अगस्त 2006 को की गयी और सिंचाई विभाग, औद्योगिक विकास विभाग, उर्जा, कृर्षि, गन्ना एवं चीनी उद्योग, पंचायती राज, मत्स्य विकास, शिक्षा, कारागार, श्रम, सैनिक कल्याण/समाज कल्याण तथा नगर विकास विभाग से जुड़े 13 प्रस्तावों पर चर्चा और प्रगति की समीक्षा की गयी।

दूसरी ओर वन विकास निगम की लगभग 2 अरब रूपये की रकम को लेकर उत्तर प्रदेश का रवैया काफी हैरत भरा रहा। इस मुद्दे पर केन्द्र सरकार ने 13 फरवरी व 28 जुलाई 2004 को स्पष्ट आदेश किया कि उत्तराखण्ड को वन निगम की करीब 4 अरब रूपये की निधि से 54 प्रतिशत भाग दे दिया जाए, लेकिन केन्द्र के आदेश के बाद भी वन विकास निगम को अपना हक पाने के लिये काफी मेहनत करनी पड़ी।

पुलिस विभाग की परिसम्पत्तियों के बंटवारे के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के सचिवों के बीच जो बैठक हुई, उनका कोई परिणाम नहीं निकला। लिये गये निर्णयों के आधार पर पुनर्गठन आयुक्त उत्तराखण्ड शासन, विकास भवन, सचिवालय, उत्तर प्रदेश के माध्यम से पुलिस विभाग के विभिन्न मुख्यालयों के स्टोर से वर्तमान मूल्य रूपये 4,87,85,270 की सूची प्राप्त हुई, जिसके आधार पर अंकित मूल्य से पुलिस मुख्यालय उत्तराखण्ड सहमत नहीं था। किन्तु कोई विकल्प न होने के कारण अंकित वर्तमान मूल्य का 16 प्रतिशत भाग रूपये 78,05,643.20 उत्तराखण्ड राज्य को उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी।

31 मार्च 2001 के पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश वन निगम के आर्थिक पत्र में दर्शित आरक्षित एवं अधिशेष की राशि रूपये 425.11 करोड़ की 54 प्रतिशत राशि जो उत्तराखण्ड को सौंपी जानी चाहिए थी, उसमें अभी भी विवाद बना हुआ है। उत्तर प्रदेश वन निगम की परिसम्पत्तियों का उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड राज्य के वन निगमों के मध्य भारत सरकार के हस्तक्षेप के उपरान्त ही 13 फरवरी 2004 के आदेशों के क्रम में किया जाना शुरू हुआ। इससे पहले दोंनो राज्यों के बीच यह मामला उलझा रहा। 31 मार्च 2001 को कर सम्पत्तियों का 54:46 के अनुपात में उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश वन निगम के मध्य विभाजन का आदेश केन्द्र सरकार द्वारा किया गया था।

उत्तराखण्ड वन विकास निगम का गठन 1 अप्रेल 2001 को किया गया था। परिसम्पत्तियों के बंटवारे को लेकर उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच एका नहीं बन पाया। परिसम्मत्तियों को लेकर उत्तर प्रदेश का रूख सकारात्मक नहीं रहा, जिस कारण केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। भारत सरकार द्वारा दोंनों पक्षों को सुनने के उपरान्त दोनों राज्यों के मध्य परिसम्पत्तियों के सम विभाजन के आदेश निर्गत किये गये, किन्तु भारत सरकार के आदेश के विरूद्ध उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 28 अप्रैल 2004 को भारत सरकार को पुनर्विचार हेतु आवेदन किया। जिस पर भारत सरकार ने 28 जुलाई 2004 को निर्णय देते हुए अपने पूर्व निर्णय यथावत रखा।

उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच आज कई परिसम्पत्तियों का विभाजन होना शेष है। दोनों के बीच केन्द्र सरकार ने अपनी अहम भूमिका निभाई है। उत्तराखण्ड को केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अन्य सहयोग भी दिया जाता रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में अब तक कितने वित्त आयोग गठित हो चुकें हैं?
2. पहला वित्त आयोग का गठन कब हुआ?
3. 13वें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?
4. केन्द्रीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण कौन करता है?
5. केन्द्र व राज्यों के बीच करों का बंटवारा कौन करता हैं?
6. आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये मुख्य सचिव समिति का गठन कब हुआ?
7. वित्त आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में है?
8. राज्यों की वित्तीय आवश्यकता को केन्द्र कौन-कौन से तरीकों से पूरा करता है?
9. एफ0 आर0 बी0 एम0 का पूरा नाम क्या है?
10. पहले वित्त आयोग का क्रियान्वयन का वर्ष कब से कब तक था?

4.9 सारांश

केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों के साथ-साथ वित्तीय सम्बन्ध भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार राज्यों के विकास के लिये और राज्यों को आर्थिक रूप से सम्पन्न व शक्तिशाली बनाने के लिये प्रयासरत रहा है। राज्यों के आर्थिक विकास में केन्द्र हमेशा सहयोगी रहा है। सायद यही कारण है कि भारतीय संविधान में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। इस अध्याय में हमने केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का अध्ययन करने के साथ-साथ इस बात का भी अध्ययन किया कि केन्द्रीय योजना आयोग कैसे राज्यों के लिये योजनाएं तैयार करता है। वित्त आयोग केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों का निर्धारण करता है, जो दोनों के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान द्वारा एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है, जो नये राज्यों को आर्थिक रूप से विशेष सहयोग प्रदान करता है तथा उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में अपना योगदान देता है। यही कारण है कि बार-बार यह कहा जाता है कि केन्द्र को भारत के संविधान में बहुत शक्तिशाली बनाया गया है,जोकि समय की माँग भी है।

4.10 शब्दावली

विनियोजित- उचित या संगत, प्रोमिसरी नोट- वचन पत्र या इकरारनामा, हुंडिया-निर्गत आदेश, परिकल्पना-अवधारणा

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 13, **2.** 1951, **3.** विजय केलकर, **4.** योजना आयोग, **5.** वित्त आयोग, **6.** 1मार्च2001, **7.** 280, 8. राज्यों को अनुदान देकर व ऋण देकर, **9.** वित्त उत्तरदायित्व व बजट प्रबन्धन, **10.** 1952 से 1957

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप- हमारा संविधान।

2. डी0 डी0 बसु- भारत का संविधान।
3. उत्तराखण्ड शासन की रिपोर्ट- संतुलित समयबद्ध विकास, 5वीं वर्षगांठ।

4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जगदीश शंकर शुक्ला- भारतीय संविधान तथा प्रशासन।
2. जैन व खन्ना- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व गणतंत्र का विकास।
3. त्रिलोक चन्द्र भट्ट- उत्तराखण्ड , राज्य आन्दोलन व नवीन इतिहास।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित पर टिप्पणी दें-
   अ- कर निर्धारण व करों से प्राप्त आय का विभाजन।
   ब- केन्द्र व राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्धों का संवैधानिक पहलू।
   स- सहायक अनुदान।
2. वित्त आयोग से आप क्या समझते हैं?
3. 13वें वित्त आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों पर एक लेख लिखिए।
4. विशेष श्रेणी के राज्यों पर निबन्ध लिखिये।

इकाई- 5 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 राज्यपाल
 5.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल
 5.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य
  5.2.2.1 कार्यकारिणी शक्तियाँ
  5.2.2.2 विधायनी शक्तियाँ
  5.2.2.3 अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ
  5.2.2.4 न्यायिक शक्तियाँ
  5.2.2.5 आपातकालीन शक्तियाँ
  5.2.2.6 विवेकाधीन शक्तियाँ
 5.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
 5.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
 5.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
5.3 मुख्यमंत्री
 5.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
 5.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य
 5.3.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
 5.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
5.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

भारत में जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में शासन की वही पद्धति है, जो केन्द्रीय स्तर पर मान्य है। दूसरे शब्दों में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है, जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है, लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है। यह व्यवस्था सन् 1956 में की गयी थी।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
- राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों की जानकारी ले सकेंगे।
- राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
- मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियों को समझ सकेंगे।
- राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच के सम्बन्धों को समझ सकेंगे।

5.2 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते है। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् इत्यादि होते हैं।

5.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है। वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। लेकिन पद के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते है।

एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

5.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ हैं, जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार हैं-

5.2.2.1 कार्यकारिणी शक्तियाँ

राज्यपाल की निम्नलिखित कार्यकारिणी शक्तियाँ हैं-

1. राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।
2. महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3. राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है, लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।
4. यद्यपि राज्यपाल को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।
5. यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नहीं हो सकता, तो विधानसभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।
6. यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्यपाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है। परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान,समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो।

5.2.2.2 विधायनी शक्तियाँ

राज्यपाल की विधायनी शक्तियाँ निम्नांकित हैं-

1. राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधानसभा को भी भंग कर सकता है।
2. राज्यपाल को विधानसभा और विधानपरिषद के सत्रों को अलग अथवा संयुक्त रूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है।
3. राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा-जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।
4. राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते, जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-
    - विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
    - या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
    - या वित्त विधेयक को छोड़कर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुनर्विचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं।
    - वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा, जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

5.2.2.3 अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस सन्दर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नहीं है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलों पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

- ऐसा विषय जिससे सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या
- राज्यपाल ऐसे विषय से सम्बन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।
- राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है, जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

5.2.2.4 न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है, जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है। राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा पाये व्यक्ति को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नहीं है।

5.2.2.5 आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट है कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद- 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बड़ी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

5.2.2.6 विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करे कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। सम्भव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरूद्ध हो। उदाहरण के लिए-

- जब राज्यपाल अनुच्छेद- 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।
- राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।
- राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी हैं। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते हैं।

5.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। यदि मन्त्रिपरिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पद रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधानसभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधानसभा में शासक दल में टूट-फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो, तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है, क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलों की सरकारे हों, तब वह केन्द्र के हितों को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है, जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नहीं होता। ऐसी स्थिति में पीड़ित दल न्यायालय की शरण लेता है और कई बार राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कड़ी आलोचना भी हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद- 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है, जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद- 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच टकराव बढता है और संघात्मक सरंचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

5.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक, जो केन्द्र मे भी है और राज्यों में भी। केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान (हैड) है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है, जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विषम स्थिति है, क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है ।सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञों ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद- 356 का अक्सर दुरूपयोग करके राज्यपाल ने स्वंय को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम और एक कुशल राजनीतिज्ञ अधिक सिद्ध किया है। इससे राज्य में अस्थिरता, दल-बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता हैं।उदा हरण के लिये सन् 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गई, जबकि सन् 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गई। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की 9 राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया।

सन् 1980 में कांग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया।

5.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ में उससे राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता। राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान हैं। पहला- अनुच्छेद-159 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है, उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा, अपनी पूरी योग्यता से संविधान औरर कानून की रक्षा करेगा और राज्य के लोगों की सेवा में स्वंय को समर्पित करेगा। इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से सम्बन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है। दूसरा- अनुच्छेद- 163(1) स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पापदन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा। अनुच्छेद- 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराऐं नहीं हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असम्भव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वंय ऐसी परिस्थितियां पैदा करते हैं, जहाँ राज्यपाल को बड़े कदम उठाने पड़ते हैं।

5.3 मुख्यमन्त्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है, जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यों के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है, लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधानसभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

5.3.1 मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमन्त्री स्वंय अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के सन्दर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्यमंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैं-

1. मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से सम्बन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।
2. मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे उपलब्ध कराये तथा
3. राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है, जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।
4. मुख्यमन्त्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधानसभा को भंग करने की सिफारिश राज्यपाल से कर सकता है।

5.3.2 मुख्यमन्त्री के कार्य

शक्तियों और कार्यो की दृष्टि से मुख्यमन्त्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्यमंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्यमंत्री की सारी शक्तियाँ और कार्य मंत्री परिषद में निहित हैं, जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढाती है और कानून पास हो जाते हैं तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित हैं, यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है। परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका को संबोधित करता है तथा संदेश भेजता है, परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधानसभा को बर्खास्त करने का अधिकार है, लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है, उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है, परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

5.3.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते हैं और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक मंत्री विधानसभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक-दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरूद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधानसभा के सदस्य सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधानसभा में

पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते है। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते हैं, क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 52वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधानसभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरूद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधानसभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रिमण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली-जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

5.3.4 मुख्यमन्त्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमन्त्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते हैं। ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

5.4 मुख्यमंत्री और राज्यपाल

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कडवाहट रहती है। इस कडवाहट का कारण हैं, दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है। जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती हैं, तब राज्यपाल और मुख्यमन्त्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली-जुली सरकारें हैं, वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उडीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

सन् 1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 6 दिस्मबर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कार सेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर-कानूनी थी, क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन

जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में कांग्रेस सरकार का फैसला था वह औचित्यपूर्ण था, क्योंकि बर्खास्तगी का आधार ''धर्म निरपेक्षता'' था। जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि तीनों राज्यों की बी0जे0पी0 सरकारें अपना धर्मनिरपेक्ष आचार खो चुकी थी, इसलिए उनका बना रहना संविधान की आत्मा के विपरीत था। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमन्त्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमन्त्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी अयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसम्बर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमन्त्री बनाये गये, चुनाव लड़ा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है?
2. राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?
3. राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?
4. भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?
5. राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है?
6. राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?
7. दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?
8. अयोध्या का विवादित ढांचा कब गिराया गया?

5.5 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी और राज्यों में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है- राज्यपाल, जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री, जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमन्त्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं, वह संवैधानिक है। लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-356 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है, जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। उत्तर प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री पं0 गोविन्द वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बडी गरिमा का पद है। उदाहरण उत्तर प्रदेश की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही हैं, जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

5.6 शब्दावली

कन्वेंशन- परम्परा, रेमीशन- सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना, रेपरीव- सजा माफ करना या टालना, डिसक्रीशन- छूट की स्वतंत्रता, रेस्पाइट- सजा में राहत देना

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राष्ट्रपति, **2.** 35 वर्ष, **3.** अनुच्छेद- 356, **4.** संघात्मक, **5.** मुख्यमंत्री, **6.** राज्यपाल, **7.** 42वें संवैधानिक संशोधन, **8.** 6 दिसम्बर 19192

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दुबे, एस0एन0- भारतीय संविधान और राजनीति।
2. माहेश्वरी, श्रीराम- स्टेट गवर्नमेंटस इन इण्डिया।
3. पाण्डे, लल्लन बिहारी- दि स्टेट एक्जीक्यूटिव।
4. पायली, एम0वी0- इण्डियाज कान्सटीटयूशन।

5.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।
4. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा।
5. भारतीय लोक प्रशासन- बी0 एल0 फड़िया।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 6 राज्य सचिववालय, मंत्रीमण्डलीय सचिवालय और मुख्य सचिव

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 सचिवालय का अर्थ
6.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका
6.2.2 सचिवालय की संरचना
6.2.3 राज्य सचिवालय के विभाग
6.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर
6.2.5 नीति और प्रशासन
6.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका
6.2.7 सचिवालाय एक समालोचना
6.3 मंत्रीमण्डलीय सचिवालय
6.4 मुख्य सचिव
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

सरकार के दो घटक होते हैं। राजनीति और प्रशासकीय दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वह राजनीतिक घटक नीतियां बनाता है। नीतियों से सम्बन्धित कानून बनाता है और निर्णय लेता है। प्रशासकीय घटक इन नीतियों, निर्णयों और कानूनों को क्रियान्वित करता है। राजनीतिक घटक प्रशासकीय घटक की सहायता के बिना नीतियों और कानूनों का निमार्ण नहीं कर सकता। जहाँ प्रशासकीय प्रक्रिया चलती है, उसे सचिवालय कहा जाता है। इस इकाई में इसी राज्य सचिवालय की संरचना और कार्यों पर बहस की गयी है। यह समझाया गया है कि सचिवालय विभागीय पद्धति क्या है? तथा सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर क्या है? इसके अतिरिक्त राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका स्थिति और कार्यों को भी समझाया गया है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य सचिवालय का अर्थ, महत्व और उसकी भूमिका समझ सकेंगे।
- सचिवालय की सीधी संरचना को और राज्य सचिवालय में विभागीयकरण की पद्धति समझ पायेंगे।
- सचिवालय विभाग, मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय तथा कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख का अंतर समझ सकेंगे।

- आपको शब्द 'नीति' और 'प्रशासन' के अर्थ समझ में आयेंगे और यह जान सकेंगे कि नीति और प्रशासन एक विवेकशील प्रक्रिया है या सत्ता प्रक्रिया है।
- राज्य सचिवालय व्यवस्था में मुख्य सचिव के महत्व को और उसकी भूमिका को समझ पायेंगे।

6.2 सचिवालय का अर्थ

राज्य स्तर पर शासन के तीन घटक होते है- मंत्री, सचिव तथा कार्यपालिका प्रमुख, अंतिम को अक्सर निर्देशक कहा जाता है। मंत्री और सचिव मिलकर सचिवालय का निर्माण करते हैं, जबकि कार्यपालिका प्रमुख के कार्यालय को निदेशालय कहा जाता है।

शाब्दिक तौर पर सचिवालय का अर्थ है, सचिव का कार्यालय। यह तब अस्तित्व में आया जब भारत में शासन सचिवों द्वारा चलाया जाता था। स्वतंत्रता के बाद शासन करने की शक्ति जनप्रतिनिधि मंत्रियों के हाथ में चली गयी और इस तरह मंत्रालय सत्ता का केन्द्र बन गया। नई परिस्तिथियों में शब्द 'सचिवालय' मंत्री के कार्यालय का पर्यायवाची बन गया है, क्योंकि मंत्री को सलाह देने का कार्य सचिव करता है। इसलिए मन्त्रालय में मंत्री के बाद सचिव प्रमुख होता है और अपने स्थाई चरित्र के कारण वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। सरल शब्दों में सचिवालय वह भवन है जिसमें मंत्री और सचिव के कार्यालय होते हैं। मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासकीय प्रमुख।

6.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका

राज्य प्रशासन की सर्वोच्च स्तर की हैसियत से सचिवालय का कार्य नीति-निर्माण में राज्य सरकार की सहायता करना तथा विधायनी कार्यों में उसे सहयोग करना है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने राज्य प्रशासन पर अपनी जो रिर्पोट दी है वह इस प्रकार है-

- नीति-निर्माण, समय-समय पर नीतियों के संशोधन तथा विधायनी उत्तरदायित्वों के निर्वाह में सचिवालय सहायता प्रदान करे।
- विधायन, नियमों और अधिनियमों का प्रारूप तैयार करे।
- नीतियों और योजनाओं में समन्वय स्थापित करे, उनके क्रियान्वन पर नजर रखें तथा परिणामों की समीक्षा करे।
- बजट तैयार करे और व्यय को नियन्त्रित करे।
- भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों से सम्पर्क बनाये रखे।
- प्रशासकीय तंत्र के संचालन पर पैनी नजर रखे तथा कार्यकर्ता वर्ग की योग्यता तथा दक्षता को विकसित करे।

नीति-निर्माण तथा नीति क्रियान्वन दो अलग पहलू है। इनको एक-दूसरे से पृथक रहना चाहिए । यह प्रशासकीय दर्शन का मूल मंत्र है। यदि ऐसा होता है तो उसके अनेक लाभ हैं-

- यदि नीति-निर्माण उपकरण, नीति क्रियान्वयन से पृथक रहता है, तो नीति-निर्माण की प्रक्रिया शासन के वृहत लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है न कि संकुचित, वर्गीय हितों की ओर।

- नीति-निर्माण के लिए समय चाहिए। यदि नीति-निर्माण और उसका क्रियान्वयन एक ही हाथ में होगा तो नीति-निर्माण प्रक्रिया में विलम्ब होगा। नीति-निर्माण का सम्बन्ध भावी योजनाओं से है। लेकिन इस पर ध्यान न देकर दिन-प्रतिदिन के कामों पर ध्यान अधिक लगाना राज्य के लिए हानिकारक होता है।
- सचिवालय, मंत्री का एक निष्पक्ष परामर्शदाता है। सचिव, शासन का सचिव है न कि मंत्री का। वह मंत्री के हितों को ध्यान में न रखकर, राज्य के हितों को ध्यान में रखता है। सचिवालय से जो प्रस्ताव आये वे दूरगामी परिणामों के होते है। इसलिए प्रस्तावों को संतुलित होना चाहिए।
- नीति-निर्माण तत्कालीन प्रशासन से पृथक होना चाहिए तथा दिन-प्रतिदिन का कार्य अन्य निकायों पर छोड़ना चाहिए। इससे सत्ता हस्तान्तरण निश्चित होता है।

यहाँ सचिवालय की वृहत भूमिका को समझना अनिवार्य है-

- सचिवालय की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नीति-निर्माण में है। यह मन्त्रियों को सरकारी नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। ऐसा वह दो तरीके से करता है, प्रथम- सचिव नीति-निर्माण के लिए अनिवार्य आंकड़ों और सूचना उपलब्ध कराता है। दूसरे- सचिव मन्त्रियों के सामने उन योजनाओं को रखता है, जिनके वायदे मन्त्रियों ने जनता से किये थे। वह इन योजनाओं का पूरा प्रारूप तैयार करता है।
- सचिवालय मन्त्रियों को उनके विधायनी कार्यों में सहायता प्रदान करता है। विधायन के प्रारूप जो मंत्री व्यवस्थापिका के पटल पर रखते है, सचिवों के द्वारा तैयार किये जाते है।
- व्यवस्थापिका में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मन्त्रियों को जो सूचना चाहिए, सचिव ऐसी तार्किक सूचनाओं से मन्त्रियों को अवगत कराता है। सचिव उन सूचनाओं को भी उपलब्ध कराता है जो व्यवस्थापिका की समितियाँ चाहती है।
- सचिवालय एक संस्थागत स्मरण शक्ति (मेमोरी) के रूप में काम करता है। इसका अर्थ है कि पैदा होने वाली समस्याओं का परीक्षण साक्ष्यों की रौशनी में करना। सचिवालय में जो दस्तावेज और फाइलें सुरक्षित होती हैं, वे संस्थागत स्मरण शक्ति का काम करती हैं और किसी मामले के निबटारे में सहायता प्रदान करती है।
- सचिवालय एक सरकार तथा दूसरी सरकार के मध्य सूचना एवं संचार का माध्यम है। यह एक सरकार तथा योजना आयोग और वित्त आयोग के मध्य भी ऐसा ही माध्यम है।
- अंत में सचिवालय नीति-निर्माण के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करता है और क्रियान्वयन को क्षेत्रीय निकायों के माध्यम से संचालित करता है।

6.2.2 सचिवालय की संरचना

सीधे रूप में (लम्बात्मक) किसी सचिवालय विभाग की दो प्रकार की पद सोपानीय बनावट होती है। एक पदाधिकारी तथा दूसरा कार्यालय।

सचिवालय की संरचना में पदाधिकारी पारम्परिक रूप में अधिकारियों की पदसोपानीय व्यवस्था के तीन स्तर होते हैं। इसके अन्तर्गत, विशिष्ट रूप से एक प्रशासकीय प्रमुख के अन्तर्गत होता है, जिसे सचिव कहते हैं। सचिव की सहायता के लिए उप-सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं, क्योंकि विभिन्न सचिवालय विभागों का काम बढ़ गया है, इसलिए सचिव और उपसचिव के मध्य, कुछ राज्यों में अतिरिक्त सचिव और संयुक्त सचिव भी होते हैं।

भारत में सचिवालय पद्धति की एक विशेषता यह है कि कार्यालय के दो भाग होते हैं। पहला, उच्चतर अधिकारियों का एक संक्रमण (आने-जाने वाला) संवर्ग (पदाधिकारियों का समूह) तथा दूसरा, स्थायी कार्यालय। इसका अर्थ

यह है कि प्रत्येक विभाग में उच्च प्रशिक्षित पदाधिकारी आते-जाते रहते हैं, लेकिन कार्यालय स्थायी कर्मचारियों से सम्पन्न होता है। यह कार्यालय सचिवालय विभाग की निरन्तरता को बनाये रखता है। कार्यालय में अधीक्षक या अनुभाग अधिकारी, सहायक, उच्चतर और निम्नतर खण्ड लिपिक, स्टेनों टाइपिस्ट (सम्पूर्ण कमप्यूटर नेटवर्क में प्रशिक्षित सेवी वर्ग) इत्यादि आते हैं। कार्यालय, अधिकारियों को वह सामग्री जुटाता है जो नीति-निर्माण के लिए आवश्यक होती हैं। वह क्रियान्वयन का कार्य दिन-प्रतिदिन के हिसाब से निबटाता है।

सचिवालय के एक विभाग की संगठनात्मक संरचना निम्न प्रकार की होती है- विभाग- सचिव, खण्ड- अतिरिक्त/संयुक्त सचिव, मुख्य विभाग- उप सचिव/निदेशक, कार्यालय- सह सचिव और अनुभाग- अनुभाग अधिकारी। (अंग्रेजी में डिपार्टमेंट, विंग, डिवीजन, ब्रांच सेक्शन)

अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अन्तर्गत रहती है। अनुभाग में सहायक, लिपिक, टाइपिस्ट, कम्पयूटर संचालक आते हैं। वास्तव में अनुभाग ही कार्यालय है। दो अनुभागों से ब्रांच बनती है, यह एक सह सचिव के अन्तर्गत होती है। दो ब्रांचों से एक डिवीजन या मुख्य विभाग बनता है जो उप-सचिव के अन्तर्गत आता है। जब एक विभाग का काम बढ जाता है तब कई खण्ड या विंग बनाये जाते हैं जो अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के अन्तर्गत होते है। संगठनात्मक पदसोपान पर सचिव होता है जो विभाग का कार्यभार संभालता है।

6.2.3 राज्य सचिवालय के विभाग

राज्य सचिवालय के संगठनात्मकता की प्रकृति को बनाए रखने के लिए अनेक विभाग सम्मिलित रहते हैं, जिसमें- सामान्य प्रशासन विभाग, गृह विभाग, राजस्व विभाग, खाद्य एवं कृषि विभाग, वित्त और योजना विभाग (योजना खण्ड), वित्त और योजना विभाग (वित्त खण्ड), विधि विभाग, सिंचाई और विद्युत विभाग, चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग, उद्योग विभाग, व्यवस्थापिका विभाग, पंचायत राज्य विभाग, नियंत्रक क्षेत्र विकास विभाग, परिवहन, सड़क और भवन विभाग, आवास और नगरपालिका प्रशासन तथा शहरी विकास विभाग, श्रम, रोजगार और तकनीकि शिक्षा विभाग, सामाजिक कल्याण विभाग और वन एवं ग्रामीण विकास विभाग।

6.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर

सचिवालय विभागों को कार्यकारिणी विभागों से अलग करके देखा जाना चाहिए। सचिवालय का कार्य राजनीतिक कार्यकारिणी को उसके कार्यों में सहायता करना तथा परामर्श देना है। कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष जिनको निदेशक कहा जाता है, राजनीतिक कार्यकारिणी द्वारा निर्मित नीतियों को क्रियान्वित करते हैं। दूसरे शब्दों में सचिव नीति-निर्माण में सहायता करता है और निदेशक नीति क्रियान्वयन में।

प्रत्येक सचिवालय विभाग के अन्तर्गत अनेक कार्यकारिणी विभाग आते हैं। लेकिन यहाँ यह याद रखना होगा कि सभी सचिवालय विभागों में कार्यकारिणी विभाग नहीं आते हैं। कुछ सचिवालय विभागों का सम्बन्ध केवल परामर्शदाता तथा नियन्त्रक के रूप में होता है। उदाहरण के लिए कानून और वित्त विभाग ऐसे ही हैं।

सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग जिनका उद्देश्य नीति-निर्माण तथा नीति क्रियान्वयन से होता है, वास्तव में मन्त्रिपरिषद के व्यक्तित्व का विस्तार है। दूसरे अर्थों में ये दोनों मन्त्रियों का मस्तिष्क और हाथ है। मन्त्रिपरिषद इनके माध्यम से सोचता है और निर्णय लेता है तथा इनके माध्यम से अपनी नीतियों को क्रियान्वित कराता है।

सचिवालय विभाग के मुखिया सेवीवर्ग (आई0ए0एस0) के होते हैं, जबकि कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख विशिष्ट होते हैं। अर्थात विशिष्ट प्रमुख सामान्य प्रमुखों के निरीक्षण में काम करते है। दूसरे शब्दों में निदेशक सचिव के

निरीक्षण में कार्य करता है। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड में शिक्षा निदेशक जो शिक्षा में विशिष्ट होता है, सचिव के निरीक्षण में काम करता है जो आई0ए0एस0 होता है।

6.2.5 नीति और प्रशासन

हम सचिवालय तथा निदेशालय की स्पष्ट भूमिका के बारे में बता चुके है। दोनों एक-दूसरे से पृथक हैं। अब सवाल यह उठता है कि वास्तव में क्या दोनों एक-दूसरे से पृथक हैं। उत्तर यह है कि अवधारणात्मक स्तर पर वे एक-दूसरे से पृथक हैं। दोनों को स्पष्ट घटनाक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर नीति और प्रशासन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वास्तव में यह कहना कठिन है कि कहाँ नीति का अन्त होता है और कहाँ से प्रशासन का आरम्भ?

नीति का सम्बन्ध राजनीतिक चुनावों से होता है और वह वृहत मूल्यों के इर्द-गिर्द घूमती है, जबकि प्रशासन का सम्बन्ध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से है। अतः प्रशासन क्रियान्वयन की समीक्षा, संगठनात्मक संरचनाओं के निर्माण, संगठन में भर्ती, क्रियाओं में समन्वय, निदेशन, नियन्त्रण और प्रोत्साहन से सम्बन्धित है।

प्रशासन, प्रशासकों का दायरा है जो उन नीतियों को क्रियान्वित करते हैं जो कानून में निहित है। एक अवधारणा यह है कि राजनीति, प्रशासन से परे होनी चाहिए। मेक्स वेबर ने नीति और प्रशासन के पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है। उसका तर्क है कि राजनीतिज्ञों के उत्तरदायित्व सेवीवर्ग के उत्तरदायित्वों से पृथक होते हैं। राजनीति का सार है एक बात पर जमे रहना, नीतियों की वैयक्तिक जिम्मेदारी लेना और राजनीतिक भूमिका अदा करना। प्रशासन का सार है राजनीतिक सत्ता के आदेश का विवेकपूर्ण क्रियान्वयन, भले ही वह प्रशासक को गलत लगे। प्रशासक राजनीतिक तौर पर तटस्थ रहता है। वह, उन कार्यो को करता है जो उससे करने को कहा जाता है।

फिर भी शासकीय विषमताओं के कारण प्रशासकों को नीति-निर्माण या राजनीतिक निर्णयों में सम्मिलित होना पड़ता है। इसलिए व्यावहारिक रूप से नीति और प्रशासन में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है। इसके मुख्य कारण हैं-

1. प्रशासक अपने कार्य में दक्ष होते हैं, जिसका प्रयोग नीति-निर्माण में राजनीतिज्ञ करते हैं, क्योंकि प्रशासक स्थायी होते हैं इसलिए वह समस्याओं को अच्छी तरह समझते हैं। राजनीतिज्ञ आते-जाते रहते है, इसलिए प्रशासकों पर निर्भर रहते है। अतः प्रशासकों का अपना महत्व है।
2. इसके अतिरिक्त प्रशासक तथ्यों, आंकड़ों और सूचनाओं से सम्पन्न होते हैं। एक विशेष क्षेत्र में उनकी बुद्धि कुशाग्र और पैनी होती है। राजनीतिज्ञों को नीति-निर्माण के लिए आंकडे और तथ्य चाहिए होते हैं।
3. सरकारें डाक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों तथा अर्थशास्त्रियों को भी प्रशासक नियुक्त करती है जो सरकारों को अपना ज्ञान और दक्षता प्रदान करते है। वे तकनीकि ज्ञान प्रदान करते हैं।
4. प्रशासक योग्यता के आधार पर चुनकर आते हैं। इसलिए उनका महत्व राजनीतिज्ञों से अधिक होता है और वे नीति-निर्माण का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं।

6.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका

सेवीवर्ग की दक्षता में वृद्धि, सरकारी कार्यों में बढोत्तरी तथा प्रशासकीय जटिलता ने राजनीतिज्ञों को पूरी तरह प्रशासकों पर निर्भर कर दिया है। वे नीति-निर्माण में बिना प्रशासकों की सहायता के एक कदम भी आगे नहीं चल सकते। इसके अनेक कारण हैं -

नीति-निर्माण तथ्यों, आंकड़ों, सूचनाओं इत्यादि के आधार पर होता है । यह नौकरशाही द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। इसके लिए राजनीतिज्ञ प्रशासकों पर निर्भर रहते हैं।

सेवीवर्ग अपने प्रशासकीय अनुभव के आधार पर अनुभवहीन राजनीतिज्ञों को प्रशासकीय, तकनीकि और वित्तीय सम्बन्धी परामर्श देता है जो नीति-निर्माण के व्यावहारिक पहलू हैं।

सेवीवर्ग विधायन (विधेयक) का प्रारूप तैयार करते हैं। मन्त्रालय की स्वीकृति के बाद यह विधेयक व्यवस्थापिका के पटल पर उसकी स्वीकृति के लिए रखे जाते हैं। अर्थात नीति-निर्माण या विधायन की पहल प्रशासक ही करते हैं।

प्रशासकों के पास विवेक के प्रयोग की स्वतंत्रता होती है। कहाँ किस रूप में और किसे किसी बात को चुनने का अधिकार प्रशासक को है। इस तरह प्रशासक अतिरिक्त विधि निर्माता होते हैं। राजनीतिज्ञों को तथा व्यवस्थापिका को प्रशासकों के फैसले को मानना पड़ता है। विधायन का कार्य बड़ा तकनीकी होता है और यह तकनीकी ज्ञान केवल दक्ष प्रशासकों को ही होता है। अतः राजनीतिज्ञों का प्रशासकों पर निर्भर रहना एक मजबूरी है। दूसरे कब, कहाँ और किस स्थिति में कानूनों को लागू करना होता है, यह भी प्रशासक की विवेक की शक्ति पर निर्भर है। अतः यहाँ यह कहना उचित होगा कि राजनीतिज्ञ तो नीतियों की मात्र रूप-रेखा तैयार करते हैं, वास्तविक नीति-निर्माता और विधि निर्माता प्रशासक ही है।

6.2.7 सचिवालय एक समालोचना

वर्तमान समय में सचिवालय की अनेक बिन्दुओं पर आलोचना होती है। विचारात्मक दृष्टि से सचिवालय का औचित्य है। यह श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करता है। श्रम का विशिष्टीकरण होता है। यह नीति-निर्माण और नीति क्रियान्वयन को पृथक करता है, जिससे केन्द्रीयकरण हतोत्साहित होता है।

लेकिन व्यवहार में कहानी कुछ और है। सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर है। सचिवालय के आचरण से सचिवालय और निदेशालय में तनाव पैदा होता है। तनाव के कारण अनेक हैं -

- सचिवालय का रूख विस्तारवादी है। अर्थात यह उन कार्यों को करता है जो इसके नहीं है। यह मात्र नीति-निर्माण तक सीमित नहीं रहता है। यह क्रियान्वयन में भी हस्तक्षेप करता है। इससे क्रियान्वयन अभिकरणों की सत्ता कमजोर होती है।
- सचिवालय सत्ता का हस्तान्तरण करने से हिचकिचाता है। परिणाम स्वरूप नीति क्रियान्वयन में विलम्ब होता है। सारा समय सचिवालय से परामर्श करने और स्वीकृति प्राप्त करने में लग जाता है।
- कार्यकारिणी विभागों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों की जाँच सचिवालय में लिपिक स्तर पर होती है ,जो विलम्ब का कारण होता है। यह अनावश्यक है, क्योंकि जाँच निदेशालय स्तर पर अच्छी तरह होती है।
- सामान्यज्ञों (जेनरलिस्ट) द्वारा, विशेषज्ञों (स्पेशलिस्ट) पर नजर रखना, उनके प्रस्तावों का निरीक्षण करना इस दौर में अतार्किक है।

इस स्थिति ने सचिवालय को शासकीय सत्ता का केन्द्र बना दिया है। जिसकी वजह से सचिवालय तथा निदेशालय में तनाव बना रहता है। लेकिन सचिवालय को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसके पक्ष में भी अनेक तर्क दिये जा सकते हैं-

- लोक प्रशासकीय व्यवस्था में सचिवालय एक अनिवार्य संस्था है। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद सचिवालय ने प्रशासन को सन्तुलन, स्थायित्व और निरन्तरता प्रदान की है। वह मन्त्रालय तन्त्र का केन्द्रीय बिन्दु है। उसके माध्यम से अन्तःमन्त्रालय समन्वय पैदा होता है, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व के लिए अनिवार्य है।

- सचिवालय व्यवस्था नीति-निर्माण को, नीति क्रियान्वयन से पृथक करने में सहायता करती है। इसने श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण और सत्ता के हस्तान्तरण को सुलभ किया है।
- सचिवालय ने स्वयं को नीति क्रियान्वयन से मुक्त रखा है, उसके पास राज्य के बृहत हितों की पूर्ति के लिए दूरदर्शी कार्यक्रम तैयार करने का पर्याप्त समय होता है।
- मन्त्री नीति-निर्माण के तकनीकी पहलुओं से अनभिज्ञ होता है। पूरी तरह सचिवों पर निर्भर रहता है जो उसको तार्किक वस्तुगत परामर्श देते हैं। इस तरह मन्त्री विशेषज्ञ के चंगुल से बच जाता है।
- सचिवालय उन कार्यक्रमों का वस्तुगत मूल्यांकन करता है, जो क्षेत्रों में क्रियान्वित होते हैं। यह कार्यकारिणी संस्थाओं पर नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि जो कार्य वे करती है, उनका समीक्षक उन्हें नहीं बनाया जा सकता।

कुल मिलाकर सचिवालय एक उपयोगी संस्था है। इसने समय की मांग को पूरा किया है। सचिवालय का स्थान कोई संस्था नहीं ले सकती। सचिवों की सेवा अवधि के स्थायित्व ने इस संस्था को शक्ति, तेजस्विता और गतिशीलता प्रदान की है।

6.3 मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय

सचिवालय और मन्त्रिमण्डल के मध्य के कार्यालय को मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कहा जाता है। यह एक कर्मचारी (स्टाफ) समूह है, जिसकी नीति-निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण समन्वयक की भूमिका होती है। यह मुख्यमन्त्री के निर्देशन में कार्य करता है। मुख्यमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों के निजी सचिव और उनके कार्यालय इसका निमार्ण करते हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परम्परा सर्वप्रथम सन् 1948 में पड़ी, जब केन्द्रीय कैबिनेट ने आर्थिक और सांख्यिकी समन्वय इकाई को केन्द्रीय कैबिनेट का एक अंग बना दिया है। इसका उद्देश्य विभिन्न मन्त्रालयों, विभागों से तत्कालीन सांख्यिकी इकाइयों से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करके समय-समय पर कैबिनेट के सामने रखना था। इसका कार्य विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यालयों को समन्वित करके परामर्श देना भी था।

मन्त्रिमण्डल की सक्षमता बहुत कुछ हद तक मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। इसका मुख्य कार्य कैबिनेट की नीतियों के लिए एक अर्थपूर्ण कार्यक्रम (ऐजेन्डा) तैयार करना होता है तथा तार्किक कार्यवाही के लिए अनिवार्य सूचना तथा सामग्री प्रदान करना होता है। इसके साथ ही इसका कार्य कैबिनेट और समितियों की बहसों और निर्णयों का लेखा-जोखा रखना भी होता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल और राज्यपाल के मध्य एक संवाद माध्यम है। वह सभी मन्त्रालयों से सम्बन्धित कार्यक्रम तय करता है तथा उन्हें मन्त्रालयों को आवंटित करता है। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कैबिनेट समितियों को कार्यालयी सहायता प्रदान करता है।

संसदीय व्यवस्था में समितियों (कमेटीज) का बड़ा महत्व है। यह समितियाँ अन्तः मन्त्रालयों के मामलों की समीक्षा करती हैं और उसके नतीजों से शासन को अवगत कराती हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिव इन समितियों की अध्यक्षता करता है तथा लिये गये निर्णयों की सिफारिश सरकार से करता है।

6.4 मुख्य सचिव

प्रत्येक राज्य में एक मुख्य सचिव होता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का केन्द्रीय बिन्दु होता है। यह सचिवालय के सभी विभागों को नियन्त्रित करता है। यह मात्र समानों में प्रथम ही नहीं है, यह सचिवों के प्रमुख है। राज्य प्रशासन में उसकी विभिन्न भूमिकाएं हैं और यही उसकी सर्वोच्च स्थिति निश्चित करती है।

मुख्य सचिव, मुख्यमन्त्री और राज्य कैबिनेट सचिव का परामर्शदाता होता है। वह सामान्य प्रशासन विभाग का मुखिया होता है। जिसका राजनैतिक मुखिया मुख्यमन्त्री होता है। राज्य प्रशासन में इसकी स्थिति अद्वितीय है। राज्य में जो कार्य वह करता है, केन्द्र में वही काम समान स्तर के तीन प्रमुख करते हैं अर्थात कैबिनेट सचिव, गृह सचिव तथा वित्त सचिव। मुख्य सचिव राज्य में सेवीवर्ग का भी प्रमुख है। वह राज्य सरकार, केन्द्र तथा अन्य राज्य सरकारों के मध्य संचार माध्यम है। वह सरकार का प्रमुख प्रवक्ता है। वह राज्य प्रशासकीय व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। पूरी प्रशासकीय व्यवस्था में उसके स्तर का कोई अधिकारी नहीं होता है।

यहाँ एक विशेष बात यह है कि मुख्य सचिव, कार्यकाल की अवधि से मुक्त है। वह या तो मुख्य सचिव की हैसियत से सेवा निवृत्त होगा या फिर यहाँ से केन्द्रीय शासन में अधिक महत्वपूर्ण पद पर जायेगा।

एक और बात को भी याद रखना होगा। यह आवश्यक नहीं है कि इस पद पर सर्वाधिक वरिष्ठ सेवीवर्ग का अधिकारी ही तैनात किया जाये। सन् 1973 तक यही स्थिति थी। राजनीतिक पसंद इस पद का मापदण्ड था। अब स्थिति यह है कि केन्द्रीय स्तर का अधिकारी ही इस पर पहुँचता है और उसको वेतन भी भारत सरकार के सचिव के बराबर मिलता है।

यहाँ यह सवाल भी उठता है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाने के बाद मुख्य सचिव की हैसियत क्या होती है? जहाँ राष्ट्रपति शासन के दौरान केन्द्र सलाहकार नियुक्त नहीं करता है, वहाँ मुख्य सचिव के पास वे सारी शक्तियाँ होती हैं जो मुख्यमंत्री की होती हैं। लेकिन सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं तो मुख्य सचिव अपनी प्रशासकीय हैसियत में काम करता है, क्योंकि सलाहकार वरिष्ठ सेवीवर्ग के अधिकारी होते हैं।

6.4.1 मुख्य सचिव के कार्य

मुख्य सचिव के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

1. मुख्य सचिव मुख्यमन्त्री का मुख्य सलाहकार है। इस स्थिति में वह मंत्रियों द्वारा तय किये गय प्रस्तावों को संयोजित करके उनके प्रशासकीय नतीजों पर काम करता है।
2. मुख्य सचिव, कैबिनेट का सचिव है और इस हैसियत से वह कैबिनेट की मीटिंग का ऐजेन्डा तैयार करता है, उनकी व्यवस्था करता है, इन मीटिंगों के रिकार्ड सुरक्षित रखता है, यह निश्चित करता है कि मीटिंग के फैसलों पर अमल हो और वह कैबिनेट समितियों की सहायता करता है।
3. मुख्य सचिव सिविल सेवा का राज्य में मुखिया है। इस हैसियत से वह सिविल सेवा के अधिकारी को तैनाती तथा स्थानान्तरण सुनिश्चित करता है।
4. मुख्य सचिव अपनी शक्तिशाली स्थिति के कारण सचिवालय विभागों का मुख्य समन्वयक बन जाता है। वह अंतर-विभागों में सहयोग और समन्वय स्थापित करता है। इस उद्देश्य के लिए वह सचिवालय तथा अन्य स्तरों पर बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। बैठकों के माध्यम से वह विभिन्न अभिकरण के मध्य सहयोग और समन्वय स्थापित करता है।
5. सचिवों के प्रमुख की हैसियत से मुख्य सचिव अधिकांश समितियों की अध्यक्षता करता है और उनकी सदस्यता ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त वह उन सभी मामलों पर जो अन्य सचिवों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं, उनकी देख-रेख भी करता है। इस अर्थ में मुख्य सचिव अवशेष वारिस है।
6. मुख्य सचिव बारी बारी से जोनल परिषद का सदस्य होता है, यदि राज्य उस परिषद का सदस्य हो।
7. वह सचिवालय भवनों पर पूरा नियन्त्रण रखता है और कौन सा स्थान किसको आवंटित करना है, यह तय करता है। वह केन्द्रीय अभिलेख खण्ड, सचिवालय, पुस्तकालय तथा आरक्षित स्थानों पर नजर रखता है। मन्त्रियों से सम्बन्धित सेवीवर्ग पर भी नियन्त्रण रखता है।

8. संकट के समय मुख्य सचिव राज्य के स्नायू केन्द्र का काम करता है। वह संकट से सम्बन्धित अभिकरणों को नेतृत्व और मार्गदर्शन देता है, ताकि वह संकटों का सामना करके समाधान खोज सके। यह स्वीकार करना होगा सूखा, बाढ़ या साम्प्रदायिक दंगों के समय वह वास्तव में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और सम्बन्धित अभिकरणों के माध्यम से राहत पहुँचाता है।

संक्षेप में मुख्य सचिव राज्य का व्यस्ततम अधिकारी है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने मुख्य सचिव की इस प्रकार की व्यस्त शैली को आनावश्यक बताया है। उसने लिखा, ''यह दुर्भागय की बात है कि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्तियों के गजेट नोटिफिकेशन पर हस्ताक्षर करता है, पदोन्नतियों, स्थानान्तरणों अवकाश पर गौर करता है।'' अतः मुख्य सचिव को इन कार्यों से मुक्ति मिलनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परम्परा सर्वप्रथम सन् 1948 में पड़ी। सत्य/असत्य
2. मैक्स बेबर ने नीति और प्रशासन के पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है। सत्य/असत्य
3. सचिवालय वह भवन है, जिसमें मंत्री और सचिव के कार्यालय होते हैं। सत्य/असत्य
4. मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासनिक प्रमुख। सत्य/असत्य
5. सचिव शासन का सचिव है न की मंत्री का। सत्य/असत्य
6. अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अन्तर्गत रहती है। सत्य/असत्य

6.5 सारांश

शब्द सचिवालय का अर्थ है, ऐसे विभागों का भवन, जो राजनीतिक स्तर पर मंत्रियों और प्रशासन के स्तर पर सचिवों के अधीनस्थ होते हैं। सचिव मंत्रियों को उनकी नीति-निर्माण तथा विधायनी कार्यों में सहायता करते हैं।

संगठनात्मक तौर पर कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष या प्रभारी पृथक एवं विशिष्ट प्रशासकीय इकाईयों का निमार्ण करते हैं, जो पदसोपानीय दृष्टि से सचिवालय विभागों के अधीन होते हैं। अधिकांशतः कार्यकारिणी विभागों को निदेशालय कहा जाता है और उनके प्रमुखों को निदेशक कहा जाता है। निदेशालय नीति को क्रयान्वित करते है। प्रत्येक सचिवालय अनेक निदेशालय के प्रभारी होते है।

मुख्य सचिव राज्य के प्रशासकीय ढ़ाँचे के प्रमुख की हैसियत से प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करता है तथा कार्यों में समन्वय लाता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का स्नायू केन्द्र है।

6.6 शब्दावली

उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी, क्रियान्वयन- कार्य करना, दूरगामी- बहुत आगे की सोचना या करना, परामर्शदाता- सलाह देना, सेवीवर्ग- प्रशासक या अधिकारी वर्ग

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी ए0- केन्द्रीय प्रशासन।
2. महेश्वरी, एस0 आर0- भारतीय प्रशासन।
3. महेश्वरी, एस0 आर0- स्टेट गवर्नमेन्ट इन इण्डिया।

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।
4. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा
5. भारतीय लोक प्रशासन- बी0 एल0 फड़िया

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सचिवालय को संरचना को सपष्ट करते हुए सचिवालय की स्थिति और भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
2. सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग का अन्तर को स्पष्ट करते हुए नीति और प्रशासन में सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
3. नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका की चर्चा कीजिए।
4. सचिवालय और मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई- 7 राज्य योजना आयोग

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 राज्य योजना आयोग की संरचना
7.2.1 राज्य योजना आयोग के उद्देश्य
7.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये गये कार्य
7.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति
7.4 योजना आयोग की उपलब्धियां और लक्ष्य
7.5 योजना और आर्थिक विकास पर सुझाव
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

भारत में नियोजित आर्थिक विकास सन् 1951 में प्रथम पंचवषीय योजना से आरम्भ होता है। नियोजित आर्थिक विकास का दृष्टिकोण एम0 विश्वेश्वरय्या ने अपनी पुस्तक 'प्लान्ड एकोनामी फार इण्डिया' में सन् 1934 में रखा था। बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1938 में 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' की स्थापना की। योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 में की गयी। यहाँ यह याद रखना होगा कि योजना आयोग का कोई उपबन्ध संविधान में नहीं है। अर्थात योजना आयोग एक संवैधानिक संस्था नहीं है। यह एक सलाहकारी संगठन है। इसके प्रारम्भिक कार्य देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ देश के संसाधनों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

राज्यों में भी केन्द्र के आधार पर राज्य योजना आयोग बनाये गये हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग की सिफारिश पर उत्तर प्रदेश राज्य में सन् 1972 में राज्य आयोग की, मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में स्थापना की गयी। पृथक राज्य का दर्जा पाने के बाद उत्तराखण्ड में भी राज्य योजना आयोग अस्तित्व में आया है। इस आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है। इसके सदस्य विभिन्न विषयों के सरकारी और गैर-सरकारी नामचीन व्यक्ति होते हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य योजना आयोग की संरचना को समझ पायेंगे।
- राज्य योजना आयोग के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- राज्य योजना आयोग ने जो कार्य किये हैं, वह समझ पायेंगे।
- विभिन्न योजनाओं की समीक्षा की जायेगी, जिसे आप जान सकेंगे।

7.2 राज्य योजना आयोग की संरचना

राज्य योजना आयोग में एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष सहित सरकारी और गैर-सरकारी विभागों के लोग सदस्य के तौर पर होते हैं। योजना आयोग का अध्यक्ष राज्य का मुख्यमंत्री होता है जो आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है।

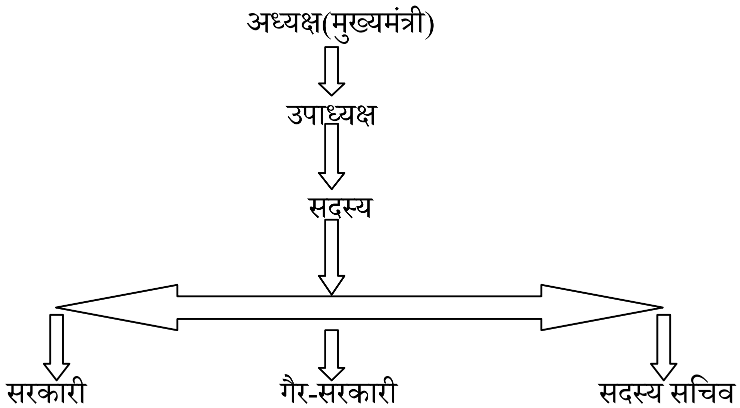

7.2.1 राज्य योजना आयोग का उद्देश्य

राज्य योजना आयोग के उद्देश्यों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

1. राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना तथा उनसे सम्बन्धित उचित निर्णय लेना।
2. राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों और वरीयताओं के अनुसार राज्य योजनाएं तैयार करना।
3. दोनों अल्प अवधि और दीर्घ अवधि के क्षेत्रीय और अचलीय योजनाओं को स्वीकृति देना और राज्य के संसाधनों का संतुलित और प्रभावशाली उपयोग सुनिश्चित करना।
4. उन तत्वों की पहचान करना जो आर्थिक और सामाजिक विकास को रोकते हैं और उन उपायों पर विचार करना जो योजनाओं को सफलतापूर्वक पूरा कर सके ।
5. राज्य के भीतर क्षेत्रीय असंतुलन के निराकरण के लिये नीतियाँ तैयार करना।
6. वार्षिक योजना की रूपरेखा तैयार करने के लिये आवश्यक निर्देश देना।
7. पंचवर्षीय योजनाओं की तैयारी के लिये आवश्यक रूप रेखा प्रदान करना।
8. अन्य कार्य जो राज्य सरकार सौंपे।
9. संसाधनों के प्रभावकारी और संतुलित उपयोग के लिये योयजनाएं तैयार करना।
10. योजनाओं के प्रभावकारी और सफल क्रियान्वयन के लिये उचित कार्यतन्त्र को प्रस्तावित करना।
11. प्रत्येक चरण पर योजनाओं की सफलता को आंकना और उनको अधिक सफलता के लिये सुधारात्मक उपाय सुझाना।
12. आयोग को सौंपे गये मामलों पर परामर्श देना तथा/अथवा उन समस्याओं से सरकार को अवगत कराना जिनका सामना आयोग करता है।

7.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये जाने वाले कार्य

राज्य योजना आयोग द्वारा निम्नांकित कार्यों का सम्पादन किया जाता है-

1. पंचवर्षीय और वार्षिक योजनाएं बनाना।

2. राष्ट्रीय विकास योजना के अनुरूप राज्य की पंचवर्षीय योजना का खाका तैयार करना और यह ध्यान रखना कि यह राज्य सरकार के दृष्टिकोण के अनुसार हो।
3. राज्य सरकार के दृष्टिकोण को राष्ट्रीय विकास परिषद (एन0डी0सी0) के सामने रखना।
4. राज्य की पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और रणनीति को सुनिश्चित करना।
5. योजना आयोग के अध्यक्ष (मुख्यमन्त्री) तथा उपाध्यक्ष से परामर्श करके राज्य की पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजना की लागत (व्यय) को अन्तिम रूप देना।
6. राज्य की पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना का प्रारूप तैयार करना।
7. विकास विभागों को प्रारम्भिक लागत आवंटित करना।
8. विभागीय प्रस्तावों की जांच-पड़ताल करना।
9. विभागीय प्रस्तावों को अन्तिम रूप देकर योजना आयोग की स्वीकृति प्राप्त करना।
10. प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त में लागत के संशोधन के लिये समायोजन प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
11. वार्षिक योजना की वित्तीय व भौतिक प्रगति के मूल्यांकन के लिये विकास विभागों की मासिक बैठकें बुलाना।
12. केन्द्रीय प्रतिभूत (स्पान्सर्स) योजनाओं का लेखा-जोखा विकास विभागों/केन्द्रीय योजना आयोग/केन्द्रीय मंत्रियों को देना और समन्वयन लाना।
13. वे कार्य करना जिसका सम्बन्ध वित्त आयोग से है।
14. जिला योजनाओं के लिये रूपरेखा तैयार करना और जिलों को लागत आवंटित करना।
15. जिला योजनाओं की जाँच-पड़ताल करना और उन्हें अन्तिम रूप देना।

7.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति

उत्तराखण्ड एक नया राज्य है जो सन् 2000 में अस्तित्व में आया। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल आबादी 1,01,16,752 है। साक्षरता में इसने 9.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है। विकास के अन्य मुद्दों पर यद्यपि अभी जानकारी उपलब्ध नहीं कराई गयी हैं,लेकिन संक्षेप में सन् 2002 में प्राप्त विभिन्न आंकडों के आधार पर उत्तराखण्ड के आर्थिक और सामाजिक विकास पर एक नजर डाली जा सकती है। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि केन्द्र ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा दिया है, जिस कारण अपनी योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत से अधिक राशि सहायता के रूप में केन्द्र से प्राप्त होती है। विभिन्न मुद्दों की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है-

1. **निर्धनता और मानव विकास-** उत्तराखण्ड राज्य आयोग की रिर्पोट के अनुसार 4,16,018 लोग राज्य में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे (सन् 2002)। लेकिन सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 29-28 लाख लोग सन् 2001 में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे। योजना आयोग ने इसकी पुष्टि की है। इस तरह राष्ट्रीय पैमाने पर यह आंकडे अधिक थे। यह स्थिति तब थी, जब 320 करोड़ रूपये वार्षिक, उत्तराखण्ड के प्रवासियों द्वारा भेजा जाता था। आज भी पहाड़ के लोगों के अस्तित्व का यही सबसे बड़ा आधार है।
2. **कैलोरी की दृष्टि से गरीबी रेखा-** योजना आयोग ने निम्नतम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन कैलोरी (भोजन द्वारा प्राप्त ऊर्जा की इकाई) लेने की सीमा भारत में 2400 आंकी है। पहाड़ में भौगोलिक दृष्टि से कैलोरी लेने की सीमा 2875 प्रति दिन होनी चाहिए, लेकिन वास्तविकता यह है कि लोगों को 2400 कलोरी भी नहीं मिल पाती जो गरीबी रेखा को अंकित करती है।
3. **पेयजल की उपलब्धता-** उत्तराखण्ड में पेयजल का मुख्य स्रोत प्राकृतिक संसाधन है। गावों में पेयजल का सदियों से यही आधार है। योजना आयोग का इस ओर ध्यान भ्रामक है। जो योजनाए इस दिशा में

बनी हैं वे त्रुटिपूर्ण है। पेयजल के मौजूद स्रोत प्रायः सूख रहे है। कारण जंगल कटान है। पहाड़ी नगरों में पेयजल की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है।

4. **विद्युत की उपलब्धता-** अनेक बार उत्तराखण्ड को विद्युत प्रदेश कहा गया है, लेकिन विद्युत प्रणाली इतनी त्रुटिपूर्ण है कि राज्य में विद्युत का संकट सदा बना रहता है। मुख्य विद्युत लाइन प्रत्येक क्षेत्र तक जाती है परन्तु अपर्याप्त विद्युत होने के कारण उसका कोई लाभ नहीं हो पाता। स्थिति यह है कि जो सन् 1985 से 88 में खम्बे लगाये गये थे उनको विद्युत सप्लाई सन् 2000 में दी गयी। दूसरे पहाड़ के गावों में विद्युत एक अनिवार्यता नहीं है , क्योंकि उसका व्यय वहन करने की लोगों में क्षमता नहीं है। स्थिति यह है कि, यद्यपि प्रत्येक गाँव तक विद्युत लाइनें पहुँची हैं, लेकिन सन् 2010 तक 50 प्रतिशत लोगों ने कनैक्शन नहीं लिये थे।
5. **उत्तराखण्ड में स्वास्थ्य की स्थिति-** स्वास्थ्य से सम्बन्धित आंकडें पूरी तरह उपलब्ध नहीं है, लेकिन जो आंकड़े उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि स्थिति अन्य राज्यों से बेहतर है। कारण है साक्षरता में वृद्धि, ठन्डी जलवायु तथा रहने के परम्परागत तरीके। लेकिन कुपोषण की समस्या बनी हुई है। पुरूषों की अपेक्षा, स्त्रियाँ और बच्चे अधिक बीमार हैं।
6. **विकलांग लोगों की समस्या-** सरकारी आंकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड में कुल आबादी का 10 प्रतिशत्, लगभग 9 लाख से अधिक लोग विकलांग हैं, परन्तु गैर-सरकारी संगठनों के अनुसार यह संख्या 15,000 है। सरकारी पहुँच विकलांगों तक नहीं है, परन्तु विकलांगो को स्वयं जिला मुख्यालय आकर पंजीकृत कराना होता है। इस दिशा में सरकार का कोई नियोजित कार्यक्रम नहीं है।
7. **बच्चों के श्रम की स्थिति-** उत्तराखण्ड में न तो ऐसी फैक्ट्रीयां है और न ही ऐसे कुटीर उद्योग-धन्धे, जहाँ बच्चों से काम लिया जाता हो। अधिकांश लोग छोटे पैमाने पर कृषि पेशे से जुड़े हैं । वे ही भू-स्वामी हैं और वे ही मजदूर। ऐसी स्थिति में बच्चों से काम लेने का न तो अवसर है और न औचित्य। इसलिए इस दिशा में सरकार की न तो कोई सोच है और न कोई योजना।

   यह एक कटु सत्य है कि पहाड़ के बच्चे, जिनके माता-पिता बहुत निर्धन हैं, वे बच्चे काम करने के लिए नगरों में जाते हैं और वहाँ अक्सर होटलों में काम करते है। सरकार को इस ओर कोई ध्यान देना होगा। एक रिर्पोट के अनुसार ऐसे बच्चों की संख्या लगभग 3.5 लाख है।
8. **भौतिक पर्यावरण का मुद्दा-** भौतिक पर्यावरण का सम्बन्ध वैसे तो पूरे देश से है, लेकिन पहाड़ों से विशेष रूप से है। बाहरी लोग जो छोटे व्यापारियों या मजदूरों के रूप में पहाडों में आते हैं, पर्यावरण के प्रति गम्भीर नहीं होते। तराई तथा भाबर के क्षेत्र जो जंगलो से भरे थे बाहरी लोगों के आने के बाद कृषि भूमि में बदल गये। इससे पर्यावरण को गहरा आघात लगा। पहाड़ के जंगलों में आग लगना एक गंभीर समस्या है। पहाड़ी क्षेत्रों में खनन ने भी पर्यावरण को चुनौती दी है। झरनें, तालाब और नदियां सूखने लगे हैं। बड़े पैमाने पर भवन निमार्ण ने इस स्थिति को और गंभीर किया है। सरकार की इस दिशा में योजनाऐं हैं, परन्तु वे प्रभावी नहीं हैं। जंगलों की रक्षा करना सरकार का कर्त्वय है। लोगों के आचरण को बदलना और पर्यावरण संरक्षण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य है।
9. **कानून और व्यवस्था-** उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद अचानक राज्य में अपराधों में वृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश की सीमाओं से सटे नगरों में छोटे अपराधियों का इतिहास पहले से रहा है। नये विकास कार्यो ने भू, जंगल, बजरी, शराब माफिया की पकड़ को मजबूत किया है। वे प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार जमा कर राजनीति पर कब्जा करना चाहते हैं। यह स्थिति भावी उत्तराखण्ड के लिये चुनौतियों से भरी है। इस स्थिति से निपटने के लिये एक प्रभावकारी राजनीति की आवश्यकता है।

10. बेरोजगारी और निर्धनता- उत्तराखण्ड राज्य सरकार के आंकड़ों के अनुसार सन् 2002 तक 348675 युवा रोजगार कार्यालय में पंजीकृत थे। इनमें से सरकार ने 194 लोगों को रोजगार दिया जबकि सन् 2002 तक अन्य निजी निकायों के माध्यम से 2865 लोगों को रोजगार दिया गया। बेरोजगारी दर पूरे भारत में 2.2 से लेकर 7 प्रतिशत तक बढ रही है। उत्तराखण्ड में भी स्थिति लगभग यही है। सरकार की योजना मानव संसाधनों का विकास करके रोजगार के अवसर बढाना है। लोगों को प्राकृतिक संसाधनों से जोड़कर जिनमें भूमि, खनिज पदार्थ और पानी भी सम्मिलित है, निर्धनता का समाधान ढूँढा जा सकता है। बेरोजगारों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में लगाकर समस्या का हल निकल सकता है।

7.4 योजना आयोग की उपलब्ध्यिां और लक्ष्य

उत्तराखण्ड नये राज्यों में से एक है परन्तु अब 19 वर्ष पुराना हो चुका है। 19 वर्ष की उपलव्धियों को संक्षेप में बताया जा सकता है-

वृहत स्तर पर (मेकरो लेवेल) विकास वृद्धि दो अंकों में हुई है, जबकि लक्ष्य 6.8 प्रतिशत वृद्धि का था। आशा यह की जाती है कि 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान यह वृद्धि 9.9 प्रतिशत होगी। जबकि राष्ट्रीय लक्ष्य 9 प्रतिशत है। इसका कारण है कि इसने जमीन से विकास कार्यक्रम को आरम्भ किया है।

भौगोलिक-भौतिक परिस्थितियों के कारण राज्य में विशेष रूप से कृषि, उद्योग तथा संरचना के सन्दर्भ में क्षेत्रीय असमानता को स्वीकार किया गया है। सरकार की ओर से असमानता और विभाजन को सबसे बड़ी चुनौती माना गया है। यह असमानता न केवल क्षेत्रीय है, बल्कि जातीय, वर्गीय, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक भी है। योजना आयोग ने योजनाऐं बनाते समय इस असमानता को ध्यान में रखा है।

पर्यावरण संरक्षण एक दूसरी चुनौती है। यहाँ योजना आयोग ने जन भागीदारी को सुनिश्चित किया है, इसलिये सूचना के अधिकार अधिनिमय- 2005 को राज्य में कठोरता से लागू किया गया है।

योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में सन् 2004-05 तक निर्धनता अनुपात 38.8 प्रतिशत आंका था और लक्ष्य यह था कि इस अनुपात को सन् 2011-12 तक 23.6 तक लाया जाये।

आवश्यकता इस बात की है कि कृषि वृद्धि की दर को बढाया जाय। सन् 2010 तक कृषि वृद्धि की दर 2.62 प्रतिशत आंकी गई। इसको 4 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य है। योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में क्रान्तिकारी औद्योगिक कदम उठाये है। सन् 2010 से 2013 तक लिये एक औद्योगिक प्रस्ताव (पैकेज) देने का वायदा किया, जिसके तहत एक विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) बनाने की बात कही गई है। औद्योगिक गति को तेज करने के लिये 11वीं योजना के तहत रूड़की तक रेलवे लाइन बिछाने तथा देहली और देहरादून के बीच ‘6 लेन’ सड़क निर्माण की बात कही गई है। विकास के लिये एक मजबूत संरचना अनिवार्य है। यहाँसबसे बड़ी भूमिका विद्युत (पावर) की है। औद्योगीकरण की यह एक अनिवार्य शर्त है। इसके लिये सरकार ने ऋण एशियन डब्लप्मेन्ट बैंक (ए0डी0बी0) से लेने की बात की है।

सन् 2002 में सिडकुल (उत्तराखण्ड सरकार उद्यम) की एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में स्थापना की गई। इसमें सरकार ने पहली बार 50 करोड़ और दोबारा 20 करोड़ का पूँजी निवेश किया। उद्देश्य था राज्य में उद्योगों का विकास। परिणाम स्वरूप देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगों का एक सिलसिला स्थापित हो गया।

अन्त में सरकार के प्रयासों से राज्य में साक्षरता दर 82 प्रतिशत हुई है। जंगलों का आकार 68 प्रतिशत से बढकर 70 प्रतिशत हुआ है। जी0डी0पी0 126593 मिलियन है। एन0डी0पी0 (आई0एन0आर0) 113420 मिलियन हुआ है।

7.5 योजना और आर्थिक विकास: सुझाव

मेजर डी0 एस0 बिष्ट द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार उत्तराखण्ड सरकार को नियोजन और विकास की ओर बड़ा सर्तक होकर आगे बढना होगा। उन्होंने अपने अध्ययन ''पावरटी प्लानिंग एण्ड डेवलपमेन्ट'' में नियोजन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये है।

उत्तराखण्ड जैसे पहाड़ी राज्यों के लिये योजना आयोग द्वारा बनाये गये मापदण्ड पहाड़ के लोगों के लिये सामयिक नहीं हैं। वन और कृषि यहाँ के जीवन का अस्तित्व है। सदियों से यहाँ के निवासी वन और कृषि से जीवन यापन करते आये है। आधुनिकीकरण ने आत्म निर्भरता को चोट पहुँचायी है। राज्य योजना आयोग को यर्थात को ध्यान में रखकर पहाड़ के लिये योजनाऐं बनानी चाहिए।

राज्य के हितों को दृष्टि में रखकर यह स्वीकार करना होगा कि केन्द्र द्वारा बनाई गयी अनेक विकास योजनाऐं आवश्यक नहीं है कि उत्तराखण्ड के लिए लाभकारी हों। नतीजा यह होता कि जब सरकार उन योजनाओं के कार्यान्वयन में असफल होती है तो केन्द्रीय सहायता स्वतः समाप्त हो जाती है। अतः राज्य को केन्द्रीय योजनाओं को परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने का अधिकार होना चाहिए।

पंजाब और हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। कारण है हरित क्रान्ति जो केन्द्र के उदार अनुदान से सम्भव हुई है। उत्तराखण्ड को भी ऐसी सहायता मिलनी चाहिए।

विद्युत और जल संसाधनों पर, जिनका बंटवारा अन्य राज्यों को होता है, उत्तराखण्ड को इसका हिस्सा (रायलटी) मिलनी चाहिए।

उत्तराखण्ड राज्य का 60 प्रतिशत भू-भाग जंगलों से ढका हुआ है। केन्द्र द्वारा इसका हरजाना दिया जान चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य के युवकों को कृर्षि और जंगलों से जोड़ने के लिए विशेष योजनाऐं होनी चाहिए।

उत्तराखण्ड तथा हिमांचल की परिस्थितियां लगभग एक जैसी ही हैं। मात्र इसके की हिमाचल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था उत्तराखण्ड से बेहतर है। उत्तराखण्ड में 1.50 लाख सरकारी कर्मचारी है। जबकि हिमाचल में यह संख्या 2.50 लाख है। हिमाचल ने सन् 2002 से लेकर 2010 तक 12 लाख लोगों को रोजगार देने का वायदा किया है। जबकि उत्तराखण्ड में 2 लाख लोगों को रोजगार देने की योजना है। यदि नियोजन सही हो तो अधिक लोगो को रोजगार मिल सकता है।

केन्द्र नियोजन का आधार बड़ा तार्किक है और समनवित होता है। ऐसा उत्तराखण्ड में नहीं है। राज्य योजना आयोग को चाहिए कि वो वरीयताओं को निश्चित करें, जिसके तरह राज्य की वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाएं योजना आयोग द्वारा स्वीकृत होती है। उसी तरह जिला योजना को योजना आयोग की स्वीकृति मिलना चाहिए। ऐसा इसलिए जरूरी है कि यहाँ जिलों में प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधनों की दृष्टि से गहरा अंतर है।

सरकार या गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाई योजनाओं में जैव विवधता (Bio-diversity) के सिद्धान्त की अनदेखी की गयी है। इसका नतीजा यह निकला है कि भूमि उत्पादकता घटी, जल स्त्रोत सूख गये तथा वन-सम्पदा का ह्रास हुआ। पहाड़ का जीवन और संस्कृति जीव विवधता पर टिकी हुई है। योजनाऐं स्थानीय लोगों को प्राकृतिक संसाधनों से जोड़ने के लिए बननी चाहिए।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि शासन की ओर से विभिन्न अभिकारगों, विभागों तथा शोध संस्थाओं को पहाड़ की योजनाऐं बनाने के लिए बिना योजना आयोग से तालमेल की पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई है। इन संस्थाओं को विभिन्न आंतरिक और बाहरी स्त्रोतों से भरपूर पैसा मिल रहा है। जो प्रबन्धकों की जेबों में अधिक और योजनाओं में कम लग रहा है। न तो इससे युवकों को नौकरी मिलती है और न गरीबों की आय बढती है। सरकार को इन संस्थाओं की जवाबदेही सुनिश्चित करनी चाहिए।

उत्तराखण्ड में गैर-सराकरी संगठनों (एन0जी0ओ0) की बाढ़ सी आयी हुई है। एक अनुमान के अनुसार ऐसे लगभग 450 संगठन यहां कार्यरत है। उनका दावा है कि उन्होनें कम पैसे में उत्तराखण्ड का बड़ा विकास किया है। ऐसे दावे सरकार को भ्रमांक करते है। अक्सर यह संगठन जाली और उनके दावे झूठे होते हैं। सरकार को चाहिए कि या तो वे इनसे विकास कार्यों में सामंजस्य बनाए या इनकी गतिविधियों को सीमित रखे।

उत्तराखण्ड अथवा अन्य पहाड़ी राज्यों पर समाजशास्त्र के द्वारा किये जाने वाले शोधों का योजना आयोग को सदुपयोग करना चाहिए।

पहाड़ों में ईंट, लोहा, बजरी के भवन नहीं बनाना चाहिए। आर0सी0सी0 की छतों के निर्माण को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। भवन भूकम्प निराधी होने चाहिए, जिसके लिए स्थानीय परम्परागत तकनीकि का प्रयोग हो।

उत्तराखण्ड में 15793 गांव तथा 86 छोटे नगर है। प्रत्येक स्थान को पर्यटन स्थल में बदला जा सकता है। इन स्थलों में आधुनिक सुविधांए होनी चाहिए, इससे देहरादून, हरिद्वार, नैनीताल, उधमसिंह नगर, हल्द्वानी इत्यादि पर दबाव कम होगा। स्थानीय बाजारों का विकास किया जाना चाहिये, ताकि यहाँ का सामान पड़ोस के ग्रामीण इलाकों के लोग खरीद सकें या अपने द्वारा उत्पादित सामान का विक्रय कर सकें।

पहाडों में आद्योगिक विकास योजना पूरी तरह असफल हुई है। अनेक उद्योग जैसे एच0एम0टी0, हल्द्वानी, यू0पी0 टैक्सटाइल मील, फलोमोर पालिस्टर लि0, काशीपुर बहुत पहले बीमार घोषित हो चुकी हैं। दूसरे उद्योग जैसे ए0आर0सी0 सीमेंट फैक्ट्री देहरादून, यू0पी0 सरकार की कैलशियम कार्बोहाइड्रेट फैक्ट्री बंद हो चुकी है। इससे एक नतीजा यह निकलता है कि पहाड़ों में आद्योगिक विकास कृषि आधारित होना चाहिए। या वन सम्पदा आधारित लघु उद्योग स्थापित होने चाहिए।

यहाँ यह याद रखना होगा कि बावजूद इन असफलताओं के पृथक राज्य बनने के बाद उत्तराखण्ड में नई उद्योग नीति घोषित की गयी है। नई औद्योगिक नीति- 2003 के अनुसार उत्तराखण्ड के औद्योगिकरण के लिए एक नियमित ढांचा तैयार किया गया है। इस नीति के तहत उत्तराखण्ड एकीकृत औद्योगिक जागीर की स्थापना निजी संसाधनों का दोहन करके की जायेगी। सरकार निजी भागीदारी को बढावा देने के लिए तमाम सुविधाऐं प्रदान करने को तैयार है। परिणाम स्वरूप, एच0एल0एल0 तथा डाबर जैसे बड़े उद्यमियों ने राज्य में अपनी इकाइयां स्थापित की हैं। यहाँ सवाल यह पैदा होता है कि क्या यह इकाइयां सफल होंगी? या क्या इनसे स्थानीय लोगो कों रोजगार मिलेगा? यह समय बतायेगा।

उत्तराखण्ड में पारम्परिक तांबे के बर्तनों का लघु उद्योग बहुत पुराना है। सुनहरी का काम भी अच्छा होता है। गरम वस्त्रों के उद्योग के लिए भी अवसर है। योजना आयोग को इन काम-धन्धों के प्रोत्साहन के लिए काम करना होगा।

गरीबी दूर करने के लिए एक संयुक्त कार्यक्रम की आवश्यकता है। भूमि हीनों, विधवाओं, बूढों, बीमारों तथा विकलांगो के लिए योजनाऐं बननी चाहिए, चाहे उनका सम्बन्ध किसी वर्ग से हो।

अन्त में अचलीय कार्यक्रम, जल प्रबंधन और विकास, वन पर्यावरण तथा वन जीवन, सिचाई तथा बाढ़ नियंत्रण इत्यादि पर भी ध्यान देना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. गैर-सरकारी संगठनों का संक्षिप्त रूप एन0जी 0ओ0 है। सत्य/असत्य
2. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। सत्य/असत्य
3. भारत में नियोजित आर्थिक विकास 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना से आरम्भ होता है। सत्य/असत्य
4. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1938 में नेशनल प्लानिंग कमेटी की स्थापना की। सत्य/असत्य
5. योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च 1950 में की गयी थी। सत्य/असत्य
6. उत्तराखण्ड का 60 प्रतिशत भूभाग जंगलों से ढका है। सत्य/असत्य

7.6 सारांश

राज्य योजना आयोग एक गैर संवैधानिक संस्था है। यह एक सलाहकार संगठन है। इसकी संरचना राष्ट्रीय योजना आयोग पर आधारित है। इसके मौलिक कार्य राज्य के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ राज्य के अपने संसाधनों तथा केन्द्र से मिलने वाले अनुदानों या अन्य वाह्रय ऋण इत्यादि को ध्यान में रखकर किया जाता है।

उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद यहाँ पर भी योजना आयोग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का आंकलन करके राज्य में योजनाऐं तैयार करना है। इसको यह भी देखना कि योजनाऐं ऐसी हो, जो राष्ट्रीय वरीयताओं के अनुरूप हो। यह वार्षिक योजना और पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखकर राज्य की योजनाओं को बनाता है।

उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। राज्य योजना आयोग ने राज्य के विकास के लिए कुछ अच्छे काम किये है। विशेषरूप से राज्य में ओद्योगिक गतिविधियां तेज हुई हैं। सिडकुल कारपोरेशन ने बाहरी उद्यमियों की सहायता से देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगों का जाल बिछाया है। राज्य सरकार योजना आयोग की सहायता से राज्य में भौतिक संरचना तैयार करने में सफल हुई है। योजनाओं से सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि राज्य के सामने बहुमुखी विकास की अनेक चुनौतियां हैं, जिनका सामना कुशल नेतृत्व तथा योग्य प्रबन्धन कर सकता है।

7.7 शब्दावली

गरीबी रेखा- वह पैमाना जिसका आंकलन योजना आयोग समय-समय पर करता है तथा जिसके नीचे रहने वाले अति निर्धन लोग होते हैं। स्पेशल एकोनामिक जोन- औद्योगिकरण के लिए बनाया गया एक विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसे- उत्तराखण्ड में सिडकुल। बायो डाइवर्सीटी- विभिन्न जीव जिसके अन्तर्गत पूरे जीवन का ताना-बाना, संस्कृति, परम्पराएं इत्यादि आती है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तर प्रदेश, संजय कुमार।
2. पृथक पर्वतीय राज्य, नवीन चद्र ढोडियाल।
3. उत्तराखण्ड टूडे, खड्ग सिंह वल्दिया।

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ऐडरेस आर्फ एन0 डी0 तिवारी इन दि 52 मीटिंग आर्फ नैशनल डेवलपमेंट कौंसिल, 9 दिसम्बर, 2006, एन0डी0 तिवारी।
2. स्टडी रिर्पोट आन दि प्लानिंग आफ़ उत्तराखण्ड (वेबसाइट), मेजर डी0एस0 बिष्ट।

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य योजना आयोग के संगठन और कार्यो की विवेचना कीजिए।

इकाई-8 राज्य में प्रशासनिक सुधार

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 प्रशासनिक सुधार आयोग
8.2.1 प्रशासनिक सुधार आयोग के उद्देश्य
8.2.2 प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशें
8.3 आर्गनाईजेशन एण्ड मेथड्स विभाग (O & M)
8.3.1 ओ0 एण्ड एम0 का प्रशासकीय सुधार विभाग में विलय
8.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन
8.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार
8.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय
8.7 प्रशासनिक सुधार आयोग: प्रतिवेदन
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

प्रशासकीय सुधार आज लोक प्रशासन का एक चर्चित विषय है, लेकिन यह भारत में बहुत देर से पहुँचा है। प्रशासन को गतिशीलता प्रदान करने का प्रयास, सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, भारत में एक लम्बे समय से जारी है। अनेक ऐसी संस्थाएं अस्तित्व में आयी, जिन्होंने प्रशासकीय कार्यों की कार्य पद्धति और तरीकों या क्रमबद्धता, संगठनों, हस्तान्तरण, कर्मचारी जरूरतों, योजना क्रियान्वयन इत्यादि के बारे में गहन छानबीन की। ऐसा पचास के दशक में काफी कुछ किया गया। इसके पंचवर्षीय योजना अभिलेखों में समय-समय पर प्रशासनिक कमजोरियों और उनको दूर करने के उपायों की समीक्षा की गयी, क्योंकि योजनाओं की असफलता का कारण प्रशासनिक अक्षमता और असफलता थी। इसका अर्थ है कि भारत में प्रशासनिक सुधारों की दिशा में काफी प्रयास किये गये।

लेकिन एक लम्बे समय तक प्रशासनिक सुधारों की दिशा में एक तार्किक, वैज्ञानिक और क्रमबद्ध प्रयास नहीं किया गया और जो कुछ किया गय वह एक असम्बद्ध (Unconnected), बिखरा हुआ और अत्यधिक निराश परिवर्तनीय प्रयास था। नेताओं ने कभी कमियों की गहनता से न तो विश्लेषण किये और न ही उनके निदान का ऐसा प्रयास किया गया, जिससे प्रशासन को अर्थपूर्ण गतिशीलता मिल सकती हो। कारण यह था कि स्वतंत्रता के बाद भारत ऐसी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उलझनों में फँसा रहा कि उसने प्रशासनिक सुधारों की ओर अधिक ध्यान ही नहीं दिया।

किसी भी विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक आधुनिकता की ओर कम और आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों की ओर अधिक होता है। अधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण वे राजनीतिक सुधारों की ओर भी अधिक ध्यान नहीं देते। होता यह है कि जब आर्थिक और सामाजिक ढांचा टूटने लगता है और संकट का समय आता है प्रशासनिक सुधारों की ओर ध्यान जाता है।

उत्तराखण्ड एक नया विकासशील राज्य है और सन् 2000 में अस्तित्व में आया है। इसे बहुत कुछ उत्तर प्रदेश से विरासत में मिला। इसके सारे उच्च अधिकारी पूर्व में उत्तर प्रदेश में कार्यरत थे और सब अनुभवी थे। भारत भी प्रशासनिक सुधारों के अनेक चरणों से गुजरा। उसके अनुभव का लाभ भी उत्तराखण्ड को मिल सकता है। वैसे भी छोटे राज्य प्रशासन को अधिक गतिशीलता और सुगमता दी जा सकती है। पृथक उत्तराखण्ड राज्य की मांग का एक बड़ा कारण प्रशासनिक औचित्य ही था। उत्तर प्रदेश एक बड़ा प्रदेश है जो प्रशासनिक अक्षमता या विषमता और क्षेत्रीय असंतुलन को बढावा देती है। उत्तराखण्ड के अस्तित्व में आने के बाद राज्य में प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया, जिसने भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग- 1960 के आधार पर राज्य के लिए विस्तार से संस्तुतिया की है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरानत आप-

- प्रशासनिक सुधारों का अर्थ और महत्व समझ पायेंगे।
- प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशों से परिचित होंगे।
- प्रशासन के अंदर लाये जाने वाले सुधारों में संस्थाओं/खण्डों/विभागों की भूमिका को समझ पायेंगे।
- उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन तथा नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतियों से अवगत होंगे।

8.2 प्रशासनिक सुधार आयोग

उत्तराखण्ड के प्रशासनिक सुधार आयोग की संस्तुतियों को जानने से पूर्व भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (ए0आर0सी0) को जानना जरूरी है। आजादी के प्रथम दस वर्षों में यह महसूस किया गया कि भारत को एक नई आर्थिक और सामाजिक दिशा देने के लिए अतीत की प्रशासनिक लीक से हटकर एक नई सोच के साथ और बढ़ना होगा तभी राजनीतिक विकास भी संभव था और एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य पूरा हो सकता था। अतः प्रशासकीय संरचना और कार्यपद्धति से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये, लेकिन वे इतने विस्तृत और वैज्ञानिक नहीं थे जो प्रशासन में क्रमिक सुधारों को सुनिश्चित करते। प्रशासन एक लम्बे समय तक राष्ट्रीय दृष्टि और योजनाओं एवं कार्यक्रमों को साकार करने में अपर्याप्त रहा।

8.2.1 ऐ0आर0सी0 के उद्देश्य

5 जनवरी, 1966 को प्रशासकीय सुधार अस्तित्व में आया। आयोग का काम निम्न क्षेत्रों पर विचार करना था-
भारत सरकार के कार्य तंत्र और उसकी कार्य पद्धति, प्रत्येक स्तर पर नियोजन के कार्य तंत्र, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध,वित्तीय प्रशासन, कर्मचारी प्रशासन, आर्थिक प्रशासन, राज्य स्तर पर प्रशासन, जिला प्रशासन और नागरिकों की शिकायतों के निवारण की समस्याऐं।

8.2.2 ए0आर0सी0 की मुख्य सिफारिशें

यहाँ पर हम राष्ट्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) का उल्लेख कर रहे हैं। यह एक अत्यधिक प्रतिष्ठित लोगों की टीम थी जिसमें जन प्रतिनिधि, संसद सदस्य, सेवी वर्ग के लोग तथा विशिष्ट क्षत्रों के लोग थे। इस आयोग का उद्देश्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक संतुलित, यथार्थवादी और एकीकृत दृष्टिकोण अपना कर खोज करना या विस्तृत सिफारिशें करना था।

प्रशासकीय सुधार आयोग ने 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये, जिनके आधार पर 1581 विस्तृत सिफारिशें की गयी। यह सिफारिशें कृषि को छोड़ कर अन्य सभी विषयों से सम्बन्धित थी। मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी -

1. प्रशासकीय सुधारों का एक विभाग बनाया जाये जो स्वयं सेवा को आधारभूत चरित्र के प्रशासकीय सुधारों के अध्ययन तक सीमित रखे।
2. 2ओ0 एण्ड एम0 (आर्गेनाईजेशन एण्ड मैथड्स) विभागों में खड़ा किया जाये तथा ओ0 एण्ड एम0 इकाइयों के कर्मचारियों को आधुनिक तकनीकों से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाये। इन ओ0 एण्ड एम0 की इकाइयों को प्रशासकीय सुधारों से सम्बन्धित परामर्श और निर्देश दिये जायें।
3. केन्द्रीय सुधार अभिकरण में एक विशिष्ट सेल (घटक) बनाया जाये ताकि वह भावी सुधारों के बारे में सोच सके।
4. कार्यपद्धति, भर्ती व्यवस्था तथा संगठनात्मक संरचना के सम्बन्ध में केन्द्रीय सुधार अभिकरण शोध परक होना चाहिए।
5. प्रशासकीय सुधारों का विभाग प्रत्यक्ष रूप से उप-प्रधानमंत्री के अन्तर्गत रहना चाहिए।
6. शक्तिशाली, स्वायत्त और पेशेवर संस्थांए अनिवार्य हैं जो प्रशासकीय सुधारों और नवीनीकरण को मौलिक सोच दे सके।
7. किसी मंत्रालय में नीति-निर्माण प्रक्रिया में दो से अधिक मंत्री नहीं लगने चाहिए।
8. केबिनेट सचिव की भूमिका एक समन्वयक तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। प्रधानमन्त्री या राज्यों में मुख्य मन्त्री का मुख्य सेवी सलाहकार होना चाहिए। वह मन्त्रिमण्डल और समितियों को भी सलाह दे सकता है।
9. सभी मुख्य निर्णय लिखित में हो, विशेष रूप से जहाँ सरकार की नीति स्पष्ट न हो या जहाँ सचिव और मन्त्री किसी महत्वपूर्ण मामले पर एकमत न हों।
10. कर्मचारी वर्ग एक पृथक विभाग के अन्तर्गत रखा जाये, जिसका एक पृथक सचिव हो जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में कार्य करें।
11. आई0ए0एस0 के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र बनाया जाये। अर्थात भूमि राजस्व प्रशासन, दण्डाधिकारिक (मेजिस्टेरियल) कार्य और राज्य में नियमतिक (रेग्यूलेटरी) कार्यो के लिए।
12. सरकार को एक स्पष्ट और दूरगामी राष्ट्रीय नीति का निर्माण सेवी वर्ग के प्रशिक्षण के लिए करना चाहिए।
13. मंत्रियों या शासन के सचिवों के विरूद्ध शिकायतों के निबटारे के लिए केन्द्र और राज्य स्तर पर एक सत्ता होनी चाहिए। इस सत्ता को 'लोकपाल' कहा जाये। दूसरे अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतें सुनने के लिए केन्द्र और राज्यों में 'लोक आयुक्त' होने चाहिए। लोकपाल का पद भारत के मुख्य न्यायाधीश के स्तर का होगा और इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह से पांच वर्ष के लिए करेगा।
14. राष्ट्रीय प्रशासनिक आयोग की सभी सिफारिशों के आधार पर राज्य प्रशासनिक आयोग परिस्थितियों के अनुसार राज्य प्रशासन के लिए सिफारिशें करेंगे।

8.3 आरगानाईजेशन एण्ड मेथड्स विभाग (ओ0 एण्ड एम0)

यहाँ हमें प्रशासकीय सुधारों के सम्बन्ध में ओ0 एण्ड एम0 पर भी प्रकाश डालना होगा। स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक सुधारों से सम्बन्धित अनेक समितियां गठित की गयी। इनमें सन् 1947 में ऐ0डी0 गोरवाला ने मेथड्स आर्गेनाइजेशन और ट्रेनिंग से सम्बन्धित निदेशालय की स्थापना का सुझाव दिया जो एक अभिकरण का काम कर सके। सन् 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना ने यह सिफारिश की, कि केन्द्रीय सरकार का एक ओ0 एण्ड एम0 होना चाहिए। जो विभिन्न मंत्रालयों के कर्मचारी खण्डों के साथ पूर्ण सहयोग से काम करे। सन् 1953 में प्रसिद्ध लोक प्रशासक पाल0 एच0 ऐपलबी ने भी अपनी प्रसिद्ध रिर्पोट ''सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया'' में भी ऐसे ही एक संगठन की ओर इशारा किया जो प्रशासकीय संरचनाओं, प्रबन्धन और कार्य पद्धति को नई दिशा दे सके। परिणाम स्वरूप मार्च सन् 1954 में ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन अस्तित्व में आ गया और कैबिनेट सचिवालय से सम्बद्ध कर दिया गया।

ओ0 एण्ड एम0 ने ऐसे अध्ययन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाया है जो अभिलेखों के वैज्ञानिक प्रबन्धन के तौर-तरीकों, विभागीय नियमों के सरलीकरण, प्रतिवेदनों, आधिकारिक विवरणों और तथ्य एवं समस्याओं के औपचारिक ब्योरों, शासकीय समस्याओं और संकटों के लिए अनिवार्य है।

ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन सामन्य हित की समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन करके विभिन्न विभागों को सलाह देता है। यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक विभाग के भीतर अपना ओ0 एण्ड एम0 होना चाहिए और उसे प्रशासकीय समस्याओं के लिए पर्याप्त उत्तरदायित्व और अधिकार मिलने चाहिए। साथ में यह भी महसूस किया गया है कि यदि ओ0 एण्ड एम0 को प्रशासन के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा करनी है, तो उसके कार्य को सरकारी कार्यपद्धति तक सीमित न रखा जाये। ओ0 एण्ड एम0 का कार्य वास्तव में विभागों और मंत्रालयों के संगठनों और संरचनाओं का विश्लेषण करना है और शासन को उसके सर्वोच्च स्तर तक परामर्श देना है।

8.3.1 ओ0 एण्ड एम0 का प्रशासकीय सुधार विभाग में विलय

सन् 1964 में गृह मंत्रालय के अन्तर्गत प्रशासकीय सुधार विभाग अस्तित्व में आया। इसका उद्देश्य भी प्रशासकीय व्यवस्थाओं और शासनतंत्र के तौर-तरीकों और नीतियों का अध्ययन करना था। अतः इसे उसी वर्ष ओ0 एण्ड एम0 डिवीजन के साथ जोड़ दिया गया। इस तरह ओ0 एण्ड एम0 संरचनात्मक और संगठनात्मक अध्ययनों का केन्द्रीय भाग बन गया। बाद में ओ0 एण्ड एम0 ने अपना कार्य क्षेत्र बढा दिया। उसने कर्मचारी वर्ग (परसोनेल) विभाग से मिलकर कर्मचारी वर्ग पर अनेक अध्ययन किये।

अन्ततः प्रशासकीय सुधार विभाग तथा ओ0 एण्ड एम0 के सहयोग से प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत) ने कर्मचारी वर्ग पर अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की। कर्मचारी वर्ग का एक पृथक विभाग बनाया जाये जो एक स्थायी सचिव के अधीन हो, लेकिन जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में काम करें। इस विभाग के निम्न कार्य एवं उत्तरदायित्व होने चाहिए-

1. केन्द्रीय और अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित प्रत्येक मुद्दे पर कर्मचारी वर्ग के लिए नीतियों का निर्माण करना तथा इनके क्रियान्वयन का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना।
2. प्रतिभा की खोज करना, उच्चतर प्रबन्धन के लिए कर्मचारी वर्ग का विकास करना तथा उच्चतर पदों पर नियुक्तियों की समय-समय पर परीक्षा करना।
3. मानव शक्ति की योजना तैयार करना, प्रशिक्षण देना और पेशा सम्बन्धी विकास तथा कर्मचारी वर्ग के विकास के लिए विदेशी सहायता कार्यक्रम तैयार करना।
4. व्यक्तिक तौर पर कर्मचारी प्रशासन में शोध ।

5. कर्मचारी तंत्र की शिकायतों को दूर करने के लिए अनुशासन और कल्याणकारी काम करना।

8.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन

प्रशासकीय सुधार एक प्रक्रिया है, जिसे अनेक चरणों में विभाजित किया जा सकता है। समस्याओं के आंकलन से लेकर, नीतियों के क्रियान्वयन तक। उद्देश्य है, सुधार। जेराल्ड ई0 कैडेन के अनुसार प्रशासनिक सुधारों में निम्न बातें सम्मिलित हैं-

1. प्रशासकीय परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूकता।
2. लक्ष्य, रणनीति और कार्यविधि का निर्माण।
3. सुधारों का क्रियान्वयन।
4. सुधारों का मूल्यांकन वस्तुगत दृष्टि से।

उस समय प्रशासनिक सुधार अनिवार्य हो जाते है, जब प्रशासन अपने कर्मचारी वर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकता है, आश्वस्त नहीं हो पाता कि समस्याऐं क्या हैं और कहाँ है? नागरिकों की शिकायतें दूर नहीं कर सकता तथा संगठन में चलने वाली गतिविधियों के बारे में उचित ढंग से सोच नहीं पाता।

प्रभावकारी सुधार लाने के लिए अनिवार्य है कि उन पर नजर रखी जाये और उनका मूल्यांकन किया जाये।

8.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार

उत्तराखण्ड एक नवोदित राज्य है जो उत्तर प्रदेश से पृथक होकर सन् 2000 में अस्तित्व में आया। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल आबादी 1,01,16,752 है। सन् 1815 से लेकर सन् 1947 तक उत्तराखण्ड एक पृथक प्रशासनिक इकाई बना रहा। इस दौरान उत्तराखण्ड के शासक मूल रूप से प्रशासक थे अर्थात अंग्रेजी शासनकाल में उत्तराखण्ड को एक प्रशासनिक इकाई माना गया। अंग्रेजी प्रशासक बैटिन से लेकर रेम्जे तक, उत्तराखण्ड से सम्बन्धित अनेक प्रशासनिक सुधार किये गये। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेज प्रशासक उत्तराखण्ड के विकास के प्रति जागरूक रहे। वहीं स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासकों (उ0प्र0) ने इस क्षेत्र को अनदेखा कर दिया। उनकी उदासीनता से उत्तराखण्ड पूरी तरह पिछड़ गया। प्रशासनिक अधिकारी यहाँ आने से घबराते थे और यहाँ स्थानान्तरित होकर आते तो तैनाती को सजा समझते थे। जहाँ एटकिन्सन जैसे प्रशासक ने उत्तराखण्ड का चप्पा-चप्पा खंगालकर महान शोध ग्रन्थ लिखे, वहाँ हम भारतीय प्रशासकों को देखने के लिए तरसते थे।

इस मानसिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तराखण्ड में पृथक राज्य आन्दोलन आरम्भ हुआ। मांग की गयी कि उत्तर प्रदेश से अलग एक राज्य के रूप में या केन्द्र शासित स्वायत्त प्रदेश के रूप में विकास का प्रयोजन होने चाहिए। विकास के आयोजन स्थानीय जनता के हित के लिए, अंचल विशेष के उद्धार, सुधार और उन्नयन के लिए हो। योजनाओं का दायित्व पुराने अधिकारियों, कर्मचारियों की अदला-बदली से बने प्रशासनिक तंत्र पर न होकर नये लोगों से नवगठित नये 'काडर' पर हो। परिणाम स्वरूप, उत्तराखण्ड के गठन के बाद एक नई परिकल्पना के साथ राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना की गयी।

8.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय

उत्तराखण्ड शासन के संकल्प, 223 दि0 10 मार्च, 2006 के अनुक्रम में प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु निर्धारित विचारार्थ विषय के अन्तर्गत जिन विषयों एवं बिन्दुओं पर विचार किया जाना था, उनका विवरण निम्नवत् है-

1. **उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढ़ाँचा-**
    - राज्य स्तर से ग्राम स्तर तक विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों को दक्ष एवं संवेदनशील बनाना।
    - विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन एवं सुदृढ़िकरण- ताकि वे कार्यकुशल, मितव्ययी, संवेदनशील स्वस्थ, निष्पक्ष और सार्थक व्यवस्था दे सकें।
    - मानव संसाधन का इस प्रकार से नियोजन कि कम से कम मानव संसाधन में अधिकतम एवं गुणवत्तापूर्ण कार्य किया जा सके।
    - ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना, जिनमें शासकीय हस्तक्षेप को समाप्त किये जाने की आवश्यकता हो।
    - प्रत्येक प्रशासनिक इकाई को आधुनिक तकनीकि एवं सूचना प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में पुनर्गठित करना।
    - विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में परस्पर समन्वय हेतु उपाय।
2. **शासन/प्रशासन में नैतिकता-**
    - शासकीय व्यवस्था में भ्रष्टाचार उन्मूलन एवं पारदर्शिता लाने हेतु उपाय।
    - मेहनती एवं ईमानदार अधिकारी/कर्मचारियों के उत्पीड़न को समाप्त करना एवं जहाँ आवश्यक हो कार्यकारी विवेकाधिकार को सीमित करना।
    - शासकीय प्रक्रिया को सरलीकृत करते हुए अधिक जनप्रिय बनाना एवं मनमानी से निर्णय लेने पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था।
    - राज नेताओं एंव अधिकारियों के बीच के सम्बन्धों में सद्-भाव और परामर्श की प्रक्रिया में सरलता।
    - राज नेताओं एवं अधिकारियों के लिए आचरण संहिता।
3. **कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना-**
    - भर्ती, प्रशिक्षण एवं उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त अधिकारियों, कर्मचारियों की तैनाती की व्यवस्था।
    - अधिकारियों/कर्मचारियों में कार्य उत्पादकता बढाए जाने एवं उनके मूल्यांकन की व्यवस्था।
    - अधिकारियों की क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था।
    - अधिकारियों/कर्मचारियों के द्वारा किये गये कार्यों के वास्तविक मूल्यांकन को आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना।
4. **वित्तीय प्रबंधन व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण-**
    - परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए समय से बजट अवमुक्त करने की प्रक्रिया का सरलीकरण।
    - राजकीय धन का समय से सदुपयोग किये जाने को सुनिश्चित करने के लिए व्यवस्था।
    - विभिन्न स्तरों पर होने वाले व्ययों का लेखा-जोखा रखने की व्यवस्था।
    - प्रमाणीकरण के लिए आन्तरिक आडिट की व्यवस्था, वाहन आडिट पद्धति का विकास, जिससे कार्यक्रमों के प्रभाव का सही मूल्यांकन हो सके।

5. राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने हेतु उपाय-

- प्रत्येक स्तर पर वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का आवश्यकतानुसार प्रतिनिधापन।
- प्रशासनिक इकाइयों में समुचित सामन्जस्य एवं समन्वय स्थापित किये जाने के सम्बन्ध में उपाय एवं उनकी प्रभावकारिता के मूल्यांकन की व्यवस्था।

6. जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय-

- जिला स्तर पर अधिकारियों की कार्य-प्रणाली को अधिक उत्तरदायी एवं संवेदनशील बनाना और जनता की शिकायतों पर ध्यान देने के लिए उसे सक्षम बनाना।
- जन समस्याओं एवं उत्पीड़न के मामलों के समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।
- जिला प्रशासन को वर्तमान परिवेश में आधुनिक एवं अधिक प्रभावी बनाये जाने और उसी क्षेत्र स्तर तक सर्वसाधारण को सुविधाएं मुहैय्या कराने की व्यवस्था बनाने के लिए सक्षम होना।
- विकास कार्यों में जनसहभागिता को सम्भव बनाना।

7. स्थानीय निकाय/पंचायतीराज संस्थाऐं-

- प्रत्येक स्थानीय निकाय एवं पंचायतीराज संस्था को सक्षम/उत्तरदायी बनाये जाने के सम्बन्ध में वर्तमान व्यवस्था में संशोधन करना।
- जन सुविधाओं की व्यवस्था को सुदृढ़ करने में जनसहभागिता की व्यवस्था।
- संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के अनुरूप कार्यविधि अपनाये जाने के सम्बन्ध में कठिनाइयों का निवारण।

8. सामाजिक पूँजी न्यास एवं सहभागी लोक सेवा वितरण पद्धति-

- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं समाज के अन्य पिछड़े वर्गों तथा विषम भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास की व्यवस्था की लिए रणनीति का निर्धारण।
- जन सहभागिता के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर राजकीय कार्यक्रमों की प्रभावकारिता बढाना।
- विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वन में जन सहभागिता।

9. जन केन्द्रित प्रशासन-

- व्यक्ति निरपेक्ष, जवाबदेह एवं पादरर्शी प्रशासन की व्यवस्था।
- सरकारी कार्यों में विलम्ब को दूर करने हेतु उपाय तथा लोक सेवा वितरण पद्धति को चुस्त करना।
- प्रशासन में जन सहयोग प्राप्त करने के सम्बन्ध में उपाय।
- सिटिजन चार्टर तैयार किये जाने हेतु विभागों का चिन्हीकरण।
- समय-समय पर जनता के सुझाव प्राप्त किये जाने हेतु कार्य पद्धति।
- सूचना का अधिकार सभी को सरलता से उपलब्ध कराना।

10. ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन-

- शासकीय कार्यालयों में विज्ञान एवं तकनीकि का अधिकतम उपयोग किये जाने की व्यवस्था।

- शासन, प्रशासन में गुणवत्ता सुधार किये जाने हेतु आधुनिक पद्धति से जवाबदेही की व्यवस्था।

11. आपदा प्रबन्धन-

- भूकम्प के दृष्टिकोणो से उत्तराखण्ड अति संवेदनशील जोन में अवस्थित होने के कारण भूकम्प के समय सुरक्षात्मक उपाय एवं बचाव के सम्बन्ध में विशेष योजनाएं बनाना।
- उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचलों में अत्यधिक संख्या में होने वाली सड़क दुर्घटनाओं की संख्या को कम करने के सम्बन्ध में उपाय।

8.7 प्रशासनिक सुधार आयोग: प्रतिवेदन

26 जनवरी, 2007 को प्रशासनिक सुधार आयोग, उत्तराखण्ड ने अपना प्रतिवेदन शासन के समक्ष रखा, जिसमें नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतियां की गयी थीं। संक्षेप में मुख्य संस्तुतियां निम्नवत हैं, जो उत्तराखण्ड शासन द्वारा जारी संकल्प के तहत विषयों और बिन्दुओं की रोशनी में है।

1. उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढ़ाँचा

- सामान्य प्रशासन विभाग के अधीन प्रशासनिक सुधार कार्यक्रमों को आगे बढाने के लिए प्रशासनिक सुधार अनुभाग का गठन होना चाहिए।
- कार्मिकों की संख्यात्मक वृद्धि के स्थान पर नई तकनीकि गुणात्मक वृद्धि की जाये।
- सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने हेतु विभागीय मैनुअल, हस्त प्रतिकाओं एवं मार्गनिर्देशिकाओं का अद्यावधिक एवं सरल रूप, सुदृढ़ अभिलेखागार प्रणाली, विभागीय मैनुअल वेबसाइट पर हो।
- निर्माण कार्य/भण्डार क्रय के लिए ऑन लाइन डिजिटिलाइजेशन प्रक्रिया अपनाई जाये।
- जनपद एवं विभागाध्यक्ष स्तरीय कार्य सचिवालय स्तर पर न हो व क्षेत्रीय अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार दिये जाएं।
- राजस्व अधिकारियों को विकास योजनाओं के पर्यवेक्षण एवं समन्वय का दायित्व सौपा जाये।
- योजना निर्माण के लिए ग्राम पंचायत से लेकर जिला नियोजन समिति तक बैठकों की समय सारिणी हो।
- न्याय पंचायतों को विकास कार्यो से सम्बन्धित शिकायत सुनने तथा निराकरण करने हेतु अधिकार दिये जायें।
- नियोजन विभाग द्वारा विभागीय योजनाओं की मासिक समीक्षा हो।
- सचिव/अपर सचिव केवल सचिवालय के कार्य देखे, विभागाध्यक्ष के नहीं।
- एक ही प्रकार के कार्य तद्षयक दक्षता वाले विभाग द्वारा ही किये जायें।
- पटवारी तथा कानूनगो को एक सहायक उपलब्ध कराया जाये।
- मुख्य विकास अधिकारी द्वारा समस्त विकास योजनाओं की मासिक समीक्षा की जाये।
- मंत्रीगण तथा अधिकारियों के बीच अविलम्ब कार्य विभाजन किया जाये।
- विभागीय कार्य वितरण में वक्तव्यों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो।

- विचलनों के माध्यम से दिये गये आदेशों की मुख्यमंत्री स्तर पर सामयिक समीक्षा हो।
- विभागों के बीच समन्वय प्रक्रिया हो।
- जिलाधिकारी संस्था का सुद्धढ़ीकरण हो।

2. शासन/प्रशासन में नैतिकता

- लोकायुक्त के कार्य क्षेत्र व शक्तियों में वृद्धि हो।
- भ्रष्टाचार प्रकरणों में दण्ड की त्वरित तथा प्रभावी व्यवस्था हो।
- सेवा संघों में भ्रष्टाचार उन्मूलन व नैतिक आचार संहिता व्यवस्था हो।
- योजनाओं में पारदर्शिता के लिए सार्वजनिक सूचना प्रारूप तैयार किया जाये।
- कार्मिक उत्पीड़न का निराकरण हेतु राज्य तथा मण्डल स्तर पर व्यवस्था हो।
- नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण हो।
- प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण प्रक्रिया हो।
- राजनेताओं, राज्य कर्मचारियों तथा समस्त संस्थाओं हेतु नैतिक आचार संहिताएं हो।

3. कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना

- मण्डल स्तर पर आयुक्त तथा शासन स्तर पर सचिव कार्मिक की अध्यक्षता में श्रेणी-3 तथा 4 की भर्ती पर निगरानी हेतु टास्क फोर्स की स्थापना की जाये।
- भर्ती साक्षात्कार में मनोवैज्ञानिक जांच की व्यवस्था हो।
- अनावश्यक पद समाप्त हो।
- कार्मिक प्रशिक्षण नीति का प्रशासनिक अकादमी की सहायता से निर्धारण हो।
- कार्मिकों के कार्य मूल्यांकन हेतु सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक बिन्दु निर्धारण हो।
- प्रत्येक अधिकारी के लिए प्रशिक्षण-कलैण्डर की व्यवस्था हो।

4. आपदा प्रबंधन

- तत्काल प्रतिक्रिया के साथ-साथ कुशल प्रबन्धन को प्राथमिकता देना।
- नागरिक सुरक्षा संगठन का उपयोग बचाव एवं राहत कार्यों हेतु किया जाना।
- भूकम्प अवरोधी निर्माण के प्रशिक्षण एवं कार्यन्वयन का दायित्व ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण अभियंत्रण सेवा तथा नगरीय क्षेत्र में लो0नि0वि0 को देना।
- भवन निर्माण में भारतीय मानक ब्योरो का पालन करना।
- प्रत्येक कार्यालय/संस्था स्तर पर भूकम्प बचाव योजना तैयार करना।
- नियंत्रण कक्षों को आधुनिक संसाधन प्रदान करना।
- अभियन्ताओं, ठेकेदारों तथा राज मिस्त्रियों को प्रशिक्षित करना।
- पुराने भवनों का रेट्रोफिटिंग करना।
- प्रशासन का सैनिक/अर्द्धसैनिक बलों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना।

5. राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करना

- वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का प्रति निधायन।
- लेखा परीक्षा का सुदृढ़ीकरण करना।
- जिलाधिकारी, मुख्य विकास अधिकारी तथा खण्ड विकास अधिकारी के अधिकारों/दायित्वों में वृद्धि करना।
- विकास कार्यों का परिषदों/अर्द्ध-सरकारी/गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से अधिक से अधिक क्रियान्वयन करना।
- अर्न्तविभागीय समन्वय सुदृढ़ीकरण करना।
- सूचना संसार प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक उपयोग करना।

6. जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय

- सचिवों के स्थान पर विभागाध्यक्षों तथा पर्यवेक्षणीय अधिकारियों को निरीक्षण दायित्व सौंपा जाये।
- जन सेवा सम्बन्धित प्रार्थना पत्रों तथा पत्राचार पत्रों के लिए सरलतम आधार पत्र हो।
- जिलाधिकारी एवं विभागाध्यक्षों के मध्य संवादशीलता में वृद्धि हो।
- जिलाधिकारी द्वारा दूरस्थ केन्द्रों पर तथा मुख्य विकास अधिकारी द्वारा विकास खण्डों पर शिविरों का आयोजन करना।
- विकास कार्यक्रमों में लाभार्थी समूहों की अधिकाधिक सहभागिता हो।
- न्याय पंचायत तथा नगरीय वार्ड समितियों को स्थानीय समस्याओं के निदान का उत्तरदायित्व सौंपा जाये।
- कार्यालयों में प्राप्त शिकायतों के वर्गीकरण, अनुश्रवण व निस्तारण की व्यवस्था हो।

7. स्थानीय निकाय/पंचायती राज्य संस्थाएं

- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत के मध्य कार्यों एवं दायित्वों का विभाजन करना।
- न्याय पंचायतों का पुनर्गठन करना। न्याय पंचायत केन्द्रों का न्याय पंचायत कार्यालय, किसान सेवा केन्द्र का, जन मिलन के रूप में विकास करना। न्याय पंचायतों को न्यायिक तथा विकास कार्यों सम्बन्धी शिकायतों/वादों के निस्तारण हेतु शुल्क प्राप्त करने का अधिकार हो।
- नगरीय तथा ग्राम पंचायतों में वार्ड मेम्बर एवं वार्ड कमेटी बने।
- प्रभावी नागरिक अधिकार पत्र व्यवस्था हो।
- प्रत्येक स्तर पर विकास एवं नियामन सम्बन्धी कार्यों में अधिकाधिक जन सहभागिता हो।

8. जन केन्द्रित प्रशासन

- व्यक्ति निरपेक्ष, पारदर्शी व जवाबदेह सेवाऐं हो।
- स्व-कार्यशीलता व सु-सेवा की अवधारणा का विकास हो।
- पत्रावलियों में निर्णय के स्तर पर एक सीमित हो। अर्पूण टिप्पणियों एवं आख्याओं की प्रवृत्ति उदारता की श्रेणी में हो।

9. ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन

- प्रदेश में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का चरणबद्ध कर्यान्वियन हो। व्यापक योजना बने, छोटे-छोटे राज्यों को हाथ में लेकर तेजी से बढाया जाये।
- सूचना संचार प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति में सचिव, सामान्य प्रशासन व एन0आई0सी0 के प्रतिनिधि सम्मिलित हो। सचिव, सूचना प्रौद्योगिकी की अध्यक्षता में समन्वय समिति बने।
- भारत सरकार एन0आई0सी0 की योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये।
- सभी विभागों तथा संस्थाओं द्वारा एक ही प्रकार के साफटवेयर का उपयोग हो। विभागों में पूर्ण सामान्जस्य हो।
- जन-सामान्य के लिए सरल सूचना संचार प्रोद्योगिकी भाषा व शब्दावली का प्रयोग हो।

कुल मिलाकर राज्य प्रशासकीय सुधार आयोग ने लगभग 300 संस्तुतियां की हैं जो सिद्धान्त एक आदर्श प्रशासकीय व्यवस्था की ओर इशारा करती है। उत्तराखण्ड अभी एक विकासशील राज्य है जो अनुभव की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इस प्रक्रिया में प्रशासकीय सुधार आयोग की अहम भूमिका हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 5 जनवरी 1966 को प्रशासनिक सुधार आयोग अस्तित्व में आया। सत्य/असत्य
2. पाल एपलाबी की रिपोर्ट सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया है। सत्य/असत्य
3. उत्तराखण्ड नए राज्य के रूप किस सन् में अस्तित्व में आया?
4. प्रशासनिक सुधार विभाग किस मंत्रालय के अन्तर्गत और किस वर्ष अस्तित्व में आया?

8.8 सारांश

विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक सुधारों की ओर तभी जाता है जब आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था चरमराने लगती है। तब एहसास होता है कि प्रशासनिक आधुनिकीकरण कितना महत्वपूर्ण है। छोटे या नये राज्य देश के अनुभव से सीखते हैं, उत्तराखण्ड ऐसा ही राज्य है। यह राज्य सन् 2000 में गठित हुआ। इसके लगभग सभी उच्च अधिकारी अनुभवी थे जो पहले उत्तर प्रदेश 'काडर'में कार्यरत थे।

प्रशासन को अत्याधिक आधुनिक बनाने का उत्तरदायित्व प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत सरकार) पर है। उसने सन् 1960 से लेकर अब तक अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए सुझाव दिये है। इन सुझावों में एक सुझाव ओ0 एण्ड एम0 का है जो विभागों, संगठनों के भीतर काम करता है। यह एक अध्ययन एवं शोध का काम करता है और अपने निष्कर्षों से विभागों और मंत्रालयों को लाभ पहुचाता है।

उत्तराखण्ड का अपना प्रशासनिक सुधार आयोग है। शासन ने इस आयोग हेतु निर्धारित अधिकारादेश/विचारार्थ विषय के अन्तर्गत अनेक बिन्दुओं पर विचार करने एवं संस्तुतियां प्रदान करने का आग्रह किया। आयोग ने 26 जनवरी, 2007 दो भागों में अपना प्रतिवेदन नीतिगत एवं सामान्य सुस्तुतियों के अन्तर्गत सरकार को प्रस्तुत किया।

8.9 शब्दावली

ओ0एण्ड0एम0- आर्गेनाईजेशन एण्ड मैथड्स (डिवीजन), जिसका काम प्रशासकीय अध्ययन और खोज करके विभागों या मंत्रालयों को दिशा निर्देश देना है।

ई-गर्वनेन्स- यह परिकल्पना कि शासन करना एक इंजीनियरिंग है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी इसका आधार है।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सन् 2000, **4.** गृह मंत्रालय के अंतर्गत सन् 1964 में

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय प्रशासन- अवस्थी एण्ड अवस्थी।
केन्द्रीय प्रशासन- ए0 अवस्थी।
स्टेट गवर्नमेंट इन इंडिया- एस0 आर0 माहेश्वरी।

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हमारा संविधान- सुभाष कश्यप।
2. भारत का संविधान- डी0 डी0 बसु।
3. उत्तराखंड शासन की रिपोर्ट -संतुलित समयबद्ध विकास ,5वीं वर्षगाँठ।

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के सुधारों की विवेचना कीजिये।
2. उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार पर निबन्ध लिखिए।
3. आपदा प्रबन्धन के बारे में मुख्य संस्तुतियां क्या हैं?

इकाई- 9 गृह विभाग, वित्त विभाग, आपदा विभाग

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 विभाग
9.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार
9.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश
9.2.3 विभागाध्यक्ष
9.2.4 विभागों की संरचना
9.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष
9.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त
9.3 गृह विभाग
9.3.1 पुलिस बल का पुनर्गठन व आधुनिकीकरण
9.4 वित्त विभाग
9.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली
9.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य
9.5 आपदा विभाग
9.5.1 जी0आई0एस0 डाटाबेस
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम शासन के महत्वपूर्ण विभागों का अध्ययन करने जा रहें हैं। इससे पूर्व अध्यायों व उनकी इकाईयों में हमने प्रशासन के सभी तत्वों का विस्तृत अध्ययन किया है। इस इकाई में शासन की कार्यप्रणाली को संचालित करने वाले विभागों के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

'विभाग' शब्द का शाब्दिक अर्थ, सम्पूर्ण वस्तु का एक हिस्सा या अंग होता है। प्रशासन में सरकार का सारा काम अलग-अलग हिस्सों में बंटा होता है और प्रशासन की बड़ी-बड़ी इकाईयाँ इसे पूरा करने का काम करती हैं। इन इकाईयों को विभाग कहते हैं। सरकार का अधिकांश काम यही विभाग करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि विभाग देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण व बुनियादी इकाई हैं।

दुनियाँ के सभी देशों में सरकार का मुख्य कामकाज विभागों के माध्यम से ही होता है। सरकार के कामकाज चलाने का यह सबसे पुराना व अनूठा तरीका है। प्राचीन और मध्य काल में भी राजा अपना काम अलग-अलग विभागों में बांट कर कराया करते थे। जिनके लिये उससे सम्बन्धित अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी और कार्य का

सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं अधिकारियों का होता था। आज भी यही प्रणाली चली आ रही है। विभागों के अलग-अलग होने का सबसे बड़ा फायदा है, प्रशासन के कार्यों का तीव्रता के साथ सम्पन्न होना।

किसी भी राज्य के शासन को सफल बनाने का महत्वपूर्ण उसके विभाग करते हैं। और हम ये भी जानते हैं कि विभाग, शासन के आदेशों को क्रियान्वित कराने में अपना योगदान देते हैं। शासन की कार्य प्रणालियों को लागू कराने का काम विभाग करते हैं। हालांकि शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं लेकिन कुछ विभाग अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्जे में रखे जाते हैं, जिनमें हम वित्त विभाग, गृह विभाग व उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय व भौगोलिक आधार पर संवेदनशील राज्य के लिये आपदा विभाग को इस दर्जे में रख सकते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि खण्ड तीन की इकाई हमें इन विभागों के बारे में विस्तृत जानकारी देगी। जो विभाग और उसकी कार्य प्रणाली को समझने से सहायक होगी।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विभाग क्या है और उसकी पहचान क्या है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- विभाग कितने के प्रकार के होते हैं और महत्वपूर्ण विभाग कौन-कौन से होते हैं, इसके बारे में जान पायेंगे।
- विभाग संगठन के रूप में कैसे कार्य करता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- गृह, वित्त और आपदा विभाग कैसे कार्य करते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

9.2 विभाग

शाब्दिक अर्थ में विभाग का अर्थ, किसी बड़े संगठन अथवा इकाई का अंग है। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में ‘विभाग’ शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त कामकाज को अनेक खंडो में विभाजित कर लिया जाता है और इनमें प्रत्येक खण्ड को विभाग कहा जाता है। इस प्रकार विभाग प्रशासनिक पदसोपान में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। आधुनिक काल में विभाग के लिए प्रशासन, कार्यालय, अभिकरण, सत्ता, समिति, परिषद आदि अनेक नाम से प्रचलित हुए हैं। विभाग की दो प्रमुख पहचान है- पहला- इकाई का नाम चाहे कुछ भी हो, यदि वह प्रशासनिक सोपान के शीर्ष के समीप हो तथा उसके एवं प्रमुख कार्यकारी के बीच कोई अन्य इकाई न हो तो उसे विभाग कहेंगे। दूसरा- यदि वह इकाई प्रमुख कार्यकारी के अधीन तथा पूर्णतया उसके प्रति उत्तरदायी हो तो उस इकाई को विभाग कहा जायेगा।

9.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार

अपने आकार, संरचना, कार्य की प्रकृति, आन्तरिक संबंधों आदि के आधार पर विभागों में परस्पर भिन्नता होती है। आकार के आधार पर विभागों को छोटे-बड़े दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। भारत सरकार के रेलवे, डाक और तार-विभाग तथा प्रतिरक्षा विभाग बड़े विभाग हैं। इनमें लाखों कर्मचारी कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त पंजीकरण, स्थानीय स्वशासन आदि अनेक छोटे विभाग हैं जो राज्य सरकारों में होते हैं। संरचना की दृष्टि से विभागों को एकात्मक एवं संघात्मक भी कहा जाता है।

एकात्मक विभाग, वे विभाग हैं जो किसी निश्चित प्रयोजन की पूर्ति के लिए संगठित किये जाते हैं। जैसे- शिक्षा, पुलिस आदि। संघात्मक विभागों को अनेक कार्य करने होते हैं। वे वास्तव में अनेक उपविभागों के संघ होते हैं और इनमें से प्रत्येक उपविभाग का अपना पृथक कार्य होता है। जैसे- भारत में गृह विभाग में लोक सेवाओं की नियुक्ति, अनुशासन तथा निवृत्ति, शन्ति और व्यवस्था, आदि विषयों का प्रबन्ध आता है।

9.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश

प्रत्येक देश में विभागीय संगठन का एक आधार प्रदेश अथवा भौगोलिक क्षेत्र होता है तथा कुछ विभाग ऐसे होते हैं, जिनका संगठन इसी आधार पर किया जाता है। प्रत्येक देश का विदेश सम्बन्ध विभाग भौगोलिक आधार पर संगठित किया जाता है, ताकि उन देशों के साथ सम्बन्ध रख सके जो उसकी सीमाओं से बाहर हैं। इस विभाग के प्रादेशिक उप-विभाग भी होते हैं। सन् 1947 में पहले भारत कार्यालय भी इसी आधार पर बनाया गया था। भारत में विदेश मंत्रालय का संगठन भी इसी आधार पर किया गया है।

9.2.3 विभागाध्यक्ष

विभागीय संगठन में अध्यक्ष अथवा सर्वोच्च अधिकारी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि वही समूचे विभाग के निर्देशन और नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होता है। अतः विभाग का अध्यक्ष पद एक महत्वपूर्ण संगठनात्मक समस्या उत्पन्न करता है। इस समस्या के दो अंग हैं। पहला- अध्यक्ष एक अकेला व्यक्ति अर्थात् एकल होना चाहिये, अथवा बहुल निकाय, जैसे कि मंडल अथवा आयोग। दूसरा- विभागाध्यक्ष में प्रशासनिक योग्यता एसी होनी चाहिये जैसे प्रबन्ध, तकनीकी योग्यता, विभाग की क्रियाओं के विषय में तकनीकी ज्ञान।
भारत में आमतौर पर विभागाध्यक्ष एकल व्यक्ति होता है। विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष एक मंत्री तथा प्रशासनिक अध्यक्ष एक सचिव होता है। हमारे यहाँ कुछ विभागों का अध्यक्ष मंडल अथवा आयोग के रुप में होता है। जैसे- आयात-निर्यात कर, आयकर, केन्द्रीय आबकारी आदि विभागों की अध्यक्षता तथा नियंत्रण 'बोर्ड ऑफ डायरैक्ट टैक्सिज' करता है। राज्यों में भी राजस्व, शिक्षा, बिजली आदि विभागों के लिए मंडल बनाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडल हैं- प्रशासनिक मंडल और परामर्शकारी मंडल।

9.2.4 विभागों की संरचना

एक ही देश के भीतर विभिन्न विभागों की संरचना अलग-अलग प्रकार की हो सकती है। परन्तु, यह भेद अथवा अन्तर या विविधता केवल बारीक बातों में ही होती है। मोटे तौर पर विभागीय संगठन का एक सामान्य ढाँचा होता है तथा सब जगह प्रायः उसी का अनुसरण किया जाता है। भारत में संघ तथा राज्य सरकारों का कार्य अनेक मंत्रालयों में विभाजित कर सकते है। भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों में मंत्रिमंडलों की रचना आमतौर पर तिमंजले मकान की तरह होती है। जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

1. विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष अर्थात् मंत्री सबसे ऊपर होता है और उसके नीचे एक या अनेक राज्यमंत्री अथवा संसदीय सचिव होते हैं जो काम में उसकी सहायता करते है।
2. सचिवालय संगठन अथवा सम्बन्धित कार्यालय होते हैं, जिनका अध्यक्ष एक स्थायी प्रशासनिक अधिकारी होता है, जिसे आमतौर पर सचिव कहा जाता है।
3. मंत्रालय के भीतर विभाग अथवा विभागों का कार्यकारी संगठन होता है। इस कार्यकारी संगठन का अध्यक्ष आमतौर पर निर्देशक, महानिदेशक आदि नामों से पुकारा जाता है।

9.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष

मंत्री, उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव ये सब राजनीतिक अधिकारी होते हैं, जो मंत्रिमंडल के साथ बदलते रहते हैं। ये पद अपने दल के भीतर अपनी शक्ति और स्थिति के कारण प्राप्त करते हैं, किसी विशेष योग्यता के आधार पर नहीं। विभागीय मंत्री तीन प्रकार के कार्य करता है-

1. उन व्यापक नीतियों का निमार्ण करता है, जिसके अनुसार विभाग को कार्य करना होता है और विभाग के भीतर उठने वाले नीति सम्बन्धी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में निर्णय करता है।
2. वह विभाग द्वारा नीतियों के क्रियान्वयन पर सामान्य अधीक्षण करता है।

3. वह अपने विभाग की नीति तथा उसके प्रशासन के बारे में संसद के सामने स्पष्टीकरण देता है और उत्तरदायी होता है। वह इस बारे में प्रश्नों के उत्तर देता है, आवश्यक विधेयक प्रस्तुत करता है तथा दूसरे विभागों के सन्दर्भ में एवं जनता के सामने अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव आदि उसके द्वारा सौंपे कार्य को पूरा करते हैं तथा जब वह संसद में स्वयं उपस्थित नहीं होता है तो वहाँ उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन का संचालन मूलतः राजनीतिक अध्यक्षों के द्वारा किया जाता है।

9.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त

सुचारु रुप से प्रशासन चलाने के लिए सरकार के काम को बाँटना जरुरी है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने काम के बँटवारे के लिए दो आधार सुझाए थे। एक व्यक्तियों या वर्गों के अनुसार, दूसरा सेवाओं के अनुसार।

लूथर गुलिक के अनुसार आधुनिक युग में विभागों के गठन के लिए चार सिद्धान्तों या आधार अपनाए जाते हैं। ये आधार हैं- उद्देश्य(Purpose), प्रक्रिया(Process), व्यक्ति(Person) और स्थान(Place)। लूथर गुलिक ने इसे '4-P' का फार्मूला कहा। इन प्रत्येक का विवरण निम्न है-

1. **उद्देश्य-** अधिकांश देशों में सत्ता के किसी खास काम या उद्देश्य के लिए एक विभाग बनाया जाता है। उदाहरण के लिए- देश की रक्षा के लिए रक्षा विभाग बनाया गया, लोगों की स्वास्थ्य की देखभाल के लिए स्वास्थ्य विभाग और उन्हें शिक्षित करने के लिए शिक्षा विभाग का गठन किया गया। ज्यादातर देशों में अधिकतर विभाग उद्देश्य पर ही आधारित होते हैं। विभागों के गठन का यह बहुत आसान, बहुत आम और बहुत कारगर सिद्धान्त है। इससे काम में दोहरापन नहीं आता और इसे समझना भी आसान है। यदि विभागों का गठन विशेष उद्देश्य या विशेष काम को पूरा करने के लिए किया जाए तो आम आदमी आसानी से बता सकता है कि कौन सा काम किस विभाग के जिम्मे है।
2. **प्रक्रिया-** प्रक्रिया का अर्थ किसी तकनीक, किसी दक्षता या विशेष प्रकार के पेशे से है। उदाहरण के लिएः लेखांकन, टंकण, आशुलिपि, इंजीनियरी और कानूनी सलाह आदि ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनकी आमतौर पर सभी सरकारी संगठनों में जरुरत पड़ती है। सभी संगठनों को लेखांकन, टंकण, आशुलेखन, भवन, कानूनी सलाह, लेखांकन की आवश्यकता होती है। अतः कुछ देशों में अलग-अलग प्रक्रियाओं के आधार पर अलग-अलग विभाग बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए विधि विभाग, लोक निर्माण विभाग या लेखा विभाग बनाए जाते हैं जो अन्य सभी विभागों की मदद करतें है और उनकी विशेष जरुरतों को पूरा करते हैं। लेकिन प्रक्रिया पर आधारित विभागों की संख्या गिनी-चुनी होती है। यदि विभागों का गठन प्रक्रिया के आधार पर किया जाए तो विशेषज्ञता और नवीनतम तकनीकी दक्षता सबको उपलब्ध करायी जा सकेगी। प्रशासन में अधिकतम किफायत, बेहतर तालमेल और एकरुपता आयेगी। इसके साथ ही साथ प्रक्रिया पर आधारित विभागों के कर्मचारियों में घमंड, संकीर्णता और श्रेष्ठता की भावना पैदा हो जायेगी। फिर भी सभी देशों में कुछ विभाग प्रक्रिया के आधार पर बनाए जाते हैं।
3. **व्यक्ति-** प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति या समूह होते हैं, जिनकी समस्याएँ, विशेष और सबसे अलग होती हैं और जिन्हें विशेष सेवाओं की जरुरत पड़ती है। उदाहरण के लिए शरणार्थी, आदिवासी, अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के लोग, दिव्यांग और पेंशन भोगी आदि। कुछ देशों में कुछ सरकारी विभाग विशेष तौर पर कुछ विशेष समूहों या व्यक्तियों की सभी समस्याओं से निपटने के लिए बनाए जाते हैं। पुर्नवास विभाग, आदिवासी कल्याण विभाग, पेंशनर विभाग, समाज कल्याण विभाग या श्रम विभाग आदि उन विभागों के उदाहरण हैं, जिनका गठन व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है। सम्बद्ध समूह या व्यक्ति इन विभागों से आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं और यह विभाग भी व्यवस्थित और समन्वित रुप

से सभी प्रकार की सेवाएँ उन्हें कारगर ढंग से उपलब्ध करा सकते हैं। लेकिन विशेष समूहों के लिए विशेष विभागों की स्थापना से उन विभागों में इन समूहों के निहित स्वार्थ विकसित हो जाते हैं और वे प्रशासन पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं। फिर भी अनेक देशों में समूहों या व्यक्तियों के आधार पर कुछ विभागों का गठन किया ही जाता है।

4. **स्थान-** प्रत्येक देश में कुछ इलाका, प्रदेश या क्षेत्र ऐसा होता है, जिसकी अपनी विशेष समस्याएँ होती है, जिनके कारण उसे विशेष ध्यान और विशेष सेवाओं की जरुरत होती है। अतः उस क्षेत्र विशेष के लिए अलग विभाग का गठन किया जाता है। इस तरह के विभाग का सबसे बढ़िया उदाहरण आजादी से पहले अंग्रेज सरकार द्वारा भारतीय मामलों के विभाग का गठन था। आज भी ब्रिटेन में स्काटलैंड और आयरलैंड के मामलों के लिये अलग-अलग विभाग हैं। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय भी ऐसे विभागों का एक उदाहरण है। कई विभागों को अलग-अलग प्रभागों में बाँट दिया जाता है जो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों की देखभाल करते हैं। उदाहरण के लिए रेल विभाग के कई क्षेत्रीय मंडल हैं। जैसे- पश्चिम रेलवे, मध्य रेलवे, दक्षिण रेलवे या दक्षिण मध्य रेलवे इत्यादि। भारत में क्षेत्र या स्थान विशेष के लिए गठित विभागों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार हमने देखा कि विभागों के गठन के लिए चार मुख्य सिद्धान्त या आधार है- उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान। प्रत्येक सिद्धान्त के अपने-अपने फायदे और नुकसान है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विभागों के गठन के लिए कौन से सिद्धान्त या आधार को सर्वोत्तम माना जाये। यह प्रश्न जितना सहज है, उसका उत्तर उतना ही कठिन है। वास्तव में विभागों का गठन किसी एक सिद्धान्त के आधार पर नहीं किया जाता। प्रशासनिक सुविधा तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार विभागों के गठन के लिए विभागीकरण के चारों सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है। कोई एक सिद्धान्त सर्वोत्तम नहीं है। चारों सिद्धान्त एक-दूसरे के पूरक हैं और विभागों के गठन के लिए सभी देशों में इन सबका प्रयोग किया जाता है।

यह बात हम जान चुके हैं कि किसी भी शासन व्यवस्था में विभाग कितने महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन कुछ विभाग अति महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे- गृह, वित्त, कार्मिक व आपदा विभाग व अन्य। यहाँ हम गृह, वित्त व आपदा विभाग के बारे में उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे।

9.3 गृह विभाग

कानून व्यवस्था की स्थिति दीर्घकालीन समग्र विकास को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। उत्कृष्ट कानून व्यवस्था प्रगति तथा सुखमय जन-जीवन की बुनियादी जरूरत है और यह उपलब्धि आज के सन्दर्भ में उत्तराखण्ड राज्य की प्रमुख विशेषता है। लेकिन बदलते परिवेश में कानून व्यवस्था की चुनौतियाँ सभी जगह विद्यमान हैं। राज्य गठन के बाद सरकार ने उत्तराखण्ड में अपराधों की रोकथाम तथा अमन चैन कायम रखने के लिये कारगर प्रयास कर परम्परागत छवि से हटकर मित्र पुलिस बल की स्थापना पर जोर दिया। राज्य में पुलिस बल के आधुनिकीकरण के साथ महिला हैल्पलाईन की भी स्थापना राज्य में की गयी। कारागार विभाग, होमगार्ड्स के कल्याण हेतु नई नीतियों के साथ ही इनका समुचित प्रयोग किया गया।

हम जानते हैं कि गृह, कारागर प्रशासन एवं सुधार विभाग मुख्य रुप से कानून व्यवस्था को चुस्त एवं दुरुस्त बनाए रखने हेतु उत्तरदायी हैं। इन विभागों में नीति विषयक निर्णय कराने, बजट तैयार कर विधायिका से अनुमोदन के पश्चात धनराशि अवमुक्त करने, सी0आई0डी0 को प्रकरण सन्दर्भित करने, दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन का निर्णय लेने, शस्त्र लाईसेंसों की सीमा विस्तार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से प्राप्त मामलों का अनुश्रवण

करने, राज्य मानवाधिकार आयोग से सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित करने, विधानसभा/विधान परिषद में प्रश्नों के उत्तर देने, भारत सरकार से पुलिस सम्बन्धी मामलों में समन्वय तथा राज्य में कानून व्यवस्था से सम्बन्धित कार्यों का निष्पादन करते हैं।

विभाग द्वारा नागरिकों, अति विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण अधिष्ठानों की सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है। पुलिस एवं कारागार प्रशासन विभाग में पुलिस आधुनिकीकरण योजना एवं कारागार आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत नीति निर्धारण, बजट व्यवस्था एवं व्यय का अनुश्रवण मुख्य कार्य है।

उपरोक्त कार्यों को सम्पादित करने हेतु प्रमुख सचिव के सहायतार्थ सचिव, विशेष सचिव, ओ0एस0डी0 एवं उप/अनुसचिव कार्यरत है। विभागाध्यक्ष स्तर पर पुलिस महानिदेशक के अतिरिक्त, महानिदेशक (अभियोजन), महानिदेशक (सी0बी0सी0आई0डी0), महानिदेशक (अग्निशमन सेवाएं), महानिदेशक(तकनीकी सेवाएं), महानिदेशक (प्रशिक्षण सेवाएं), महानिदेशक (विशेष जांच) एवं महानिदेशक (कारागार एवं सुधार विभाग) नियुक्त हैं। अपर पुलिस महानिदेशक स्तर के अधिकारी के अधीन भ्रष्टाचार निवारण संगठन कार्यरत हैं, जिन्हें इस कार्यालय में प्राप्त शिकायतें सन्दर्भित की जाती हैं।

9.3.1 पुलिस बल- पुनर्गठन व आधुनिकीकरण

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद राज्य के पुलिस बल के ढाँचे में उत्तर-प्रदेश से हट कर नये तरीके से तैयार किया गया। राज्य की संवेदनशील सीमाओं पर पुलिस की विषेश टुकड़ियां तैनात की गयी है। राज्य के गठन के बाद से 4000 आरक्षी, 253 पुलिस उप निरीक्षक, 450 भूतपूर्व सैनिक, एक इण्डिया रिजर्व बटालियन, दो कम्पनी महिला सशस्त्र बल व 334 महिला आरक्षी की भर्ती कर पुलिस बल का पुनर्गठन किया गया। यह विभाग का आरम्भ था। देश की भौगोलिक स्थितियों को देखते हुए गृह विभाग पर सरकार का विशेष ध्यान रहा। राज्य की स्थापना के बाद 17 नये थाने तथा 17 नई चौकियां की स्थापना की गयी। साथ ही केन्द्र सरकार की पुलिस आधुनिकीकरण योजना के अधीन नई संचारण क्षमता उपलब्ध कराई गयी। आधुनिक असत्र–शस्त्र, उपकरणों ,अपराध विवेचना के नवीन संसाधनों, आधुनिक संचार साधनों से विभाग का व समस्त कर्मचारियों का सुदृढ़ीकरण किया गया है। इसके साथ ही प्रत्येक जिले में महिला हैल्प लाईन व प्रत्येक जिले में महिला डैक्स की स्थापना की गयी है जो महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं के त्वरित निवारण पर अपना सहयोग प्रदान करते हैं। विभाग को सूचना संचार के साधनों से आधुनिक बनाया गया है, जिसके लिये राज्य में उपलब्ध सभी संचार प्रणालियों को एकीकृत कर सहतरंग नामक एकल संचार योजना क्रियान्वित की गयी है। इस कार्य में केन्द्रीय सुरक्षा बलों व भारतीय संचार निगम लिमिटेड को भी शामिल किया गया है। भारत-नेपाल की सीमा, जो राज्य से मिलती है उसकी संवेदनशीलता को देखते हुए भारत सरकार द्वारा इस सीमा का प्राथमिक प्रबंधन सशस्त्र सीमा बल को सौंपा गया है। बल को इस कार्य में सहयोग की दृष्टि से सीमा से 15 किलोमीटर क्षेत्र में तलाशी एवं जब्ती के अधिकार भी दिये गये हैं।

9.4 वित्त विभाग

किसी भी राज्य का वित्त विभाग केन्द्र की भाँति उस राज्य के वित्त मंत्रालय के अधीन होता है। मंत्रालय का काम बजट बनाना और इसे लागू करवाना होता है। वित्त विभाग राज्य के सभी विभागों के लेखा-जोखा व आहरण वितरण का संचालन करता है। विभिन्न विभागों के अधिकारी अपने विभागों के विभिन्न प्रस्तावों व योजनाओं के लिये अनुमानित धनराशि का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। विभागों का यह लेखा या हिसाब-किताब निश्चित अवधि में महालेखाकार के लेखों से मिलाया जाता है। यह काम विभिन्न राजकोषों से हर पखवाड़े पर मिले लेखों के आधार पर किया जाता है। इन सभी कार्यों को वित्त विभाग के सहयोग से ही पूरा किया जाता है। वित्त विभाग किसी भी राज्य का सबसे महत्वपूर्ण विभाग होता है।

उत्तराखण्ड राज्य गठन के साथ ही राज्य की वित्त व कोषागार सेवाओं को स्थापित किया गया। वित्त विभाग का नियंत्रक वरिष्ठतम् अधिकारी होता है, जो वित्त सेवा से चयनित होता है। राज्य के राजकीय आहरण और वितरण का निरीक्षक व नियंत्रक राज्य का वित्त निदेशालय होगा। निदेशालय राज्य के सभी सरकारी विभागों के आहरण व वितरण की जिम्मेदारी कोषागार व उप कोषागारों को देता है। राज्य का वित्तीय निदेशालय देहरादून में है। उत्तराखण्ड राज्य कुशल वित्तीय प्रबन्ध के प्रयास में सफल हो रहा है। सरकार करों के बिना विकास योजनाओं के लिये नये स्रोतों से संसाधन जुटाने का प्रयास किया है जिससे राज्य के आम जन पर अतिरिक्त भार नहीं पड़ा है। वित्त विभाग द्वारा प्रयास किये गये कि कार्मिकों व पेंशन भोगियों को नियत समय पर भुगतान किया जा सके। सरकार द्वारा शासकीय लेन-देन की व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक से समझौता कर स्टेट बैंक को एजेंट के रूप नियुक्त किया गया और वित्तीय संस्थाओं को कम्प्यूटरीकृत कर दिया गया है। सरकार आम जन को सुविधा देने के लिये वित्त विभाग के कर्मचारियों को आधुनिक प्रशिक्षण समय-समय पर दे रही है, जिससे वित्त विभाग की दक्षता बढ़ी है। सरकार ने ऐसे प्रयास किये हैं कि राज्य के सभी कोषागार व उपकोषागार पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत हैं और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में वित्त विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है- राज्य का डाटा केन्द्र (देहरादून में) 13 जिला कोषागार, 14 उच्चीकृत कोषागार, 02 आहरण और लेखा विभाग, 60 उपकोषागार, 02 नोडल केन्द्र नॉन पोस्टल स्टाम्प।

9.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली

कोषागार व्यवस्था तथा केन्द्र सरकार की विभागीय वेतन एवं लेखा कार्यालय की व्यवस्था पर किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि राज्य सरकार, ग्रामीण स्तर तक नियुक्त होने के कारण प्रत्येक विभाग के वेतन और लेखा कार्यालय का बड़ा नेटवर्क है, जिससे अनावश्यक व्यय होने के साथ-साथ भुगतान में भी विलम्ब होता है। इन कमियों को दूर करने के लिये सरकार ने राज्य में एकीकृत भुगतान एवं लेखा-प्रणाली लागू की, जिससे सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों के लिये ई-पेरोल व्यवस्था शुरू की गयी। जिसका फायदा राज्य कर्मचारियों को मिल रहा है। इस व्यवस्था से निम्न लाभ प्राप्त हुए हैं-

1. उत्तराखण्ड ऐसा पहला राज्य है, जहाँ कम्प्यूटर पर आधारित एकीकृत भुगतान एवं लेखा-प्रणाली लागू की गयी है।
2. बैंकों के नेटवर्किंग के फलस्वरूप उपलब्ध कोर बैंकिंग की सेवाओं का एकीकृत भुगतान व लेखा-प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। जिससे दूर-दराज के कर्मचारियों को लाभ प्राप्त हो रहा है और वो त्वरित भुगतान की सुविधा ले रहे हैं।
3. प्रत्येक कोषागार में सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों की सेवा तथा वेतन सम्बन्धी विवरण का डाटा बेस बैंक निर्मित किया गया है, जिससे कर्मचारी अपनी वेतन सम्बन्धी मामलों को इन्टरनेट के माध्यम से देख व समझ सकता है।
4. भुगतान की समस्त सूचना इन्टरनेट में सरकारी साईट पर उपलब्ध है।

9.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य

राज्य में वित्तीय कार्यों के लिये वित्त विभाग द्वारा एक निदेशालय का गठन किया गया है, जिसका कार्य राज्य में समस्त सरकारी विभागों का वित्त सम्बन्धी लेखाओं का संचालन करना होता है। इसके कार्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. निदेशालय के द्वारा राज्य सरकार के समस्त भुगतान आहरण-वितरण अधिकारी के माध्यम से किये जाते हैं।

2. राज्य सरकार की समस्त प्राप्तियां बैंकों के माध्यम से निदेशालय के निर्देशन से की जाती हैं।
3. निदेशालय राज्य सरकार की तरफ से मूल्यवान वस्तुओं का रख-रखाव करता है।
4. इसके साथ ही निदेशालय राज्य में गैर-पोस्टल स्टाम्प का भण्डारण व विक्रय का कार्य करता है।
5. निदेशालय समस्त श्रेणी के पेंशनरों के पेंशन वितरण का कार्य करता है।
6. एकीकृत लेखा एवं भुगतान कार्यालय के माध्यम से राज्य कर्मचारियों को वेतन एवं भत्तों का भुगतान करना।
7. सोसाइटी एक्ट-1860, साझेदारी अधिनियम-1932 के अन्तर्गत संस्थाओं का पंजीकरण एवं अन्य सम्बन्धित कार्य करना।
8. स्वायत्तशासी संस्थाओं/स्थानीय निकायों के वैयक्तिक लेखों का रख-रखाव करना।
9. निर्माण विभागों की भुगतान धनराशि व डेविड-क्रेडिट सम्बन्धी लेखा का ब्यौरा रखना।
10. विभागों की प्राप्तियों की वापसी का विवरण रखना।
11. आहरण-वितरण अधिकारियों का बजट नियंत्रण ।
12. कर्मचारियों की सेवानिवृति पर सामूहिक बीमा निधि का भुगतान करना।
13. चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की सामान्य भविष्य निधि के रख-रखाव का ब्यौरा रखना।

9.5 आपदा विभाग

क्षेत्र की भौगोलिक, भूगर्भाय एवं पारिस्थितिकीय संरचना उत्तराखण्ड राज्य को प्राकृतिक एवं मानवीय परिवर्तनों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील बनाती है। यही इस क्षेत्र की आपदाओं का मुख्य कारण भी है। भूकम्प की दृष्टि से राज्य के चार जिले अति संवेदनशील जोन- 5 व पांच जिले संवेदनशील जोन- 4 में आते हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए उत्तराखण्ड गठन के बाद सरकार द्वारा आपदा प्रबन्ध विभाग की स्थापना की गयी। आपदा विभाग द्वारा आपदा प्रबन्ध को व्यावहारिक बनाने के लिये प्रदेश के आपदा प्रबन्ध तंत्र को इस प्रकार विकसित किया गया है कि आपदा प्रबन्ध में राज्य एवं जनपद स्तरीय अधिकारियों/कर्मचारियों के अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं, गैर-सरकारी संगठनों, जनप्रतिनिधियों एवं जनसामान्य की स्पष्ट भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।
राज्य स्तर पर देहरादून में विभाग ने 'आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र' की स्थापना सचिवालय परिसर में की गयी है। इस केन्द्र का ध्येय जागरूकता, सूचना, प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता एवं क्षमता विकास के माध्यम से राज्य में आपदाओं के जीवन एवं पर्यावरण सुरक्षा हेतु एक ऐसे तंत्र की स्थापना करना जो कि राज्य की आपदाओं के प्रति संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए आपदा से पूर्व, आपदा के समय एवं आपदा के पश्चात की गतिविधियों का संसाधनों के अधिकतम सम्भव उपयोग के साथ सुचारू व समयबद्ध तरीके से क्रियान्वयन सुनिश्चित कर सकें। आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है। केन्द्र नई तकनीकी के प्रयोग से आपदा सम्बन्धी जानकारी को पहले ही देने में सक्षम है। केन्द्र ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क में रहता है जो आपदा प्रबन्धन के कार्यों में लगे रहते हैं तथा अनुभवी होते हैं। आपदा विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

1. मुख्य सचिव (ई0 सी0)- अध्यक्ष
2. प्रमुख सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
3. प्रमुख सचिव, गृह, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
4. प्रमुख सचिव, राजस्व, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
5. प्रमुख सचिव, आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य

6. प्रमुख सचिव, सिंचाई, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
7. निदेशक, उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल- सदस्य
8. आयुक्त रिलिफ, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य
9. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र- सचिव/ सदस्य

कार्यकारी समिति के सदस्य

1. प्रमुख सचिव/सचिव आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार- अध्यक्ष
2. निदेशक उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल- सदस्य
3. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र- सचिव/ सदस्य
4. अपर सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार- सदस्य

9.5.1 जी0आई0एस0 डाटाबेस

विभिन्न प्रकार के आधारित संरचना के डाटाबेस एक महत्वपूर्ण साधन हैं, जिसके द्वारा आपदा से बेहतर तरीके से निपटा जा सकता है। इसके लिये आपदा विभाग ने जी0आई0एस0(ज्योग्रैफिकल इन्फॉर्मेशन सिस्टम) के द्वारा सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र द्वारा सेटेलाईट से प्राप्त डाटा (सूचनाएं) का प्रयोग आपदा से निपटने में कर रहा है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र के द्वारा निम्न विषयों पर आधारिक संरचना एकत्रित की जा चुकी है- निकासी व्यवस्था(नालियों की), आवास, सड़कें ,सिंचाई, स्वास्थ्य संगठन, पुलिस एवं राजस्व पुलिस संरचना, बेहतर संचार व्यवस्था और एफ0 सी0 आई0 गोदाम आदि।

राज्य में आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र की इकाईयां निम्न स्थानों पर हैं- 1. अल्मोड़ा, 2. बागेश्वर, 3. चमोली, 4. चम्पावत, 5. देहरादून, 6. हरिद्वार, 7. नैनीताल, 8. पौड़ी, 9. पिथौरागढ़ 10. रूद्रप्रयाग, 11. टिहरी, 12. उत्तरकाशी, 13. उधम सिंह नगर।

राज्य के सभी जिलों में आपदा विभाग द्वारा केन्द्र स्थापित किये हैं, जो आपदा के समय अपनी सेवा प्रदान करते हैं। ये केन्द्र जनपद में विभिन्न विभागों के प्रशिक्षित कार्मिकों का क्षेत्रवार विवरण तथा कार्य-क्षेत्र निर्धारण, खोज व बचाव दल जिन्हें आपदा प्रबन्ध द्वारा प्रशिक्षित किया गया है एवं चिन्हित किया गया है, उनकी सूची आपदा प्रबन्ध विभाग के पास उपलब्ध कराता है। साथ ही केन्द्र जिला इकाईयों के साथ मिल कर जागरूकता कार्यक्रम को प्रशासन के निर्देशानुसार तैयार करता है तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है। आज हम देख रहे हैं कि निरन्तर पर्यावरण असंतुलित हो रहा है और जिस तरह पर्यावरण असंतुलित हो रहा है, उसी तरह प्राकृतिक आपदाओं का स्वरूप भी बदल रहा है। ये सब ध्यान में रखते हुए आम लोगों को खतरों के प्रति जागरूक किया जा सकता है। जिसके लिये आपदा विभाग का गठन किया गया है। आपदा विभाग के गठन के बाद से राज्य आज आपदा से बचाव के लिये तरह-तरह के कार्यक्रम चला रहा है। जिससे राज्य सरकारों को आपदा से निपटने के लिये सहायता मिल रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संरचना की दृष्टि से विभागों को दो भागों में बांटा जाता है, उनके नाम बताएँ।
2. विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडलों के नाम बताएँ।
3. लूथर गूलिक ने विभागों के गठन के लिए कौन सा फार्मूला दिया?
4. उत्तराखण्ड राज्य का वित्तीय डाटा केन्द्र कहाँ है?
5. राज्य का आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र कहाँ स्थित है?
6. जी0आई0एस0 का पूरा नाम क्या है?

9.6 सारांश

किसी भी शासन व्यवस्था का पहला गुण वहाँ की कार्यप्रणाली का आवंटन होता है। कार्य को क्रियान्वित करना विभागों के जिम्मे होता है। शासन के समस्त कार्यों को अलग-अलग विभागों द्वारा किया जाता है। इस इकाई में हमने शासन के सबसे महत्वपूर्ण विभागों- गृह विभाग, वित्त विभाग व उत्तराखण्ड राज्य के लिये सबसे अधिक महत्व रखने वाला आपदा विभाग का अध्ययन किया। इस अध्याय में राज्य के गृह विभाग की विस्तृत चर्चा की गयी तथा राज्य के पुलिस व्यवस्था का अध्ययन किया गया। इसी के साथ राज्य के वित्त विभाग के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया गया। आपदा प्रबन्ध विभाग राज्य में कैसे काम कर रहा है, इसकी भी चर्चा इस अध्याय में की गयी।

9.7 शब्दावली

जी0आई0एस0- ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम, 4-पी- उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति, स्थान, राजनीतिक अध्यक्ष- किसी विभाग का मंत्री उस विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष होता है

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एकात्मक और संघात्मक, **2.** प्रशासनिक मंडल और परामर्शकारी मंडल, **3.** 4-पी, **4.** देहरादून, **5.** देहरादून, **6.** ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक प्रशासन- अवस्थी व माहेश्वरी।
2. उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन- वी0डी0 बलूनी।
3. वार्षिक रिपोर्ट, सन्तुलित, समयबद्ध व समग्र विकास- उत्तराखण्ड शासन।
4. पहाड़ पत्रिका- शेखर पाठक, संपादक, नैनीताल।

9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. उत्तरांचल समग्र अध्ययन- सविता मोहन व हरीश यादव।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभाग से आप क्या समझते हैं? विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र व गठन के सिद्धान्त को समझाए।
2. उत्तराखण्ड राज्य के गृह विभाग की विस्तृत रुप से व्याख्या कीजिए।
3. वित्त विभाग के क्या-क्या कार्य है, विस्तार से बताएं।
4. उत्तराखण्ड राज्य के आपदा प्रबन्धन पर निबन्ध लिखिए।

इकाई- 10 उत्तराखण्ड की जनजातियां एंव जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां
10.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं
    10.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनाएं
    10.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं
    10.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासन्मुख योजनाएं
10.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र
    10.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र
    10.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.9 सहायक/उपयोगी अध्ययन सामग्री
10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

भारत वर्ष में फैले लगभग 450 जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 342 के तहत अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। वर्तमान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग 6 करोड़ 70 लाख है, जो भारत की पूरी आबादी का 8.08 प्रतिशत है। यानि प्रत्येक 100 भारतीय नागरिकों में से 08, जनजाति समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित जनजातियां देश के विभिन्न भागों में वितरित हैं और इनकी प्रमुख विशेषता है इनकी विविधता। भौगोलिक वितरण के आधार पर सम्पूर्ण जनजाति समूहों को पांच मुख्य क्षेत्रों में बांटा जा सकता है- 1. उत्तर पूर्व भारत, 2. उप हिमालयी क्षेत्र, 3. मध्य एवं पूर्व भारत, 4. दक्षिण भारत, 5. पश्चिमी भारत।
इस विभाजन के अन्तर्गत उत्तराखण्ड क्षेत्र, उप हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। वर्ष 1967 से पूर्व संयुक्त उत्तर प्रदेश में किसी भी समूह को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। जून 1967 में भारत सरकार द्वारा थारू, बुक्सा, जौनसारी, भोटिया तथा राजि जनजातियों समूहों (वर्तमान में उत्तराखण्ड में निवास) को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जनजातीय समाज के विषय में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड की जनजातीयों के विषय में विस्तार से अध्ययन कर पायेंगे।
- जनजातियों के विकास से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में जान पायेंगे।

- जनजातियों के लिए गठित प्रशासनिक तंत्र के विषय में जान पायेंगे।

10.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां

सन् 1967 से पूर्व उत्तराखण्ड में निवास करने वाली जनजातियों की जनजाति के रूप में पहचान न मिलने के कारण उन्हें जनजाति होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। जून 1967 में भारत सरकार ने उत्तराखण्ड की पांच जनजातियों- थारू, बुक्सा, जौनसारी, भोटिया और राजि(वन रावत) को जनजाति का दर्जा दिया। उत्तराखण्ड की जनजातियां पहाड़ों के दुर्गम से अति दुर्गम क्षेत्रों से लेकर तराई-भाभर के क्षेत्रों तक निवास करती है। ये उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों तक फैल गये हैं। जहाँ एक और भोटिया जनजाति ने शिक्षा प्राप्त कर राज्य के विभिन्न प्रशासनिक पदों पर आसीन होकर अपना आर्थिक और सामाजिक तौर पर सशक्तिकरण किया वहीं दूसरी और राजि (वन रावत/रजवार) जनजाति अपने अस्तित्व के लिए संर्घष कर रही है। उत्तराखण्ड के पिथोरागड़ और चम्पावत के 10 गांवों में 700 की संख्या के करीब यह जनजाति अशिक्षा, अस्वस्थता और बेरोजगारी से जूझ रही है और यदि सरकार ने इस जनजाति की ओर ध्यान नहीं दिया तो विलुप्त होने की कगार पर खड़ी है। उत्तराखण्ड की इन जनतातियों का विस्तार से अध्ययन करते हैं।

10.2.1 थारू जनजाति

थारू जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। उनके 142 गांव हैं, किन्तु 88 ही गांव ऐसे हैं जहाँ पूर्ण अबादी थारुओं की है या थारु बहुल हैं। थारू जनजाति की संख्या में उतार-चढ़ाव देखने की मिलता रहता है। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इनकी संख्या में वृद्धि तथा इनका क्षेत्र विकास भी हुआ। थारू अपने आपको चित्तौड़ के महाराणा प्रताप के वंशज मानते हैं तथा ‘राणा’ उपजाति का प्रयोग भी करते हैं। आज स्वयं थारू समाज के वृद्ध पुरूष और स्त्रियाँ इस कथन को स्वीकार करते हैं कि थारू स्त्रियाँ वास्तव में राजघराने से सम्बन्धि थीं। थारू जनजाति में अनेक उपजातियाँ पायी जाती हैं। इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रिति-रिवाज-** थारू जनजाति के रीति-रिवाज भी अपने आप में अनूठे हैं। इनकी वेश-भूषा गहरे रंगों से बने कपड़ों की होती है। कुछ महिलायें कोटी भी पहनती हैं, जिनका अग्र भाग सिक्कों से सजा रहता है। इनकी पोशाकों में कलात्मकता होती है। थारू पुरुष अपनी पारम्परिक धोती-कुर्ता, पैजामा व कमीज पहनते है। सिर पर सफेद टोपी भी ये लोग पहनते है। युवा थारू शहरी प्रभाव के कारण पैंट-सर्ट भी पहनने लगे हैं।

   थारू अपने भोजन में मुख्यतः चावल, मक्का, गेहूँ, मसूर व अन्य स्थानीय खाद्य सामग्री का प्रयोग करते हैं। थारुओं को मांस खाने का भी शौक है। भोज्य सामग्री के अलावा इनकी दिनचर्या कच्ची शराब पिये बगैर पूरी नहीं होती है।
2. **धार्मिक भावना-** थारू जनजाति के लोग भगवान पर विश्वास करते हैं तथा एक सर्वमान्य शक्ति को पूजते है। थारूओं के अलग-अलग गांवों में देवता भी अलग-अलग होते हैं। देवताओं की पूजा अधिकतर पुरुष करते हैं। थारू जादू द्वारा आत्माओं को प्रसन्न करने पर भी विश्वास रखते हैं। ये एक-दूसरे के जादू को काटने का प्रयास करते या करवाते हैं। यह कार्य करने वाला भर्रा कहलाता है। पूरे ग्राम में एक ही ‘भर्रा’ होता है जो देवी-देवताओं की पूजा में बलि भी चढ़ाता है। इनके यहाँ फसल, कृषि-यंत्रों एवं जानवरों की भी पूजा होती है।

थारूओं के प्रमुख पर्वो में 'चरई' सबसे महत्वपूर्ण है जो वर्ष में दो बार चैत्र तथा वैशाख में मनाया जाता है, जिसमें 'भूईयाँ' देवी की पूजा होती है। ये होली को अत्यन्त उत्वाहपूर्वक मानते है। इसके अलावा ये दीपावली, दशहरा तथा नागपंचमी भी हिन्दुओं की तरह मनाते है।

3. **सामाजिक स्थिति-** थारू जनजाति पितृ सत्तात्मक, पितृ वंशीय है। अधिकांश विस्तारित परिवार की प्रथा पायी जाती है। परिवार से बड़ा 'कुर्म' होता है जो वहिर्विवाही होता है। इसमें बड़ा 'कुरि' या 'कूरा' होता है जो कई कुर्म से मिलकर बनता है। यह अन्तर्विवाही होता है। परिवार का मुखिया घर का वृद्ध पुरूष होता है। थारू में स्त्रियों की स्थिति सर्वोच्च होती है, इसलिये उनमें 'वधुमूल्य' का प्रचलन है। इनके यहाँ विवाह मध्यस्थ व्यक्ति जिसे मंझपतिया कहते है, तय करता है। इनमें विवाह मुख्य रूप से फागुन, वैशाख, माघ, पूस के महिनों में होता है। विवाह से 3-4 वर्ष पूर्व मंगनी हो जाती है, परन्तु विवाह वयस्क होने पर ही होता है। थारू विवाह के सारे संस्कार स्वयं ही पूरा करते हैं तथा थारू एक विवाही होते हैं। देवर-विवाह, साली-विवाह के साथ-साथ बहुपत्नी विवाह भी कहीं-कहीं देखने को मिलता है। वधूमूल्य के अभाव में अपहरण विवाह तथा पलायन विवाह से वधु प्राप्ति की जाती है।

   थारू जनजाति में पति-पत्नी एक-दूसरे को तलाक दे सकते हैं। तलाक देने को ये लोग 'उरारी' कहते हैं। स्त्रियों का पुरुषों की अपेक्षा उच्च स्थान होने के कारण स्त्रियां अधिक आसानी से तलाक दे देती हैं, जबकि पुरुष को तलाक देने में हर्जाना पड़ता है। इसके अलावा थारूओं में नातेदारी व्यवस्था हिन्दुओं से प्रभावित है।

4. **व्यवसाय व आर्थिक स्थिति-** थारूओं का प्रमुख व्यवसाय व आय का श्रोत कृषि है। इसके अतिरिक्त मछली शिकार व अन्य कार्य है, जिसे व्यवसाय तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु पारिवारिक व्यय को कम करने में सहायक है। वन प्रदेश से लगे थारूओं में शिकार का शौक भी है। जितनी उर्वर भूमि इनके पास खेती के लिए है, उतना उत्पादन नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप थारूओं की कृषि से प्राप्त आय उनको जीवित रखने भर के लिये प्राप्त है। मछली मारने का कार्य पारिवारिक कार्य व आवश्यकता के रूप में किया जाता है। ये लोग पशुपालन के रूप में मुख्यतः सुअर, मुर्गियाँ, गाय व बकरी आदि पालते हैं। ये लोग जाल, डलिया, पाश आदि भी बनाते है।

10.2.2 बुक्सा जनजाति

बुक्सा जनजाति उत्तर भारत के उप-हिमालय की तलहटी से लेकर हिमालय के तराई तक पूरब से उत्तर-पश्चिम की तरफ एक पट्टी में बसे हुए हैं। पूरब में नैनीताल जनपद (वर्तमान में उधमसिंह नगर जनपद) के बाजपुर विकास खण्ड तथा देहरादून जिले के विकासपुर विकास खण्ड तक इनकी जनसंख्या बिखरी है। 'बुक्सा' नाम की उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग धारणाऐं हैं। कुछ बुक्सा लोग स्वयं को इस तथ्य से सम्बन्धित करते हैं कि उनके पूर्वज बकरे से समान दाढ़ी रखते थे जिसे स्थानीय भाषा में 'बोक' या 'बोकी' कहा जाता है, जिसे बाद में बुक्सा कह दिया गया। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** बुक्सा लोग धोती, बंडी व हाफ कमीज तथा सिर पर पगड़ी धारण करते है। महिलाएँ परम्परागत वस्त्र लहंगा एवं चोली अधिक पसंद करती हैं। इसके अतिरिक्त नई पीढ़ी के लोग पैंट, शर्ट कोट व पायजामा आदि का प्रयोग करते है। विवाह जैसे अनुष्ठानों में दुल्हा व दुल्हन के परम्परागत वस्त्र होते हैं। आभूषणों में महिलाएँ हंसली, हमेल कानों में फूल तथा चाँदी की चूड़ियाँ पहनती हैं। मुख्य रूप से इनके अधिकतर आभूषण चाँदी के होते हैं। इनके गाँव व आवास व्यवस्था मूलतः मिलकर रहने के रूप में देखी जा सकती है। इनके अधिकांश गाँव नदी या जंगल के किनारे होते हैं। आरम्भिक काल में ये लोग झूम कृषि करते थे। साक्ष्य रूप में कुछ गाँवों में एक ही परिवार पाया जाता है। किसी गाँव में इनके छोटे-छोटे

पुरवे हैं, जिन्हें ये लोग 'मझरा' कहते हैं। प्रत्येक मझरा या गाँव का एक प्रमुख व्यक्ति होता है, जिसे प्रधान कहा जाता है जो मझरे का सर्वेसर्वा होता है।

2. **धार्मिक भावना-** बुक्सा हिन्दू धर्म जैसे ही धर्म को मानने वाले लोग हैं, जिनमें धार्मिक क्रियाओं को तो पहाड़ी ब्राह्मण सम्पन्न करते हैं, लेकिन जादुई क्रियाओं को भरार(एक तरह का तांत्रिक) अथवा सयाने सम्पन्न करते हैं। ये लोग जादू-टोने पर विश्वास करते हैं। भरार देवियों, प्रेतों, शैतानों एवं चुड़ैलों को अपने वश में करते हैं। भरार हित तथा अहित दोनों प्रकार के देवताओं को पहचानता है तथा इनका प्रयोग सामाजिक व व्यक्तिगत कल्याण के लिये करता है। इनमें पाँच प्रकार के देवता मिलते हैं। पहले प्रकार में पूर्वज जो प्रेत हो गये है, दूसरे ग्रामीण देवता, तीसरे पहाड़ी के देवता, चौथे जंगलों में रहने वाले देवता और पाँचवे ऐसे देवता जो मैदानी भागों में आये पड़ौसियों के हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग अब हिन्दू देवी-देवताओं की भी पूजा करने लगे हैं तथा लगभग हिन्दू धार्मिकता अपना रहे हैं।
3. **सामाजिक स्थिति-** बुक्सा समुदाय की भी सबसे छोटी इकाई परिवार ही है, जिसका प्रमुख घर का बड़ा होता है। कई परिवार मिल कर एक गाँव या मंझरा बनाते है। ग्रामीण संगठन का केन्द्र बिन्दु प्रधान होता है वह किसी को भी गाँव से निकाल सकता है। वह धार्मिक दृष्टि से भी गाँव का नेता होता है। गाँव के आपसी झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करता है। सामुहिक भोजों, पंचायतों का वह सम्पूर्ण गाँव का प्रतिनिधित्व करता है। समाज सुचारू रूप से चले, इसलिये सामाजिक कानून भी बनाये जाते है। इनके विरूद्ध आचरण करने वालों को दण्ड दिया जाता है। विधान के लिए परम्परागत न्यायलय क्रियान्वित किया जाता है जिसके समस्त सदस्य प्रधान की तरह जन्मजात व परम्परागत होते है।

   बुक्सा परिवार पितृ सत्तात्मक होता है। इनमें एक-विवाह व बहु-विवाह दोनों ही प्रचलित है। कभी-कभी एक दूसरे प्रकार की भी व्यवस्था पायी जाती है, वह है- पितृवंशीय-मातृस्थानी परिवार। इसमें स्त्री पति के घर न जाकर पिता के घर में ही रहती है। वंश परम्परा इनमें पति के नाम से चलती है तथा सम्पत्ति हस्तान्तरण पत्नी के नाम से होता है। मरणोपरान्त सम्पत्ति का मालिक पुत्र न होकर पुत्री होती है।
4. **व्यवसाय और आर्थिक स्थिति-** कृषि बुक्साओं की आजीविका का प्रमुख साधन रहा है। लगभग 90 प्रतिशत बुक्सा खेती करते हैं। बुक्साओं को बढ़ईगिरी और लुहारगिरी की भी जानकारी है, किन्तु इसका उपयोग के रोजी-रोटी कमाने के लिए नहीं करते हैं। मछली पकड़ने का सामान थारुओं के घर-घर में पाया जाता है। वे अकेले ही नहीं सामुहिक तौर पर मछली पकड़ने का काम करते हैं।

   बुक्सा महिलाएं अपने पुरुषों की सभी आर्थिक गतिविधियों में मदद करती हैं। विशेषतया खेती में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। खेती में हल पुरुष ही चलाते हैं, लेकिन बोआई और निराई महिलाओं द्वारा की जाती है। फसल की कटाई और मड़ाई लगभग महिलाओं का दायित्व है। थारु महिलाएं हस्तशिल्प में भी दक्ष होती हैं। वे हाथ के पंखे व टोकरियां बनाती हैं। वे जंगली घास की चटाइयां बनाती हैं और मिट्टी के बर्तन भी बनाती हैं।

10.2.3 जौनसारी जनजाति

देहरादून जनपद के चकराता एवं कालसी विकासखण्डों के पर्वतीय भागों में रहने वाली जौनसारी जनजाति के लोग पांडवों को अपना पूर्वज मानते हैं। जौनसारी जनजाति स्तरीकृत है। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** जौनसारी जनजाति अपने विवाह के प्रकार के कारण विशेष चर्चित रही है। जौनसारियों में भ्रात-बहुपति विवाह प्रचलित है। सामाजिक विधान के अनुसार 'किसी भी अनुज को अपने लिये पृथक

या अतिरिक्त पत्नी से विवाह की आज्ञा नहीं हैं।' अतः केवल भाईयों में अग्रज ही विवाह करता है। उसकी पत्नी या समस्त पत्नियां अग्रज की, अनुज की वैधनिक पत्नियां होती हैं। यदि अग्रज के विवाह के समय सबसे छोटा अनुज बच्चा है या उसका जन्म अग्रज के विवाह के पश्चात हुआ है तो सबसे छोटे अनुज की युवावस्था आने पर अग्रज को, छोटे अनुज की हम उम्र की लड़की से विवाह करना होगा। यह लड़की अग्रज की पहली पत्नी की बहन भी हो सकती है, यद्यपि सबसे छोटा अनुज सबसे बड़े अग्रज की पत्नी का भी पति होगा। इस प्रकार के विवाह को प्रो0 डी0 एन0 मजूमदार ने 'बहुपत्नी, बहुपति विवाह' कहा है।

बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह के कारण परिवार का सन्तुलन स्थायी एवं दृढ़ रहता है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति तथा कृषि योग्य भूमि की कमी, परिवार की सीमित आय, कठोर जीवन यापन में एकांकी परिवार का पालन पोषण कठिन हो जाता है। इस तरह बहुपत्नी विवाह के कारण सभी भाई मिलकर सुविधा पूर्वक निर्वाह करते हैं।

जौनसारी समाज में विवाह विच्छेद की स्थिति कम पायी जाती है। ये लोग तलाक को 'छूट' कहते हैं। तलाक निम्न कारणों से हो सकता है- ससुराल में पर-पुरूष से समागम करना, बांझपन होना एवं गृहस्थ व कृषि कार्य में परिश्रम न करना। ऐसी अवस्था में पुरूष अपनी स्त्री को मायके भेज देता है और वापस नहीं बुलाता है।

2. **धार्मिक भावना-** ये लोग स्वयं को हिन्दू व पाण्डव का वंशज मानते हैं। इस समुदाय के लोग पांडव तथा कुन्ती की पूजा-अर्चना करते हैं। धर्मिक कृत्यों में परिवार की स्त्रियाँ व पुरूष दोनों ही मिलकर भाग लेते हैं। मेले व उत्सव में साथ मिलकर नाचते-गाते हैं, परन्तु मन्दिर के अन्दर कोल्टा, दस्तकारों की स्त्रियाँ प्रवेश नहीं कर सकती हैं। जौनसारी 'महाषु' को अपना देवता मानते हैं व पाण्डवों में भीम की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त बोध, चालदा, बीजर, आवासी, सिलगुरू, काली माँ, दुर्गा माँ की पूजा करते हैं। कोल्टा लोग नरसिंह भगवान के नाम पर बकरे की बलि चढ़ाते हैं। जादू-टोने में विश्वास करते हैं। जादू-टोना करने वाले को 'बाकी' कहते हैं। मुख्य पर्व 'बिस्सु' जो वैशाख माह में, जागरा- श्रावण माह में तथा दीपावली मनाते हैं। ये लोग दीपावली सामान्य दीपावली से एक माह बाद मनाते हैं । इसे 'हलियत' कहा जाता है। इसमें 5-6 स्त्री-पुरूष साथ-साथ नृत्य करते हैं।
3. **सामाजिक स्थिति-** जौनसारी प्रमुख रूप से तीन सामाजिक स्तरों में विभक्त हैं जो जन्म पर आधरित होने के कारण स्थिर हैं। जैसे- उच्च स्तर, मध्य स्तर और निम्न स्तर।

- उच्च स्तर- सर्वप्रथम ब्राह्मणों एवं राजपूतों का स्तर है जो कि परम्परागत भूमि का स्वामी के साथ-साथ कृषक भी है। सामाजिक स्तर में ब्राह्मणों एवं राजपूतों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सवर्ण वर्ग के प्रतिनिधित्व के कारण ये लोग आपस में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। इनकी जनसंख्या अन्य दो स्तरों की अपेक्षाकृत अधिक है।
- मध्य स्तर- सामाजिक स्तर के मध्य में दस्तकारों का प्रतिनिधित्व है। इसमें सुनार; स्वर्णकार, लोहार, काष्ठकार, नाथ एवं बाजगी का स्थान आता है। ये सभी आपस में ऊँच-नीच का भेदभाव रखते हैं। अधिकांशतया लोग भूमिहीन है। ये सवर्णों का दासत्व स्वीकार किये हुये हैं। चूंकि ये विवाह एवं उत्सव में बाजा बजाने का कार्य करते हैं। इस कारण इन्हें 'बाजगी' कहा गया है।
- निम्न स्तर- सामाजिक स्तरीकरण में सबसे निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व डोम, मोची या चमार करते हैं। इन्हें 'कोल्टा' कहा गया है। सबसे निम्न डोम हैं। कोल्टा अछूत, परम्परागत, भूमिहीन

श्रमिक, सवर्ण वर्ग अर्थात् प्रथम सामाजिक श्रेणी की दासता स्वीकार वर्ग में आते हैं। कोल्टा जौनसारी के प्रत्येक ग्रामों में निवास करते हैं।

4. **व्यवसाय एवमं आर्थिक स्थिति-** जौनसारी अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधरित है। स्त्री-पुरूष दोनों ही लोग कृषि कार्य में बराबर का श्रम करते हैं। इनकी कृषि पशु शक्ति पर आधरित होती है। कृषि फसल में गेहूँ, धान, मक्का, अदरक, चौलाई एवं हल्दी का उत्पादन करते हैं।

10.2.4 भोटिया जनजाति

कुमाऊँ में अत्यधिक ऊँचाई में रहने वाले इस समुदाय के लोगों को भोटिया या शौका नाम से जाना जाता है। भोटिया जितने व्यवसाय कुशल रहे हैं, उतने ही परिश्रमी तथा स्वस्थ भी। कुमाऊँ का यह हिमालयी क्षेत्र भोटियों की भूमि है और इसी कारण इसे भोटांचल भी कहा जाता है। इस इलाके को 'भोटिया महाल' भी कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने इस प्रदेश को भोटान्त प्रदेश तथा स्वामी प्रणवानन्द ने इसे 'भोटा-प्रान्त' कहा है। कुमाऊँ के अलावा भोटिया लोग गढ़वाल तथा पश्चिमी नेपाल में भी बसते हैं। तिब्बत व नेपाल से लगे तीन हजार से बाहर हजार फीट की ऊँचाई पर भोटिया जनजाति निवास करती है। कुमाऊँ के जनपद पिथौरागढ़ की धारचूला तहसील के दारमा, व्यांस, चौदास घाटियों में ये लोग सदियों से निवास करते आ रहे हैं। चौंदास, व्यांस तथा काली नदी घाटी में अवस्थित अनेक भोटिया ग्रामों की पट्टियाँ हैं, जबकि धारचूला के उत्तर में धौली नदी घाटी को दारमा घाटी भी कहा जाता है। इस घाटी में निवास करने वाले भोटिया समूह को 'दारमी' कहा जाता है। चौदास, व्यांस व दारमा घाटी के भोटिया लोग अपने आपको 'रं' बताते हैं। यूरोपीय लेखक क्रूक (सन् 1897), एटकिन्सन (सन् 1882) तथा वॉल्टन (सन्1928) ने सर्वप्रथम 'शौका' नाम के लिये 'भोटिया' शब्द का प्रयोग किया। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** भोटिया जनजाति अपने विशेष रीति-रिवाज के लिये विशेष रुप से जाने जाते हैं, लेकिन वर्तमान में तेजी से विकास गति के कारण इनमें भी परिवर्तन आया है। पुरुष व स्त्रियाँ अपने रंग-बिरंगे परिधानों को त्याग कर कमीज, पैंट और कोट पहनने लगे हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाऊज आदि पहनने लगी हैं। भोटियों के परम्परागत परिधान अत्यन्त गरम व ऊनी कपड़े होने के कारण नीचे आने वाले भोटिया समुदाय के लोग इन्हें त्याग रहे हैं।

   भोटियों में हरण-विवाह की परम्परा भी अब कम देखने को मिलती है। भोटियों के केवल वे माता-पिता जो आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं है, अपनी पुत्रियों के होने वाले पति द्वारा अपहृत किये जाने के लिये अपनी सहमति दे देते हैं और खुद भी इस योजना में शामिल होते हैं। लेकिन इनके अब शहरों की ओर आ जाने तथा ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों पर अधिक होने, निरन्तर विकास की प्रक्रिया हर गाँव, हर क्षेत्र में होने के कारण ये अपनी पुरानी अनूठी परम्पराओं को छोड़ते जा रहे हैं। अब इनमें विवाह माता-पिता के समझौते के आधार पर होते हैं। विवाह से पूर्व कन्याओं से भी उनकी इच्छायें जानी जाती हैं, परन्तु यह मात्र औपचारिक होता है। पहले वैदिक विधि से विवाह कराने के लिये ब्राह्मणों का योगदान लेते हैं।

   मृत्यु के समय के कृत्यों में भी परिवर्तन आ चुका है और परम्परागत क्रिया को आज भोटियों ने पूर्णतः त्याग दिया है। ''पुराने दौर में किसी भोटिया की घर से बाहर मृत्यु हो जाने पर उसके रिस्ते-नातेदार दिवंगत की आत्मा को उसके मृत्यु स्थान से लेकर घर तक ले जाने के लिये रास्ते भर ऊन का तागा गिराते थे। यह प्रथा अब खत्म हो गयी है। इसी प्रकार 'डूडिंग' या 'गोऊन' जो कि एक खर्चीली प्रथा थी अब व्यवहार में नहीं है। इस विकसित दौर में अब ये प्रथा लगभग-लगभग समाप्त हो चुकी है।

2. **धार्मिक भावना-** समय के साथ-साथ भोटिया समुदाय में भी परिवर्तन आया है। अब ये लोग हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करने लगे हैं। लेकिन आज भी उन्होंने अपने परम्परागत देवी-देवताओं गविया, नामजु,

न्यूरांग, नरसिंह, सचिरी, कतिपय अन्य देवाताओं की पूजा पारम्परिक तौर से यथावत बनाये रखी है। हालांकि ये हिन्दू त्योहारों को भी मानते हैं। भोटिया समुदाय का एक वर्ग अपने आपको हिन्दू भोटिया कहता है। यह वर्ग हिन्दू आस्था को अपना रहा है तथा कुछ विद्वानों का मत है कि यह अपने परम्परागत धर्म को त्याग रहा है।

3. **सामाजिक स्थिति-** भोटिया समुदाय में समाज में सदस्यों के लिये कुछ निश्चित नियम होते हैं। न्याय, उन नियमों को तोड़ने वालों को दण्ड देता है, इस समुदाय में कानून मुख्यतः अधिकारों एवं कर्तव्यों का योग है। जो परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा प्रचार के आधार पर क्रियाशील है। ये आर्थिक तथा सामाजिक बातों पर एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। समस्याओं के समान होने के कारण जनमत के विभिन्न रूप विकसित नहीं हो पाये हैं। इस समाज में सम्पत्ति का हस्तान्तरण एवं पारिवारिक झगड़े का निपटारा करने के लिये ग्राम पंचायत होती है, जिसका मुखिया ग्राम प्रधान होता है। जो छोटे-छोटे झगड़े स्वयं ही निपटा देता है। अगर वह कोई मामला नहीं निपटा पाता तो पंचायत बुलायी जाती है। कुछ लोग अपनी बात को लेकर न्याय के लिए अदालत में भी जाते हैं।

   विकास के इस दौड़ में भोटिया महिलाओं में भी भारी परिवर्तन आया है। एक बड़े समूह में आज भोटिया कन्यायें व युवतियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं तथा राजकीय व राष्ट्रीय स्तर की सेवाओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। लेकिन आज भी भोटिया महिलाऐं जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं या ग्रामीण परिवेश से बाहर नहीं निकल पायी हैं, शिक्षा से वंचित है, सामाजिक दृष्टिकोण से उनमें परिवर्तन तो आया है, परन्तु शैक्षिक स्तर पर जो क्रान्ति होनी चाहिए थी वह नहीं हो पायी है। भोटिया समुदाय के पुरुषों के शिक्षित होने के कारण कुछ भोटिया महिलायें अपने जीवन साथी को स्वयं चुनने की आजादी को भी खोते जा रही हैं।

4. **व्यवसाय और आर्थिक स्थिति-** तिब्बत तथा भारत पर चीनी आक्रमण, भोटियों में उनके आर्थिक विनाश के अतिरिक्त उनके सामाजिक, राजनैतिक व संस्कृतिक हलचल के लिये परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उत्तरदायी है। तिब्बत से किसी प्रकार का व्यापार व लेने-देने न रह जाने के कारण भोटिया समुदाय को अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये नेय श्रोतों की खोज करनी पड़ी। सीमान्त जिलों में सड़कों तथा अन्य संचार साधनों के विकास ने न केवल नीचे आकर बसने की सुविधा दी, बल्कि इनसे परम्परागत बाजारों में वृद्धि और विकास भी हुआ। साथ ही नये-नये प्रकार की हस्तकला के धन्धों की उपलब्धि हुयी तथा अधिकाधिक घनिष्ट सम्पर्क व मेल-जोल के अवसर भी प्राप्त हुए।

   भोटिया जो अपने कठोर परिश्रम के लिये प्रसिद्ध हैं। अपने विचारों और तौर-तरीकों में गतिशील रहे हैं। वे आज भी आर्थिक स्थिति को बदलने और मजबूत करने के लिये नये व्यापार के श्रोत खोज रहे हैं।

   भोटिया लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अत्याधिक कठिन परिश्रम एंव संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं। जब तिब्बत से व्यापार था तब ये भोजन व आवश्यक वस्तुएँ वही से प्राप्त कर लेते थे। भारत के तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त होने पर इन्होंने जंगलों को साफ कर खेती का कार्य किया तथा पशुपालन भी शुरू किया। खेती के अलावा घर व गाँव में हथ करघा, चर्खी, शॉल, पंखी, कालीन, कम्बल, कोट का कपड़ा, मफलर इत्यादि भी बनाते हैं और इनको मैदानी क्षेत्रों में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करते हैं। ये लोग इन वस्तुओं को बनाने में भेड़-बकरी के ऊन का प्रयोग करते हैं। लेकिन आज इनकी स्थिति में सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन आ चुका है।

10.2.5 राजी (वन रावत)

उत्तराखण्ड के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ व चंम्पावत के उपहिमालय क्षेत्र की एक अल्पज्ञात 'बनरौत' जिन्हें प्रायः 'राजी' या 'वन रावत' नाम से जाना है आज भी विकास की इस दौड़ में बहुत पीछे है।

इन अनुसूचित जनजातियों में भी नितान्त आदिम स्थिति में रहने वाली राजि जनजाति को सन् 1975 में आदिम जनजाति घोषित किया गया। भारत में ऐसे आदिम समूहों की संख्या 74 है। 'राजि' का अर्थ जंगलों में रहने वालों के सन्दर्भ में किया जाता है। आज भी यह शुद्ध आखेटजीवी, कन्दमूल बटोरने वाली अल्पसंख्यक आदिवासी जनजाति है, जो कि पूर्वी उत्तराखण्ड तथा पश्चिमी नेपाल में निवास करती है। विद्वानों ने इनको अनुवांशिकी की दृष्टि से मंगोलाइट मुख-मुद्रा और शारीरिक गठन के आधार पर तिब्बती-वर्मा परिवार की आदिम शाखा किरातों से जोड़ा है। अनुमान है कि यह जनजाति हजारों वर्ष पूर्व पूर्वोत्तर में स्थित वर्मा की पहाड़ियों से होकर आखेट की तलाश में भटकते हुए यहाँ पहुँची। राजि मूलतः प्रकृति पूजक हैं। इनका निवास स्थान सदैव से प्रकृति निर्मित गुफायें (उड़यार) रहे हैं, किन्तु आज सरकार द्वारा इनके भवन निर्माण एवं कृषि भूमि हेतु प्रयास किये जाने से ये निश्चित जगहों पर मकानों में रहने लगे हैं। वर्तमान में समस्त राजि ग्रामों की संख्या 10 है, जिनमें पिथौरागढ़ जनपद में 09 ग्राम एवं चम्पावत जनपद में 01 ग्राम है। आईये इस जनजाति के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. **रीति-रिवाज-** राजि जनजाति में विवाह तथा जीवन साथी चुनने के तरीके अपने आप में भिन्न हैं। वे सामुदायिक अन्तः विवाह, धड़ा व ग्राम बहिर्विवाह का नियम पालन कठोरता के साथ करते हैं। मुख्य रूप में यह पितृस्थानीय समुदाय है, लेकिन फिर भी लड़के को लड़की के घर में ही रहने का रिवाज भी इनमें है तथा लड़की का पति ही उसके पिता (लड़की के) की सम्पत्ति का मालिक बन जाता है। इनमें विवाह में कोई धार्मिक संस्कार नहीं होते हैं। यह दो परिवारों के बीच एक समझौता होता है। लेकिन अब राजि लोग भी पंडितों को बुलाकर विवाह को धार्मिक संस्कार के साथ करने लगे हैं। ये लोग जनेऊ संस्कार भी करते हैं। राजि जनजाति में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर पहले यह प्रथा थी कि मृत्यु के उपरान्त परिवार के सदस्य उस झोपड़ी या घर की छत को खोल कर वहाँ से चले जाते थे। वर्तमान में एसा नहीं है। वर्तमान में ''दाह संस्कार'' सम्पन्न किया जाता है। यदि मृतक अविवाहित हो तो उसे जमीन में गाड़ देते है। मृतक के श्राद्ध आदि कर्म करने की प्रथा इसमें नहीं है।
2. **धार्मिक भावना-** बनरौतों या राजियों में गोत्र या गोत्र चिन्ह जैसी अवधारण का अस्तित्व नहीं है। तथापि धार्मिक आधार पर वे हिन्दू तथा जाति में अपने आपको 'रजवार (चन्द्र)' अर्थात् राजपूत मानते हैं। जब कोई व्यक्ति बीमार होता है तो देवता या जंगल के प्रेत आत्माओं व भूत आदि की पूजा करते हैं, लेकिन कभी भी उनके सम्मान में मन्दिर नहीं बनाते। इनके अपने विशिष्ट देवी-देवता होते हैं, लेकिन इसके साथ-साथ वे हिन्दूओं और कुमाऊँ वासियों तथा वास्तव में हिमालयी अंचल के निवासियों की भाँति स्थानीय देवी-देवताओं, प्रेतात्माओं तथा अदृश्य एवं प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते हैं। राजियों में आज भी मलैनाथ, गणैनाथ, सैम(समजी), मलिकार्जुन(मलकाजन), हुरमल आदि देवताओं की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त ये हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा करते हैं।
3. **सामाजिक स्थिति-** राजि समाज में पुरुष प्रधानता दिखती है। पारिवारिक निर्णयों व आर्थिक मामलों में पुरुषों और घर के प्रमुख के निर्णय ही स्वीकार्य होते हैं। ऐसा नहीं है कि पारिवारिक मामलों में महिलाओं की राय नहीं ली जाती है। समाज की मुख्य धारा से जुड़ने के कारण इस जनजाति की सामाजिक स्थिति में भी बदलाव आया है। महिलाओं की पारिवारिक मामलों में भागीदारी बढ़ी है। पारिवारिक निर्णयों के साथ-साथ अब महिलाएं घर के आर्थिक मामलों में भी अहम भूमिका निभा रही हैं। महिलाएं मुख्यतः मजदूरी करके ही घर के खर्चे को चलाती हैं, लेकिन राजि महिलाएं स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ जुड़ कर

स्वयं सहायता समुहों के माध्यम से बचत कर रही हैं और परिवार की आर्थिक गतिविधियों में अहम भूमिका निभा रही हैं। राजि पुरुषों द्वारा मदिरा का अधिक मात्रा में सेवन व गिरते स्वास्थ्य के कारण परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी का बोझ महिलाओं पर आ गया है। ऐसा नहीं है कि महिलाएं रोगग्रस्त नहीं हैं, परन्तु वे कठिन शारीरिक श्रम करने के लिए मजबुर हैं। सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियों में पुरुष व महिलाएं बराबर की भागीदारी करती हैं। प्राथमिक स्तर की शिक्षा लगभग सभी राजि ग्रहण कर रहे हैं। मुख्य धारा में जुड़ने के कारण इस जनजाति का बाहरी समाज के साथ एक संतुलित तालमेल बना है।

4. **व्यवसाय व आर्थिक स्थिति-** राजी आर्थिक रूप से आखेट एवं वन संग्राहक जनजाति है जो पहले ''अदृश्य व्यापार'' अर्थात् पारस्परिक विश्वास एवं भरोसे पर निकट के व्यापार करते थे। कृषि पर निर्भरता न होने के कारण ये पशु-पक्षी का शिकार करके भी भोजन समस्या का निराकरण करते थे। जलवायु सम्बन्धित दशाओं का नितान्त अभाव होने के कारण कृषि व्यवसाय का तरीका अब भी आदिम अवस्था के समरूप है। इसलिये भूमि होते हुये भी ये कृषि का कार्य सफलतम रूप में नहीं कर पाते और जमीन बंजर ही पड़ी रहती है। अब धीरे-धीरे ये लोग गाय, भैंस आदि जानवर भी पालने लगे हैं। ये गाय का पालन बैल (बडड़ा) प्राप्त करने के लिये अधिक करते हैं, क्योकि ये बैलों से खेत जोतते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बचे कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी करते है।

   राजियों की अर्थव्यवस्था में प्रमुख दैनिक मजदुरी और लकड़ियों का कारोबार, जिसमें इमारती लकड़ी से लेकर दैनिक उपयोग में आने वाली लकड़ी है। कृषि कार्य के उपकरण भी ये लोग बड़ी कलात्मकता के साथ बनाते है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के तहत् अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है?
2. जौनसारी जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। सही/गलत
3. कौन सी जनजाति अपने को पांडव का वंशज मानती है?
   क. थारु   ख. बुक्सा   ग. जौनसारी   घ. भोटिया
4. किस नदी घाटी क्षेत्र को दारमा घाटी कहा जाता है?
5. उत्तराखण्ड की किस जनजाति के प्राकृतिक आवास गुफाएं (उडियार) हैं?
   क. थारु   ख. भोटिया   ग. राजि   घ. जौनसारी

10.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं

भारत एक ग्राम प्रधान देश है। इसकी समृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि पर निर्भर है। सम्भवतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तभी हो सकता है जब राष्ट्रीय स्तर पर गाँवों में समाज सुधार तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जाय।

जनजातीय क्षेत्रों में समाज सुधार तथा कल्याण के कार्यक्रमों की सफलता राजकीय सहायता और प्रशासनिक योजनाओं पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि इन क्षेत्रों में ऐसे लोग कल्याणकारी कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आम व्यक्ति को उस ओर प्रेरित करना जरूरी होता है, इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें ऐसे कार्यक्रमों के लाभ ओर दूरगामी परिणामों से अवगत कराया जाय। लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन के लिए सरकारी मशीनरी पूरी तौर से सक्षम नहीं हो सकती। इसके लिए क्षेत्र के सक्षम व्यक्तियों में सेवाभावों को उत्पन्न कराना आवश्यक होता है। जनजाति समाज के लोक कल्याणकारी और समाज सुधार कार्यों की सफलता में

अभिजन वर्ग की भूमिका निर्णायक होती है। जनजातीय क्षेत्र में चलाये जाने वाले समाज सुधार के कार्यक्रम, प्रायः वहाँ की परम्पराओं और रूढ़ियों के विपरीत होते है। अतः ऐसे किसी भी कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक हो जाता है कि जनजातीय अभिजन वर्ग को विश्वास में लिया जाय। जनजातीय विकास हेतु योजनाओं के सम्बन्ध में जानने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का अध्ययन करते हैं-

10.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनाएं

जनजातियों की स्थिति को उभारने के लिये सरकार का ध्यान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही इनके विकास की ओर केन्द्रित हो गया था। देश की समस्त जनजातियों के राष्ट्र की मुख्यधारा से न जुड़ पाने के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में इनके कल्याण हेतु कार्यक्रम बनाये गये। पहली पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पिछड़े वर्गों का एक क्षेत्र शामिल किया गया था। उस समय यह सोचा गया था कि सामान्य विकास कार्यक्रमों को इस प्रकार से बनाया जाय ताकि वे पिछड़े वर्गों की जरूरतों का ध्यान रख सकें और पिछड़े वर्गों के लिये विशेष प्रावधान संवर्धनकारी हो और इनका उपयोग जहाँ तक सम्भव हो, इन वर्गों के विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिये किया जा सके। इस सन्दर्भ में अनुसूचित जातियों के लिये पांचवी योजना के दौरान आदिवासी उपयोजना और छठी योजना में विशेष घटक योजना शुरू की गयी, ताकि अनुसूचित जनजातियों के लाभ के लिये विकास कार्यक्रमों को सरल बनाया जा सके और उसकी निगरानी की जा सके।

10.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिये जनजातियों के मेट्रिकोत्तर(हाई स्कूल से आगे) शिक्षा के मौजूदा कार्यक्रम को भी जारी रखा गया। आवासीय स्कूलों, जिनमें आश्रम पद्वति स्कूल भी शामिल हैं, का विस्तार किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत जनजातीय क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल खोलने को भी प्राथमिकता दी गयी। अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण को भी ध्यान में रखा गया और उसके अनुसार ही प्रारम्भिक अवस्था पाठ्यक्रमों का विकास किया गया तथा जनजातीय भाषाओं में प्रशिक्षण तैयार किया गया। प्राथमिकता के आधार पर जनजाति क्षेत्रों में आँगनवाड़ियों, औपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गयी। इसके अतिरिक्त, शिक्षा के सभी चरणों पर पाठ्यक्रमों को इस तरह बनाया गया ताकि जनजाति लोगों की समृद्ध साँस्कृतिक पहचान और उनकी विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के प्रति उनमें जागरूकता पैदा हो सके।

अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में लघु वन उत्पाद पर एक नई नीति बनायी गयी। इस उद्देश्य के लिये क्षेत्र में सहकारी ढ़ाँचे को उपयुक्त रूप से पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित किया गया तथा जनजातियों हेतु विभिन्न व्यवसायिक समूहों के लिये सहकारी समितियाँ बनायी गई। उनमें प्रशिक्षण तथा उद्यमशीलता के विकास के माध्यम से अनिवार्य उत्पादक तथा प्रबंधकीय कौशल का विकास किया गया, जिससे इनमें स्व-रोजगार की प्रवृत्ति बढ़ी है। उपभोग तथा उत्पादन के प्रयोजन हेतु ऋण प्राप्ति के लिये सीमित पहुँच का परिणाम यह हुआ कि जनजातियों को साहूकारों/व्यापारियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप साहुकारों तथा व्यापारियों के ऋणों को चुकाने के लिये विकास के लाभों का सीमित हो जाना व भूमि तथा अन्य सम्पत्तियों के रूप में संसाधन आधार का नुकसान होना है। आठवीं योजना में एक आवश्यक लक्ष्य यह रख गया था कि बैंकों तथा सहकारी संस्थानों द्वारा अधिक ऋण उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त करना। आदिम आदिवासी समूहों के लिये जहाँ सम्भव है, परिवार को एकक के रूप में लेते हुए उनके आर्थिक विकास के लिये विस्तृत योजनाएं बनायी गयी। आन्तरिक संरचना तथा विकासीय आवश्यकताओं की विशेष रूप से पहचान की गयी तथा एकीकृत योजना का विकास किया गया। इसके अतिरिक्त वे वन-गाँव, जिनकी संख्या लगभग 5000 है और जिनमें 2 लाख से भी अधिक

आदिवासी/जनजाति लोग रहते हैं, और बड़ी संख्या में सामान्य लाभ से वंचित रहते हैं, कृषि मंत्रालय ने मार्च, 1984 से भी अधिक वर्षों से है। दीर्घ अवधि, जैसे 15 से 20 वर्षों तक वंशागत किन्तु हस्तान्तरण योग्य अधिकार देने का सुझाव दिया था।

10.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासोन्मुख योजनाएं

केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिये अनेकों योजनाएं चल रही है। सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं में जनजातियों के चहुमुखी विकास का लक्ष्य रखा गया है। इनके आर्थिक विकास के लिये अनेकों ऐसी व्यवसायिक योजनाएं चालाई गयी, जिससे इनका आर्थिक उत्थान हो सके। आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण से सरकार ने इनके पारम्परिक व्यवसाय में ही आधुनिकीकरण करके इनको आर्थिक रूप से समृद्ध करने का प्रयास किया है। कुमाऊँ की भौगोलिक स्थिति के आधार पर यहाँ की जनजातियों को उनके अनुरूप ही योजना बना कर उनके विकास का लक्ष्य रखा। कुमाऊँ की प्राकृतिक सम्पदा से निर्मित वस्तुओं के उचित खरीद के लिये सरकार ने बाजारों में जनजाति के द्वारा बनाये माल के लिए बाजार निर्मित किये गये हैं। इन बाजारों में इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचा जाता है और उत्पन्न आय से पुनः इन जनजातियों हेतु कच्चा माल खरीदा जाता है। इस क्रम के चलते इनमें आर्थिक विकास तो निश्चित तौर पर होता ही है, साथ ही वर्तमान स्थितियों की समझ भी उत्पन्न होती है। कुमाऊँ के उत्तर में रह रही भोटिया जनजाति में इनके परम्परागत व्यवसाय को देखते हुए इनके लिये ऊन वृहत योजना, रामबाँस योजना, पश्मिना उत्पादन परियोजना, तिब्बतीयन ऊन वृहत उद्योग योजना का संचालन किया है, जिसके तहत इनको ऊन और अन्य कच्चा माल दिया जाता है तथा इस कच्चे माल से ये जनजाति अपने परम्परागत शैली में दक्ष बनाते हैं और फिर इन्हें बाजार में बेचने हेतु लाया जाता है।

कुमाऊँ के तराई में रह रही थारू तथा बोक्सा जनजाति के लिये उनके भिन्न भौगालिक परिवेश को देखते हुए सरकार द्वारा योजनाएं बनायी गयी हैं, जैसे- डवाकरा, डनलप कार्ड, लघु उद्योग हेतु ऋण, डेरी खोलना एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्राप्त कच्चे माल से वस्तुऐं निर्मित करना इत्यादि। कई जनजाति परिवार इन सरकारी योजनाओं से लाभान्वित भी हुए हैं। कुमाऊँ की सर्वाधिक पिछड़ी जनजाति राजी आज भी विकास की धारा से बिल्कुल परे है तथा इन्हें योजनाओं की अधिक जानकारी भी नहीं है।

10.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

चाहे सरकारें जो भी रही हों, ज्ञात जनजातीय समाज के लिए प्रशासनिक तंत्र की व्यवस्था हर सरकार ने की है। आईये भारत की आजादी से पूर्व अंग्रजी शासन ने और आजादी के बाद भारतीय शासन ने जनजातीय विकास हेतु किस प्रकार के प्रशासनिक तंत्र का विकास किया, इसके सम्बन्ध में विस्तार से जानते हैं-

10.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र

अंग्रेज शासकों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए जनजातियों को लेकर काल्पनिक बातों और अंधविश्वासों को फैलाना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों ने पूर्ण प्रयास किया कि आदिवासी समुदाय शेष भारतीय जनसमूह के सम्पर्क में न रहे। इसका कारण जनजातियों की शक्ति व क्षमता थी, जो कि किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकती थी। इस कारण प्रारम्भ में ब्रिटिश प्रशासक और ईसाई मिशनरियां ही जनजातीय क्षेत्रों का भ्रमण कर सकते थे।

भारत में साम्राज्य के सुदृढीकरण के अपने प्रयासों में अंग्रेजों का मुकाबला राजमहल की पहाड़ियों (बंगाल) में रहने वाले ‘पहाड़िया’ जनजाति से भी हुआ। यह जनजाति आक्रामक प्रवृत्ति की थी और हिन्दू जमींदारों के विरूद्ध

आक्रामक नीति का अनुसरण किया, किन्तु शीघ्र ही आक्रमक नीति का परित्याग करके कूटनीति का सहारा लिया गया, जिसमें जनजाति के मुखियाओं को सभी प्रकार के उपद्रवों की सूचना देने का उत्तरदायित्व दिया गया।

शोषण की शिकार कुछ जनजातियों ने भी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ विद्रोह किए, इनमें सन् 1931 में सिंहभूमि का 'हो' विद्रोह, तथा सन् 1855 का प्रसिद्ध ''संथाल विद्रोह' प्रमुख हैं। जनजातियों के इन विद्रोहों के पिछे कारण था, उनका आर्थिक एंव सामाजिक शोषण। ऐसी स्थितियों में ब्रिटिश सरकार ने अलग-थलग पड़े जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया। अन्ततः अंग्रेजी सरकार ने जनजातियों के जीवन तथा रूचियों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हें विशेष क्षेत्रों में विभाजित करने की नीति निर्धारित की। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1874 में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा जनजातीय क्षेत्रों को अनुसूचित जिलों के रूप में विभाजित किया गया। भारत सरकार के अधिनियम- 1919 की धारा- 52 'ए' के अन्तर्गत यह क्षेत्र पुनः संघटित किए गए। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया जो दीवानी, फौजदारी मामलों में न्याय, सार्वजनिक राजस्व वसूली, कर निर्धारण तथा किराये से सम्बन्धित सभी विषयों की देख-रेख करें तथा अनुसूचित जिले का प्रशासन भी संभाले। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में उचित प्रतिबन्धों तथा परिवर्तनों के साथ अधिकारियों के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि करने का भी प्रावधान था। इस प्रकार सरल आदेशों द्वारा अधिशासियों को बड़े तथा विस्तृत अधिकार दिए गए। स्वतंत्रता आन्दोलन की गति के साथ-साथ अंग्रेज शासकों की चिन्ताएं भी बढ़ने लगी। वे जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक रखना चाहते थे। भारतीय वैधानिक कमीशन (साइमन कमीशन) ने सलाह दी थी कि वित्तीय तथा संवैधानिक आधारों पर जनजातीय क्षेत्रों का उत्तरदायित्व केन्द्र पर होना चाहिए। सन् 1935 में जनजातियों पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से बनाए गए प्रावधान के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों को पूर्ण व आंशिक रूप से अलग क्षेत्रों में परिवर्तित किया गया।

उत्तराखण्ड के तराई-भाबर क्षेत्रों में वनों के भीतर रहने वाली थारू और बुक्सा जनजाति स्वभाव से ही सीधी-सादी और सरल स्वभाव की थी। उनमें न तो अन्य जनजातियों के समान आक्रामकता थी न ही वे अपने क्षेत्र में बाहरी हस्तक्षेप व शोषण के विरूद्ध संगठित होकर खड़े हुए। फलस्वरूप अंग्रेज प्रशासकों द्वारा उनकी घोर उपेक्षा प्रारम्भ हो गई। तराई-भाबर में उनकी भूमि पर बाहरी लोगों को बसाया गया और उनके द्वारा बड़े पैमाने पर यहां पर कृषि कार्य किया जाने लगा, जिस कारण जनजातियों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अपनी आजीविका के लिए जनजातियों को बाहरी लोगों के यहाँ मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक समय जिस घर में उनकी भूमिका स्वामी की थी, वहीं पर वे सेवक की भूमिका निभाने के लिए बाध्य कर दिए गए थे। तराई-भाबर की इन जनजातियों को यदि अपने मिटने का अहसास होता तो सम्भव है तराई-भाबर का इतिहास जिस रूप में आज हमारे सम्मुख है वह इस रूप में नहीं होता।

10.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनकल्याण की भावना ने पूरे देश में व्यापक रूप से स्थान बनाया और 26 जनवरी 1950 की संविधान सभा में पारित विभिन्न प्रावधानों द्वारा इसकी पुष्टि हुई। इन प्रावधानों से भारतीय जनजातीय जनसंख्या को राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाने के कार्यों को बल मिला। जनजातियों को शेष जनसंख्या के स्तर तक लाने के उद्देश्य से संविधान में इन जनजातियों को 10 वर्षों तक के लिए विशेष सुविधाएं तथा सुरक्षा प्रदान की गई। इस अवधि में समय-समय पर अब तक वृद्धि की जाती रही है। जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के उद्देश्य से सन् 1951 में, जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गई। अनुच्छेद- 244 के अन्तर्गत आसाम के अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन पांचवी अनुसूची तथा आसाम के जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार किया जाना सुनिश्चित किया गया।

राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए राज्यपाल को अधिकार दिया गया कि-

अ- जनजातियों पर लागू होने वाले केन्द्र तथा राज्य के नियमों की विधि में परिवर्तन कर सके।

ब- उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए नियम बनाना, इनके अधिकारों की रक्षा करना, बेकार भूमि के आवंटन में सहायता करना तथा साहूकारों से बचने में उनकी सहायता करना।

इसके अतिरिक्त संविधान में जनजातियों के अधिकारों की सुरक्षा, उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित बनाए रखने के उद्देश्य से भी पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों की रचना दो स्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर की गई थी- पहला उद्देश्य जनजातियों को उनके अधिकारों के प्रयोग में सहायता करना तथा दूसरा उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों के विकास व अनुसूचित जनजातियों की आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रगति में सुधार लाना था।

जनजातीय क्षेत्रों के लिए अनुपयुक्त विधानों की जांच उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए विनियमों की संरचना का कार्य दिया गया। राज्य की सीमाओं में रहने वाली सभी अनुसूचित जनजातियों के कल्याण तथा विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करने का उत्तरदायित्व भी राज्य सरकार का है और राज्य सरकारों के लिए अतिरिक्त धनराशि प्रदान करने का उत्तरादायित्व केन्द्र सरकार का है। किसी भी योजना को लागू करने के सम्बन्ध में राज्य सरकार को निर्देश देने तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बद्ध प्राथमिकताओं की सूची बनाने में राज्य सरकार का मार्गदर्शन करने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न-2

1. उत्तराखण्ड की सबसे पिछड़ी जनजाति कौन सी है?
2. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सन् 1855 का प्रसिद्ध जनजाति विद्रोह कौन सा है?
3. जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गयी?

   क. सन् 1951 ख. सन् 1955 ग. सन् 1960 घ. सन् 1965

10.5 सारांश

जनजातीय समाज अपनी अनुठी परम्परा और अपने प्राकृतिक आवासों अपनी अमुल्य संस्कृति, अपनी भाषा के लिए जानी जाती हैं। जनजातीय समाज की अपनी एक अलग पहचान है। किन्तु सभ्य समाज और विकास की धारा से जुड़ने के कारण आज जनजातियां आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयासरत हैं। उत्तराखण्ड राज्य में पांच प्रकार की जनजातियां हैं। इनमें से राजि(वनरावत) और बुक्सा जनजातियों की गिनती पिछड़ी जनजातियों के रुप में की जाती है। आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक रुप से पिछड़ी ये जनजातियां आज विकास की मुख्य धारा में शामिल नहीं है। संविधान के अन्तर्गत किये गये प्रावधानों, विभिन्न सरकारी विकास योजनाओं, जनकल्याणकारी योजनाओं के चलने के उपरान्त भी ये जनजातियां कठिन भौगोलिक क्षेत्रों में निवास के कारण विकास की दौड़ में पिछे हैं। उत्तराखण्ड की अन्य जनजातियां- जौनसारी, भोटिया और थारु समाज की मुख्य धारा से बहुत हद तक जुड़ पाये हैं।

10.6 शब्दावली

सर्वमान्य शक्ति- जो शक्ति सबको मान्य हो, झुम कृषि- इस प्रकार की कृषि में एक स्थान पर कृषि करने के उपरान्त उस स्थान पर आग लगाकर उसे छोड़ दिया जाता है और अन्य स्थान पर जाकर कृषि की जाती है।, पित्र सत्तात्मक- पुरुष प्रधान व्यवस्था, हस्तांतरण- सौंपना, अग्रज- बड़ा, बाजगी- बाजा बजाने वाला, संवर्धनकारी- बढावा देना, सृजनात्मक- रचनात्मक, सामाजिक विधान- सामाजिक नियम-कानून, पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित- दुबारा निर्माण तथा दुबारा शुरु करना, वन गांव- वनों के नजदीक व वनों से घिरे गांव, वहिर्विवाही-

बाहरी समाज के साथ होने वाले विवाह सम्बन्ध, अन्तर्विवाही- अपने ही लोगों के बीच में होने वाले विवाह सम्बन्ध, अदृष्य व्यापार- यह व्यापार उत्तराखण्ड की आदिम जनजाति राजि(वनरावत) और समीप अन्य जाति के गांव के लोगों के बीच एक एसा व्यापार था जो विश्वास और भरोसे पर टिका हुआ था। जिसमें राजि जनजाति अपने द्वारा बनाये गये समान को समीप अन्य जाति के घरों के आगे रख देते थे और उसके बदले में खाने-पीने के अन्य सामान को ले जाते थे। यह व्यापार रात को अंधेरे में ही होता था।

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. अनुच्छेद- 342, **2.** गलत, **3.** ग. जौनसारी, **4.** धौला नदी घाटी क्षेत्र, **5.** ग. राजि

अभ्यास प्रश्न- 2

1. राजि जनजाति, **2.** संथाल विद्रोह, **3.** सन् 1951

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तराई के वन और वनवासी, डॉ0 अजय एस0 रावत।
2. हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण, सुरेन्द्र सिंह बिष्ट।
3. प्रोजेक्ट कार्य- उत्तराखण्ड का संकटग्रस्त आदिम समाज वनराजि, डॉ0 पुष्पेश पाण्डे।
4. जनजातीय विकास- मिथक एवं यथार्थ, नरेश वैद्यय।
5. शोध कार्य- अनुसूचित जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता (कुमाऊँ की जनजातियों के विशेष सन्दर्भ में), डॉ0 भुवन तिवारी।
6. शोध पत्र- ए ट्राईब ऑफ उत्तराखण्ड एप्रोच टू ट्राईबल वैलफेयर, डॉ0 पुष्पेश पाण्डे।

10.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय आदिवासी- उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठ भूमि, एल0 पी0 विद्यार्थी।
2. नैनीताल की बुक्सा जनजाति, बालादत्त दानी।
3. जनजातीय समाज- हरीश चन्द्र उप्रेती।
4. ट्राईब्स ऑफ उत्तरांचल- डॉ0 बी0 एस0 बिष्ट।
5. मध्य हिमालयी जौनसार भाभर ऑचल (कल और आज) 'जौनसारी जनजाति का समग्र अध्ययन, प्रो0 गिरधर सिंह नेगी एवं डॉ0 मुजुल जोशी।

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनजातीय समाज क्या है? उत्तराखण्ड की प्रमुख जनजातियों के विषय में विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. जनजातीय विकास के लिए क्या-क्या योजनाएं है?
3. जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 11 आपदा प्रबन्धन

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 आपदाओं के प्रकार
11.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार
11.2.1.1 ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ
11.2.1.2 वायुमण्डलीय या बहिजति प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ
11.2.1.3 संचयी वायुमण्डलीय प्रकोप/आपदाएँ
11.2.2 मानवजनित आपदाओं के प्रकार
11.3 आपदा प्रबन्धन
11.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन
11.3.2आपदा आने के बाद का प्रबन्धन
11.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप
11.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम
11.6 भारत के सम्बन्ध में आपदा प्रबन्धन
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

सामान्य भाषा में आपदा (Disaster) का अर्थ है, मुसीबत या संकट। पर्यावरण में हुए अचानक, अकल्पनीय बदलावों को जिससे अपार जन-धन की क्षति होती है को पर्यावरणीय प्रकोप कहा जाता है। यद्यपि इन चरम घटनाओं को व्यक्त करने के लिए तीन वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- पर्यावरण प्रकोप (Envirnoment Harzard), पर्यावरण आघात (Environmental Stresses) तथा पर्यावरण विनाश/आपदा (Environmental Disaters) परन्तु वर्तमान में पर्यावरणीय विनाश/आपदा को ही सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयोग किया जाता है।

पर्यावरण प्रकोपों की तीव्रता का आकलन उनके द्वारा की गयी जन-धन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। अतः सभी चरम घटनाएँ सदैव प्रकोप नहीं होती हैं। यह उसी समय प्रकोप या आपदा होती हैं, जब इनके द्वारा मानव समाज को क्षति पहुँचायी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक या मानव जनित चरम घटनाओं को, जिनके द्वारा प्रलय एवं विनाश की स्थिति हो जाती है तथा जन-धन की क्षति होती है, को पर्यावरणीय प्रकोप या विनाश कहते हैं।

UNDRC (United Nations Disaster Relief Coredinator) की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में घटने वाले समस्त प्राकृतिक आपदाओं का 90 प्रतिशत भाग विकासशील देशों या तीसरी दुनियाँ के देशों में घटित होता है, क्योंकि अधिकांश विकासशील देश उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों में स्थित हैं जहाँ, वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा आये दिन कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे- बाढ़, सूखा, वनाग्नि आदि। यद्यपि यह रिपोर्ट पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है, क्योंकि आपदाओं को किसी भी राजनैतिक या आर्थिक सीमा के अन्तर्गत नहीं बाँधा जा सकता है।

M. Hashizume (1989) के अनुसार, विकासशील देश प्रकोपों से प्रायः पीड़ित रहते हैं। वास्तव में वे प्रकोपों के साथ रहते हैं, क्योंकि विकासशील देश आर्थिक विकास की गति को तीव्रता से पाने की होड़ में प्राकृतिक/पर्यावरणीय शक्तियों का आकलन किये बिना ही परियोजनाओं का विस्तार करते जाते हैं।

यद्यपि इन प्राकृतिक व मानवजनित चरम विनाशकारी घटनाओं को पूर्णतया नहीं रोका जा सकता है परन्तु मजबूत सूचना तंत्रों, वैज्ञानिक उपकरणों तथा सुनियोजित योजनाओं के द्वारा इन आपदाओं से होने वाली क्षति को न्यूनतम करने के प्रयास को ही आपदा प्रबन्धन कहा जाता है।

किसी भी प्रबन्धन जिसके लिए प्रबन्धन किया जाता है की विषय वस्तु से अवगत होना आवश्यक होता है। इसी प्रकार आपदा प्रबन्धन हेतु आपदा के स्वरूपों, आपदा के कारणों को जानना तथा उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है ताकि उनका उचित प्रबन्धन किया जा सके।

TORIORDAN (1971) के अनुसार, ''प्रबन्धन का तात्पर्य होता है, विभिन्न वैकल्पिक प्रस्ताव में से उपयुक्त प्रस्तावों का विवेकपूर्ण चयन करना, ताकि वह निर्धारित एवं इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। जहाँ तक सम्भव होता है प्रबंधन के अन्तर्गत अल्पकालिक (Shortterm) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक या कई रणनीतियां अपनायी जाती हैं, किन्तु दीर्घकालीक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी भरपूर व्यवस्था रहती है।''

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आपदा किसे कहते हैं तथा आपदा प्रबन्धन के बारे में समझ सकेंगे।
- आपदा के स्वरूपों के बारे में, उनसे घटित होने वाली धन-जन की हानि के बारे में समझ सकेंगे।
- प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के अन्तर को स्पष्ट कर पायेंगे।
- आपदा-प्रबन्धन के सम्बन्ध में सुस्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

11.2 आपदाओं के प्रकार

उत्पत्ति के कारकों के आधार पर आपदा को दो वर्गों में बाँटा जाता है-

1. प्राकृतिक आपदा।
2. और मानव जनित आपदा।

आपदा के इन प्रकारों के विषय में विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं।

11.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार

निम्न चार्ट द्वारा आपदा के कारकों को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है- ग्रहीय(ग्रहों) प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ और पृथ्व्येत्तर (पृथ्वी या उसके वायु मंडल के बाहर) प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ।

1. ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ- ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ वे आपदाएँ हैं जो पृथ्वी के अन्तरतम् से तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न होती हैं। मुख्यतः ज्वालामुखी, भूकम्प, बड़े पैमाने पर होने वाले भूस्खलन, हिमस्खलन आदि को सम्मिलित किया जाता है।
2. पृथ्व्येत्तर प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ- ये वायुमण्डलीय दशाओं द्वारा जन्म लेती हैं।

11.2.1.1 ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ

अधिकांशतः प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्लेटों के संचलन से होती है और इन प्लेटों का संचलन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न संवहनीय तरंगों के कारण होता है। इन आपदाओं में भूकम्प तथा ज्वालामुखी सर्वाधिक विनाशकारी होते हैं। अतः इन आपदाओं के बारे में विस्तृत रूप से जानना भी आवश्यक है।

1. **भूकम्प-** भूकम्प का आगमन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं में परिवर्तन एवं विवर्तनिक(Tectonic) घटनाओं के कारण होता है। भूकम्प की तीव्रता (Intensity) तथा परिणाम (Magnitude) का मापन रिक्टर मापक (Richter Scale) के आधार पर किया जाता है। भूकम्प की उत्पत्ति के केन्द्र को भूकम्प मूल (Earthquake Origin) कहते हैं। भूकम्प मूल इस तरह सदा धरातलीय सतह के नीचे रहता है। धरातलीय सतह के जिस भाग पर सर्वप्रथम भूकम्पी तरंगों को अंकित किया जाता है, अधिकेन्द्र कहा जाता है।

   भूकम्पों की तीव्रता तथा उसके आपदापन्न प्रभावों का निर्धारण भूकम्पीय तीव्रता के आधार पर नहीं किया जाता है, बल्कि किसी क्षेत्र विशेष में धन-जन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। कोई भूकम्पीय आपदा उस समय अधिक होती है, जब किसी घने आबादी क्षेत्र में भूकम्प आता है।

   कभी-कभी साधारण भूकम्प भी आपदापन्न प्रकोप बन जाता है। जब उसके प्रभाव द्वारा भूस्खलन, बाढ़, आग, सुनामी तरंगों की उत्पत्ति होती है तो ये घटनाएं अपार हानि का कारण बन जाती हैं।
2. **ज्वालामुखी-** ज्वालामुखी भी प्राकृतिक आपदाओं में महत्वपूर्ण है। परन्तु ज्वालामुखी भूकम्प प्रकोप के विपरीत आपदा भी होती है और मानव समाज के लिए वरदान भी। क्योंकि एक तरफ तो ज्वालामुखी के अचानक प्रचण्ड उद्-गार तथा उससे निकलने वाला तृप्त लावा से मानव बस्तियों, कृषि क्षेत्र, मानव सम्पत्ति आदि नष्ट हो जाती है तो दूसरी ओर ज्वालामुखी लावा के कारण उर्वरक मिट्टियों का निर्माण होता है। प्लेट विर्वतनिक सिद्धान्त के आधार पर ज्वालामुखी क्रिया एवं ज्वालामुखी उद्-गार को स्पष्ट समझा जा सकता है।

   ज्वालामुखी उद्-गार प्लेटों के किनारों से पूर्णतया सम्बन्धित है। प्लेटों की सीमाओं, किनारों के प्रकार ज्वालामुखी- उद्-गार की प्रकृति तथा तीव्रता को प्रभावित करते हैं।

   ज्वालामुखी उद्-भेदन से मानव समाज की भारी धन-जन की हानि होती है। विस्फोटक उद्-गार, तप्त लावा के प्रवाह, विखंडित पदार्थों के नीचे गिरने, अग्निकाण्ड, विषाक्त गैसों की उत्पत्ति द्वारा मानवकृत संरचनाओं जैसे- मकानों, कारखानों, रेलों, सड़कों, हवाई अड्डों, बाँधों, जलाशयों, वनों, मानव सम्पत्ति जन्तुओं तथा मानव जीवन की अपार क्षति होती है।

   ज्वालामुखी के समय निकलने वाला तप्त एवं तरल लावे की अपार राशि तीव्र गति से धरातलीय सतह पर प्रवाहित होने से मानवकृत रचनाएँ लावा के नीचे दबकर नष्ट हो जाती हैं।

   कभी-कभी ज्वालामुखियों का उद्-गार इतना अचानक एवं प्रचण्ड होता है कि लोगों को अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर जाने का समय ही नहीं मिल पाता। ज्वालामुखी के उद्-गार के पहले तथा बाद में उत्पन्न भूकम्पों द्वारा जनित सुनामि के कारण तटवर्ती भागों में जान-माल की अपार क्षति होती है।

ज्वालामुखी उद्-गार तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं के कुछ ऐसे परिणाम होते हैं, जिनसे कई प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं-

- जोकुलहलुपस का निर्माण- ज्वालामुखी क्रिया के दौरान तापमान में वृद्धि के कारण हिम चोटियों के नीचे हिम के पिघलने के कारण विशाल जलराशि की स्थिति को श्रवानससीसंनचले कहते हैं। कभी-कभी हिम सतह के नीचे हिम द्रवित जल के आयतन में इतनी वृद्धि हो जाती है तथा उसका दबाव इतना अधिक हो जाता है कि ऊपर स्थित हिम की चादर टूटती है और हिम द्रवित जल तेजी से ऊपर उछलता हुआ बाहर निकलता है जिसकी गति 4.00,000 घन मीटर प्रति सेकिण्ड होती है, जिससे अचानक पर्यावरणीय संकट पैदा हो जाता है।
- ज्वालामुखी धूल तथा जलवायु परिवर्तन- ज्वालामुखी उद्-गार के समय निकलने वाली धूल तथा राख की विशाल मात्रा के वायुमण्डल में पहुँचने पर मौसम तथा जलवायु में प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर परिवर्तन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।
- ज्वालामुखी उद्-गार तथा पारिस्थितिकीय परिवर्तन- वैज्ञानिकों का मानना है कि ज्वालामुखी उद्-गार से निकलने वाले धूल एवं राख के धरातल पर पुनः वापस आने से कुछ जातियाँ का सामूहिक विलोप हो जाता है। इस परिकल्पना के आधार पर कई वैज्ञानिकों का मत है कि आज से 60 मिलियन वर्ष पूर्व डायनासोर का सामूहिक विलय उस समय हुई अत्यधिक ज्वालामुखी क्रिया के कारण हुआ था। इसके अतिरिक्त विशाल लावा-राशि के धरातलीय सतह पर फैलने के कारण वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु नष्ट हो जाते हैं। जिस कारण पारिस्थितिकीय असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

11.2.1.2 वायुमण्डलीय या बहिजति प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ

वायुमण्डलीय आपदाएँ तथा जलवायु की चरम घटनाओं से सम्बन्धित होती है। इन पर्यावरणीय प्राकृतिक प्रकोपों की उत्पत्ति वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा होती है। इन प्रक्रमों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। असामान्य तथा आकस्मिक (घटनाएँ) आपदाएँ इसके अन्तर्गत उष्ण कटिबन्धीय तूफान एवं चक्रवात (टाइफून, हरिफेन, टारनैडो) एवं प्रचण्ड वायुमण्डलीय बिजली व अग्निकाण्ड शामिल हैं ।

1. **उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात-** उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात सर्वाधिक शक्तिशाली विध्वंशक तथा प्राणघातक वायुमण्डलीय चक्रवात होते हैं। इनका औसत व्यास 650 किमी तक होता है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात अपने उच्च वायु वेग 180 से 400 किमी प्रति घंटा, उच्च ज्वारीय तरंग, उच्च जल वर्षा की तीव्रता 2000 मिलीमीटर प्रकृति की अत्यधिक न्यून वायु दाब तथा कई दिन तक स्थायी रहने के कारण प्रचण्ड आपदापन्न प्राकृतिक प्रकोप बन जाते हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की तूफानी जाति वाली हवाओं, मूसलाधार वर्षा तथा सागरीय जल के तटीय स्थलीय भाग पर अतिक्रमण आदि का सफल संचयी प्रभाव इतना अधिक हो जाता है कि ये चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में महाप्रलय उपस्थित कर देते हैं।

   चक्रवातीय प्रकोप से भारत के पूर्वी तथा बांग्लादेश के दक्षिण तटीय भाग अक्सर प्रभावित होते हैं। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात भारत के पूर्वी तटीय भागों को प्रायः दुष्प्रभावित करते हैं। इस भाग में प्रायः 12 से 13 महाविनाशकारी चक्रवात प्रतिवर्ष आते रहते हैं। सन् 1970 से अब तक लाखों लोगों की मृत्यु हो गई है, मकान नष्ट हो गये तथा हजारों हेक्टेयर भूमि बर्बाद हो गयी। मिट्टी के ऊपर नमक की मोटी परत के जमाव के कारण अधिकांश तटीय भाग बंजर हो गया।

2. **हरिकेन-** हरिकेन प्रायः संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी तटवर्ती भागों को प्रभावित करते हैं। हरिकेन से सबसे पीड़ित क्षेत्र लूसियाना, टैक्सास, अलबामा तथा फ्लोरिडा आदि हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की आवृत्ति के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका के लूसियाना प्रान्त में स्थित मिसीसिपी डेल्टा भारत एवं बांग्लादेश के गंगा डेल्टा के समान ही है। परन्तु हरिकेन से होने वाली अपार जन-धन की हानि कम होती है, क्योंकि विकसित देश होने के कारण तकनीकी में भी उन्नत है और चक्रवातों के आगमन की अग्रिम सूचना समय पर दे दी जाती है और लोग भारी आपदा सामना करने के लिए सावधान हो जाते हैं।
3. **टारनैडो-** मुख्य रूप से दक्षिणी एवं पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रभावित करते हैं। स्थानीय प्रचण्ड तथा विनाशकारी तूफानों में टारनैडो सबसे छोटे होते हैं। परन्तु मानव जीवन एवं सम्पत्ति की दृष्टि से सर्वाधिक घातक तथा खतरनाक होते हैं।
   सामान्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में टरनैडो द्वारा प्रतिवर्ष 100 मिलियन डालर मूल्य की सम्पत्ति तथा 450 व्यक्तियों की मृत्यु होती है। टारनैडो का सर्वाधिक घातक भाग उसके साथ चलने वाले टारनैडो प्रक्षेपास्त्र ,टारनैडो की गति के कारण पेड़ उखड़ जाते हैं तथा भवनों की लोहे तथा चादरों की बनी छतें उखड़ जाती हैं। ये वस्तुएँ टारनैडो के साथ उसकी प्रचण्ड गति के कारण हवा के साथ तीव्र गति से उड़ती हुई चलती है (इन्हें टारनैडो मिसाइल कहते हैं।) और मानव जीवन को अपार क्षति पहुँचाती है।
   स्थानीय प्रचण्ड विनाशकारी तूफानों में तडितझंझा को भी सम्मिलित किया जाता है।

11.2.1.3 संचयी वायुमण्डलीय प्रकोप/आपदाएँ

लम्बे समय तक बनी रहने वाली मौसम की घटनाओं के प्रभावों के संचयन के कारण उत्पन्न होने वाले प्रकोपों को संचयी वायुमण्डली प्रकोप कहते हैं। जब अति गर्म एवं अति शुष्क दशाएँ लगातार कई सप्ताह तक कायम रहती हैं तो ताप लहर के रूप में पर्यावरणीय प्रकोप उत्पन्न हो जाता है जिसका मनुष्यों, वनस्पतियों तथा जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारत के मैदानी भागों में मई तथा जून के महीनों में लू (स्वव) इसका प्रमुख उदाहरण है।

इसी प्रकार कई सप्ताह तक अति शीत दशा के कारण प्रचण्ड हिमपात होने लगता है तथा शीत लहर के रूप में आपदापन्न/संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संचयी वायुमण्डलीय प्रकोपों में बाढ़ तथा सूखा, तापलहर तथा हिमपात एवं शीत लहर को सम्मिलित किया जाता है। आईये इनमें से कुछ का अध्ययन करते हैं-

1. **बाढ़ प्रकोप-** बाढ़ का सामान्य अर्थ होता है विस्तृत स्थलीय भाग का लगातार कई दिनों तक जलमग्न रहना। वास्तव में बाढ़ प्राकृतिक पर्यावरण का एक गुण है तथा अपवाह बेसिन के जलीय चक्र का एक संघटक है। बाढ़ एक प्राकृतिक घटना व अति जल वर्षा का परिणाम है। यह मात्र उस समय आपदा बन जाती है जब इसके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है। मानवीय क्रियाकलापों द्वारा बाढ़ के परिणाम, आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि हो जाती है। अतः बाढ़ प्रकोप प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों हैं।
   अधिकतर बाढ़ का सम्बन्ध विस्तृत जलोद मैदानों में प्रवाहित होने वाली जलोद नदियों से होता है। विश्व के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र पर बाढ़ मैदान (Flood Plains) का विस्तार है जिसमें विश्व की लगभग 16.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।
   भारत में विध्वंशक बाढ़ एवं उनसे उत्पन्न प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति तथा धन-जन की हानि पहुँचाने वाली प्रमुख नदियाँ गंगा, तथा उसकी सहायक यमुना, रामगगां, घाघरा, गोमती, गंडक, कोसी, दामोदर आदि उत्तर भारत में हैं। उत्तर पूर्वी भारत में ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण भारत में कृष्णा, गोदावरी, महानदी, नर्मदा, तापी आदि नदियों के डेल्टाई भाग हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मिसीसिपी तथा मिसौरी नदी, चीन में यांगसिटी तथा यलो नदी, बर्मा में इरावदी, पाकिस्तान में सिंध, नाइजीरिया में नाइजर, इटली में पो, ईराक में दजला, फरात आदि नदियां अपने अपवाह बेसिन में विध्वंशक बाढ़ का कारण बन जाती हैं।

यद्यपि नदियों की बाढ़ प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों कारकों का प्रतिफल है। अतः जलोढ़ नदियों की बाढ़ों के वास्तविक कारण अत्यन्त जटिल हो जाते हैं। इन कारणों में प्राकृतिक एवं मानवजनित के सापेक्षिक महत्व में स्थानीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं।

नदियों में प्राकृतिक और मानव भूल से बाढ़ के प्रमुख हैं-

- लम्बी अवधि तक उच्च तीव्रता वाली जल वर्षा। घनघोर वर्षा।
- नदियों के विसर्पित (घुमावदार) मार्ग।
- विस्तृत बाढ़-मैदान।
- नदियों की जलधारा की प्रवणता में अचानक परिवर्तन।
- भूस्खलन तथा ज्वालामुखी-उद्-गार से नदियों के स्वाभाविक प्रवाह में अवरोध।
- नदियों की घाटियों तथा जलधाराओं की विशेषताएँ।
- निर्माण कार्य, नगरीकरण।
- नदियों के जलमार्ग में परिवर्तन।
- नदियों पर बाँधों, पुलों एवं भण्डारों का निर्माण।
- कृषि कार्य, वन विनाश, भूमि उपयोग में परिवर्तन आदि प्रमुख कारण हैं।

उपरोक्त सभी कारणों का नदियों की बाढ़ की स्थिति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

2. **सूखा प्रकोप-** सूखे का अविभार्व जल के अभाव में संचयी प्रभावों से होता है। सूखा अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप है। सूखे के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति की भारी मात्रा में क्षति होती है तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार उस दशा को सूखा कहते हैं, जबकि किसी भी क्षेत्र में सामान्य वर्षा से वास्तविक वर्षा 75 प्रतिशत से कम होती है।

   सूखे को दो वर्गों में विभक्त किया गया है- प्रचण्ड सूखा, जिसमें वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा के 50 प्रतिशत से अधिक होता है। सामान्य सूखा, जिसमें वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा से 50 से 25 प्रतिशत के बीच रहता है।

   सूखे का जीवमण्डल पारिस्थितिक तंत्र के सभी जीवन रूपों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जीव-जन्तु तथा पौधे सभी प्रत्यक्ष रूप से जल पर निर्भर करते हैं।

   वास्तव में दीर्घकालिक सूखे का पारिस्थितिकीरण, आर्थिक, जनांकीय तथा राजनैतिक पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त पौधों तथा जन्तुओं की महत्वपूर्ण जातियाँ समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि वे कठोर सूखे को बर्दास्त नहीं कर पाती हैं। कुछ जन्तु अन्य स्थानों को प्रवजन कर लेते हैं। जिससे उनके स्थान विशेष में कमी हो जाती है। सूखे के कारण आहार की कमी हो जाने के कारण जानवर भुखमरी के कारण मर जाते हैं।

सूखा ग्रसित मुख्य क्षेत्रों में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश आदि हैं। प्रचण्ड सूखे के कारण काफी संख्या में लोग अपने पशुओं के साथ पलायन कर जाते हैं।

उत्तर अफ्रीका में उत्तर में सहारा के गर्म एवं शुष्क रोगिस्तानी भाग एवं दक्षिण में सवाना प्रदेश के बीच पश्चिम से पूर्ण फैले विस्तृत क्षेत्र को सहेल प्रदेश कहते हैं। यह प्रदेश प्रायः सूखे की चपेट में आता रहता है, जिस कारण वनस्पतियों, जन्तुओं एवं मानव समुदाय की अपार क्षति उठानी पड़ती है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मरिटेनियर, सेनेगल, माली, अपर वोल्टा, नाइजर, नाइजीरिया, चाड़, यूगाण्डा तथा इथिओपियर देशों के भागों को सम्मिलित किया जाता है। इथोपियों में सूखे के कारण आज तक लाखों लोग कुपोषण तथा रोगों से मृत्यु की भेंट चढ़ गए हैं।

आस्ट्रेलिया में सूखा आम घटना है। सूखे की घटना बार-बार घटती है। उसका प्रभाव विस्तृत क्षेत्रों पर पड़ता है। सन् 1895 से 1902 तक आस्ट्रेलिया के प्रचण्ड सूखे की स्थिति का आविर्भाव हुआ है। जिसमें 106 मिलियन मवेशी खत्म हो गए। सूखे के कारण कृषि के क्षेत्र में भारी कमी हो गयी है।

ग्रेट ब्रिटेन में सूखे के कारण सन् 1975-1976 में घरेलू एवं औद्योगिक उपयोग के लिए आवश्यक जल की आपूर्ति के लिए घोर संकट उत्पन्न हो गया। घर-कृषि उत्पादन में काफी कमी हो गयी।

भारत के कृषि मंत्रालय ने जलवर्षा के वितरण, सूखे की घटना की आवृत्ति तथा सिंचाई के प्रतिशत के आधार पर तथा सिंचाई आयोग ने सिंचाई तथा जलवर्षा के आधार पर देश में सूखा प्रभावित क्षेत्रों का निर्धारण किया है।

सिंचाई आयोग के अनुसार वे क्षेत्र सूखाग्रस्त क्षेत्र होते हैं, जहाँ पर औसत वार्षिक वर्षा 1000 मिलीमीटर से कम होती है। देश के 20 प्रतिशत तथा उससे अधिक भाग में औसत वार्षिक जल वर्षा का 75 प्रतिशत से कम जल वर्षा प्राप्त होती है तथा कृषिगत क्षेत्र के 20 प्रतिशत से कम भाग पर सिंचाई होती है।

उपरोक्त भौतिक कारणों जिनके द्वारा धरातल पर प्रायः आपदाएं उत्पन्न होती हैं। इनके साथ ही वैज्ञानिकों की अवधारणा है कि पृथ्वी के विगत इतिहास में पृथ्वी तथा बाहरी वस्तुओं जैसे- एस्टेरायड, मेट्रोइट्स तथा कामेट से टक्कर के कारण उत्पन्न प्रलयकारी घटना को ग्रहेतर या पृथ्व्येतर प्रकोप या विनाश कहते हैं।

इन टकरावों से अपार धूल-राशि का उद्-गार, महासागरों में ज्वारीय तरंगों का जनन, हरिकेन की उत्पत्ति, भूतल पर गर्तों एवं क्रैटर का निर्माण, सागर तल में ज्वालामुखी क्रिया तथा स्थालाकृतियों में परिवर्तन हो जाता है।

11.2.2 मानवजनित आपदाओं के प्रकार

मानवजनित आपदा पर्यावरणीय प्रकोप को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है-

1. मानव जनित भौतिक प्रकोप। जैसे- भूकम्प, भूस्खलन, तीव्र मृदा अपरदन।
2. मानव जनित रासायनिक प्रकोप। जैसे- जहरीले रसायनों का विमोचन तथा जमाव नाभिकीय विस्फोट, तेल वाहक लवणों से खनिज तेल का सांगवीय जल में रिसाव आदि।
3. मानव जनित जीवीय प्रकोप। जैसे- मानव जनसंख्या विस्फोट जलीय भागों में पोषक तत्वों की अत्यधिक वृद्धि होने से कुछ पौधों में अपार वृद्धि आदि।

वास्तव में भूकम्प प्राकृतिक घटना है तथा इसकी उत्पत्ति पृथ्वी के अन्तरतम में उत्पन्न अन्तजति बलों के कारण होती है। किन्तु मानव द्वारा भूमिगत जल, खनिज तेल व अत्यधिक गहराई तक खनिजों के खनन, निर्माण कार्यों जैसे- सड़क, बाँध, जलभण्डार आदि के निर्माण के लिये डायनामाईट द्वारा चट्टानों का उड़ाया जाना नाभीकीय परीक्षण तथा विस्फोट, बड़े-बड़े जल भण्डारों में अपार जलराशि (डैम) के संग्रह आदि के द्वारा भी बड़े परिणाम वाले खतरनाक भूकम्पों की उत्पत्ति होती है।

ग्रीस में 'मरेथान बाँध' के कारण सन् 1929 का भूकम्प, संयुक्त राज्य अमेरिका में 'हूबर बाँध' तथा भारत में महाराष्ट्र प्रान्त के सतारा जिले, जिसमें 'कोयना बाँध' के कारण सन् 1967 का भूकम्प, इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

इसके अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में जमीन के नीचे जहरीले रसायनिक तत्वों का जमाव उस क्षेत्र के लोगों के लिए घातक, आपदा के रूप में परिलक्षित होता है।

नियाग्राफाल्स नगर के पास लोव नहर के लिए सन् 1892 में खोदी गई खाई के बाद में छोड़ दिया गया। बाद में इस खाई का प्रयोग कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों खासकर जहरीले रासायनिक तत्वों के जमाव के लिए किया जाने लगा। 80 से अधिक जहरीले रासायनिकों का जमाव इस खाई में सन् 1953 तक होता रहा। कुछ समय बाद इस स्थान पर नियाग्रफाल्स नगर के उपनगर का विकास किया गया, किन्तु सन् 1977 में अत्यधिक जलवृष्टि के कारण इस मानवजनित रासायनिक जमाव में अचानक विस्फोट हो गया, जिससे लोगों के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। जैसे- महिलाओं में गर्भापात की दर में अचानक वृद्धि हो गयी, रक्त एवं जिगर की विसंगतियाँ, जन्म विकृति आदि कई प्रकार की शारीरिक विकृति उत्पन्न हो गयी।

मनुष्य की असावधानी के कारण तेल वाहक जहाजों से खनिज तेल के अधिक मात्रा में रिसाव के कारण सागरीय जल की सतह पर तेल की पतली परतें बन जाती हैं जो जल की सतह पर तेली से फैलती हैं। इसके कारण प्रभावित सागरीय क्षेत्रों में सागरीय जीव मर जाते हैं।

नाभिकीय संस्थानों में अचानक गड़बड़ी हो जाने से प्राणघातक आपदाऐं उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरह की दुर्घटनाओं का प्रभावित क्षेत्रों के पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, मनष्यों न केवल तात्कालिक दुष्प्रभाव होते हैं, बल्कि इनका दुष्परिणाम वर्षों तक बना रहता है। मानव की भावी पीढ़ियाँ रेडियोएक्टिव तत्वों से दुष्प्रभावित होती रहती है।

सोवियत रूस में चरनोबिल में स्थित नाभिकीय संयंत्र की सन् 1989 की दुर्घटना तथा त्रासदी मानव जनित भीषण प्रकोप तथा विनाश का उदाहरण है। भारत में सन् 1984 में भोपाल गैस त्रासदी मनुष्य की लापरवाही के कारण उत्पन्न होने वाले भयंकर प्राणघातक प्रकोप का उदाहरण है।

कभी-कभी लोलुपतावश भी मनुष्य जानबूझकर घातक प्रकोप तथा आपदाएँ उत्पन्न करता है। प्रायः युद्ध के समय ऐसा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के समय (सन् 1945) में जापान के दो नगरों, नागासाकी तथा हिरोशिमा पर ऐटम बम गिराया गया। इन आणविक बमों के विस्फोट द्वारा उत्पन्न घातक संक्रमण के कारण लाखों लोगों की मृत्यु हो गयी और आज भी वहाँ के लोग बर्बरता का खामियाजा, अपंगता या शारीरिक विकृतियों के रूप में भुगत रहे हैं।

इसके अलावा युद्ध के समय जहरीली गैंसों तथा संक्रामक रोग फैलाने वाले कीटाणुओं का प्रयोग करता है तथा निर्माण कार्यों तथा भूमि उपयोग में परिवर्तनों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों की गति तेज कर देता है। फलस्वरूप भूस्खलन द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में वन-विनाश, भवनों तथा सड़कों के कारण भूस्खलन की आवृति तथा परिणाम में वृद्धि हो जाती है।

11.3 आपदा प्रबन्धन

अभी तक हमने जाना कि वास्तव में आपदाएँ क्या होती हैं तथा उनसे मानव जीवन किस तरह प्रभावित होता है। किन्तु अब प्रश्न उठता है कि आपदाओं को जान लेना या उनका ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही आपदाओं का सामना नहीं किया जा सकता, इसलिए आपदा प्रबन्धन एक मुख्य विषय के रूप में उभरकर सामने आता है।

प्राकृतिक आपदाओं के न्यूनीकरण तथा प्रबन्धन के अन्तर्गत तीन मुख्य पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

1. प्रकोपों के सम्भावित आगमन की भविष्यवाणी करना।
2. प्रकोप से प्रभावित क्षेत्र के लोगों के लिए राहत सामग्री को तुरन्त पहुँचाना।
3. प्राकृतिक प्रकोपों तथा आपदाओं के साथ समायोजन के उपाय करना।

आपदा प्रबन्धन की तैयारी के मुख्य उद्देश्य हैं, आपदा प्रभावित क्षेत्रों में कम से कम समय में प्रभावी तरीके से सहायता पहुँचाना तथा समयबद्ध सुनियोजित तरीकों से त्वरित सक्षम संगठनों के द्वारा आपातकालीन परिस्थितियों

में धन-जन की हानि को कम करना होना चाहिए। यद्यपि आपदा प्रबन्धन में दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। परन्तु इस दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

- आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन।
- आपदा आने के बाद का प्रबन्धन।

11.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन

आपदा आने से पूर्व के प्रबन्धन में, विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकि सहयोग से भविष्यवाणी या चेतावनी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत रिमोट सैंसिंग जी0आई0एस0 तथा वायु आकाश सर्वेक्षणों के द्वारा चक्रवात, बाढ़, सुनामी आदि जैसे प्राकृतिक आपदाओं की सूचना पूर्व में जारी की जा सकती है। जिससे आपदा आने के पूर्व ही लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जा सकता है, जिससे कि जन-धन की हानि को न्यूनतम किया जा सकता है। उक्त तकनीकी आधारों पर आपदा प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व में मूल्यांकन करते हुए समस्याग्रस्त क्षेत्रों का मानचित्र तैयार किया जा सकता है। जिससे कि आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में आम जनता को प्रकोपों के प्रति जागरूक करते हुए समय पर सूचना प्रदान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त आपदा आने के पूर्व के सम्भावित खतरों से बचने के लिए संरचनात्मक एवं निर्माण कार्य किया जा सकता है।

यथा बाढ़ सम्भावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में ही सुरक्षात्मक दिवारों का निर्माण करना, नदी के जलागम क्षेत्रों में वृहद वृक्षारोपण करना, बाढ़ के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरण आदि के बारे में लोगों को प्रेरित करना। इसी प्रकार सुनामी, चक्रवातों के प्रभावित क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किये जा सकते हैं। साथ ही साथ रिमोट सैंसिंग तथा जी0आई0एस0 तकनीकी द्वारा प्राप्त सूचनाओं को चेतावनी प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना। तकनीकी प्रणालियों की सहायता से अमेरिका जैसे विकसित देशों में चक्रवातों की उत्पत्ति तथा उनके गमन पथ की लगातार सूचना के आधार पर अग्रिम चेतावनी दी जाती है, जिससे समय रहते लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जाता है। जिसके द्वारा जनहानि को न्यूनतम स्तर पर लाया जा सकता है। इस प्रकार का उदाहरण जापान जैसे भूकम्प प्रभावी देश में किया जाता है। जहां भूकम्परोधी भवनों का निर्माण तथा लोगों को जागरूक करके जन-धन की हानि कम की गई है।

आपदा न्यूनीकरण के विभिन्न कार्यक्रमों को दीर्घकालीन स्तरों पर तैयार किया जा सकता है, जिसमें प्रकोपों से सम्बन्धित शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों में वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं, नीतिनिर्धारकों, प्रशासकों तथा आम जनता को सम्मिलित करते हुए एक ठोस आपदा प्रबन्धन की नीति तैयार की जा सकती है। जिसमें- 1. मजबूत सूचना तंत्र का विकास। 2. वैज्ञानिक उपकरणों का आधिकारिक प्रयोग। 3. आपदाग्रस्त क्षेत्रों को वैज्ञानिक आधार पर चिन्हित करना। 4. उसी के अनुरूप वैज्ञानिक तकनीकी के इस्तेमाल हेतु प्रेरित करना। 5. लोगों को आपदा के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरणों से शिक्षित करना। 6. ऐसे संगठनों को तैयार करना जो कि स्थानीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थितियों से अवगत हों। 7. राहत सामग्रियों यथा भोजन, टैंट, चिकित्सा, वैज्ञानिक उपकरणों का यथोचित स्थान पर भण्डारण। 8. वैकल्पिक यातायात व सूचना तंत्र की स्थापना करना। 9. वैज्ञानिक अध्ययनों, शोध के पश्चात विकास परियोजनाओं को लागू करना। 10. सशक्त नीतियां बनाना तथा उनका क्रियान्वयन दृढ़ता से लागू करना। 11. स्थानीय लोगों को जागरूक करना तथा उनसे सहयोग प्राप्त करके आपदा प्रबन्धन की योजनाओं में उनकी अधिकाधिक सहभागिता करना।

11.3.2आपदा आने के बाद का प्रबन्धन

यद्यपि वर्तमान समय में तकनीकि सहायता के द्वारा कई प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं का पूर्वानुमान व मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु कुछ प्राकृतिक घटनाएँ बिना किसी चेतावनी के एकाएक घटित हो जाती हैं, जिनके लिए हमें आपदा प्रबन्धन की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए हमें ऐसी कार्ययोजना तथा संगठन की आवश्यकता होती है, जो कि समस्त विभागों के बीच आपसी तालमेल व समन्वय के साथ आपदाग्रस्त क्षेत्रों में त्वरित सहायता पहुँचाने का कार्य सुचारु रूप से कर सके। इस संगठनों के पास उस क्षेत्र की समस्त भौगोलिक जानकारियाँ उपलब्ध होनी चाहिए ताकि आपदा के समय उस क्षेत्र पर तत्काल पहुँचा जा सके एवं लोगों को समय पर राहत सामग्री उपलब्ध करवायी जा सके। आपदा आने के उपरान्त आपदा प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नांकित कदम उठा सकते हैं- 1. आपदा आने के बाद के प्रबंधन में तत्काल आपदाग्रस्त क्षेत्रों में पहुँचना। 2. राहतकर्मियों के पास आपदा के निबटारे हेतु आवश्यक उपकराणों का होना। 3. राहत सामग्रियों की उचित वितरण की व्यवस्था। 4. चिकित्सा तथा निवास की उचित व्यवस्था। 5. स्थानीय लोगों से सहायता प्राप्त करना। 6. समस्त सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों के बीच उचित समन्वय व सहयोग होना। 7. मरे हुए जानवरों व शवों का निष्पादन, ताकि कोई महामारी या रोग न फैलने पाए। 8. यातायात व सूचना तंत्र को पुन: बहाल करना। 9. आपदाग्रस्त क्षेत्र के पुनर्वास व पुनर्निमाण की योजना बनाना।

11.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप

आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित अनेक कार्यकलापों के निष्पादन की आवश्यकता होती है। आईये इनका अध्ययन करते है-

1. विभिन्न इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रानिक उपकरणों एवं तकनीकी के आधार पर प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व मूल्यांकन एवं वृहद मानचित्रों का तैयार किया जाना।
2. उक्त क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों को सम्बन्धित आपदाओं के सम्बन्ध में सूचना के विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों को सम्बन्धित खतरों से बचने के लिए शिक्षित करना।
3. विभिन्न संचार माध्यमों व वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा पूर्व चेतावनी प्रणाली की स्थापना करना।
4. प्रभावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में सुरक्षात्मक एवं संरचनात्मक निर्माण कार्यों का किया जाना।
5. स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना। दक्ष व कुशल राहतकर्मियों के दल का गठन, जिनको कि इस प्राकृतिक व मानवजनित आपदा के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हो तथा उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियां का गठन किया जाना चाहिए।
6. आपदाग्रस्त क्षेत्रों में आपतकालीन राहत सामग्री को पहुँचाना।
7. विभिन्न सरकारी व अर्धसरकारी विभागों के बीच समन्वय के साथ काम करना।
8. केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा स्पष्ट नीतियों का निर्धारण करना।
9. विभिन्न प्रकार की आपदाओं हेतु उसी के अनुरूप संगठनों का निर्माण किया जाना। जैसे कि प्राकृतिक आपदा एवं मानवजनित आपदाओं के प्रबन्धन हेतु अलग-अलग संगठनों को पूर्व में तैयार करना।
10. राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय एवं स्थानीय स्तर पर आपदा प्रबन्धन पर चर्चा करना, लोगों को शिक्षित करना, जिसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी व वैज्ञानिक संगठनों द्वारा एकत्रित सूचनाओं के अनुरूप एक नीति तैयार करना।

11.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम

प्रकोपों तथा आपदाओं के शोध से सम्बन्धित तथा प्रकोपों से उत्पन्न प्रभावों को कम करने के लिए चलाये जाने वाले कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं।

SCOPE (Scientific Communicate on Problem of Environment) नामक समिति का गठन सन् 1969 में ICSU (Inter National Councial of Scientific Union) द्वारा पर्यावरण पर मनुष्य के तथा मनुष्य पर पर्यावरण के प्रभावों से सम्बन्धित जानकारी में वृद्धि करना तथा सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों को पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित वैज्ञानिक सूचनाएँ व सुझाव देने हेतु स्थापना की गई।

इसी प्रकार IGBP (Inter National Geospher Biorphere Programme) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भौतिक पर्यावरण के स्थल मण्डलीय, स्थानीय एवं वायुमण्डलीय संघटकों के अध्ययन हेतु सन् 1988 में एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम का अभियान शुरू किया गया।

यूनाइटेड नेशन डिजासटर रिलिफ ऑफिस को सन् 1971 में आपदा के समय तुरन्त सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया था। खासकर अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास और रैड क्रिसैन्ट आन्दोलनों के द्वारा तुरन्त आपदा ग्रस्त क्षेत्र में गैर-सरकारी व सरकारी रूप से सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया। इसके द्वारा आपदा सम्भावित क्षेत्र के लिए पहले से प्लान या योजना बना ली जाती है। मुख्यतः विकसित देशों के लिए जहाँ पर आधुनिक तकनीकी का विकास हुआ हो।

यूनाइटेड नेशन डिजास्टर रिलिफ औगेनाइजेशन का मुख्य उद्देश्य पूरे विश्व में कम से कम खर्च में आपदा से बचाने में अपना पूर्ण सहयोग व सहायता देना है। यद्यपि विश्व स्तर पर प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के प्रबन्धन हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। परन्तु इस प्रकार के कार्यक्रमों के साथ ही स्थानीय रूप से भौगोलिक आधारों पर कार्यक्रमों/योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए। वर्ना स्थानीय आधारों पर प्राकृतिक आपदाओं के समय पर कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे तात्कालिक सहायता के स्थान पर प्राप्त राहत सामग्रियों के रख-रखाव की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। जिसका स्पष्ट उदाहरण सन् 1985 के मैक्सिको शहर के विध्वंशकारी भूकम्प के समय राहत कार्यों में समस्या उत्पन्न हो गयी थी। क्योंकि विभिन्न देशों से मैक्सिको शहर के लिए भेजी गयी राहत सामग्रियों व राहत कार्य करने वाली संस्थाएँ पूर्वानुमान पर आधारित थे न कि मैक्सिको शहर की वास्तविक माँगों के आधार पर। जिससे की कुछ ही दिनों में इतनी अधिक राहत सामग्री (खाद्य, टैन्ट, दवाएँ आदि) पहुँच गयी कि उनके रखरखाव व वितरण की समस्या उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार विभिन्न देशों से गये राहतकर्मियों जिनमें डाक्टर, नर्सें तथा बचावकर्मी आदि को स्थानीय भाषा व भौगोलिक क्षेत्र का ज्ञान न होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने व स्थानीय लोगों की भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण भाषा की समस्याएँ उत्पन्न हो गयी। जिसके कारण स्थानीय अधिकारियों को एक ओर राहत सामग्री के रखरखाव व दूसरी ओर भाषा की समस्याओं का सामना करना पड़ा।

अतः इस प्रकार की समस्याओं के निदान के लिए एक सुनिश्चित राहत कार्य की आवश्यकता होती है, ताकि उपलब्ध राहत सामग्रियों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सके।

प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के लिए जहाँ एक ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों के भण्डारण व उचित वितरण की व्यवस्था की जानी आवश्यक है। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि स्थानीय आधारों पर राहतकर्मियों को तैयार किया जाय जो कि उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियाँ रखते हों तथा स्थानीय आपदाग्रस्त लोगों को अधिकाधिक सहायता कम से कम समय पर पहुँचा सकें। इस प्रकार राहतकर्मियों के संगठनों में स्थानीय स्तर पर उस क्षेत्र के निवासी उस क्षेत्र में

कार्यरत ग्राम पंचायतें, ग्रामों में उपलब्ध डाक्टर, शिक्षक, इंजीनियरों, रिटायर्ड सैनिक व पुलिस कर्मियों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। वहीं राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों से आपसी तालमेल व समन्वय का होना आवश्यक है जो कि विभिन्न वैज्ञानिक सूचनाओं, राहत उपकरणों, संचार उपकरणों से भली-भाँति परिचित हो।

भारत जैसे विकासशील देश में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं (भूस्खलन, बाढ़, तूफान, सूखा) तथा मानवजनित आपदाओं (सड़क, रेल, वायु दुर्घटनाओं, रासायनिक गैसों के रिसाव से उत्पन्न आपदाएँ आदि) से उत्पन्न समस्याओं का प्रबन्धन विकसित देशों की तुलना में भिन्न हैं, क्योंकि भारत की भौगोलिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं तथा देश विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के अन्तर्गत आता है।

एक अनुमान के अनुसार आज भी भारत में 57 प्रतिशत भूमि भूकम्प जनित आपदाओं, 68 प्रतिशत भूमि सूखा जनित आपदाओं, 12 प्रतिशत भूमि बाढ़ ग्रस्त आपदाओं, 8 प्रतिशत क्षेत्र चक्रवाती तूफानों से ग्रसित क्षेत्रों में आता है। साथ ही भारत के कई शहर या क्षेत्र औद्योगिकरण के कारण रासायनिक व औद्योगिक आपदाओं तथा मानव जनित आपदाओं में सम्मिलित हैं।

यद्यपि भारत में विभिन्न प्राकृतिक व मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिसका उत्तम उदाहरण कृषि क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जहाँ आजादी से पूर्व भारत में सूखा पड़ना एक विकराल प्राकृतिक आपदा के रूप में जानी जाती थी। सन् 1769 से 1770 के बीच बंगाल में सूखे के समय अत्यधिक जनसंख्या सूखे के कारण मर गयी थी। इसी प्रकार आजादी के बाद भी सूखा कृषि क्षेत्र की एक गम्भीर समस्या थी, जिसमें हजारों लोग भूख के कारण काल के ग्रास बन जाते थे। सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के द्वारा सूखाग्रस्त क्षेत्रों का न्यूनीकरण किया गया। साथ ही सन् 1960 के दशक में कृषि क्षेत्र में स्वगमित विकास हेतु चलायी गयी योजनाओं में हरित क्रान्ति प्रमुख थी। जिससे न केवल कृषि के लिए संरचनात्मक विधाओं का विकास किया गया, वहीं दूसरी ओर खाद्य सामग्री के भण्डारण का वितरण की उचित व्यवस्था के कारण सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं में कमी के साथ भुखमरी से होने वाली जन हानि को न्यूनतम किया जा सका।

इसी प्रकार तटीय चक्रवातों के समय मानवजनित उपग्रहों के माध्यम से पूर्व चेतावनी का दिया जाना सम्मिलित है। भारत में एक ओर आपदाओं के प्रबन्धन में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता ली जाती है, परन्तु स्थानीय स्तर पर आज भी प्रबन्धन में अनेक समस्याएँ हैं। जैसे कि लोगों को इन आपदाओं के प्रति जागरूक करना, जापान जैसे भूकम्प प्रभावित क्षेत्र में लोगों की सहायता से इससे होने वाले नुकसान को न्यूनतम किया जा जाता है। वहाँ घरों को भूकम्परोधी बनाना, भूकम्प के समय लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों से धन-जन की हानि को कम किया जा सकता है, परन्तु भारत में आज भी भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों से इन बातों की अवहेलना की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप भूकम्प के समय मकानों के गिरने से अत्यधिक धन-जन की हानि होती है। इसी प्रकार का उदाहरण हाल में देश के पूर्वीतटीय भागों में आई सुनामी के कहर से स्पष्ट है। वहाँ कोई पूर्व चेतावनी प्रणाली न होने तथा लोगों को सुनामी के बारे में जानकारी न होने के कारण अपार धन-जन की हानि हो गयी।

भारत में प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा प्रतिवर्ष हजारों लोगों की मृत्यु हो जाती है (लगभग 3600 लोग), करोड़ों हैक्टेयर कृषि भूमि (1.42 मिलियन हैक्टेयर) और लाखों घर समाप्त हो जाते हैं।

ए0 पटवर्धन के द्वारा भारत में आपदा प्रबन्धन के सन्दर्भ में किये गये अध्ययन के आधार पर सबसे अधिक हानि तूफानों, बाढ़, भूकम्प व अत्यधिक तापमान द्वार होती है।

आपदा प्रबन्धन के लिए भारत सरकार के महत्वपूर्ण केन्द्रीय मंत्रालय व विभाग इस प्रकार हैं-

आपदाएँ	केन्द्रीय मंत्रालय और विभाग
प्राकृतिक आपदाएँ	कृषि
हवाई आपदाएँ	नागर विमानन
रेलवे दुर्घटनाएँ	रेलवे मंत्रालय
रासायनिक दुर्घटनाएँ	पर्यावरण मंत्रालय
शारीरिक आपदाएँ	स्वास्थ्य एवं पर्यावरण मंत्रालय
नागरिक दुर्घटनाएँ युद्ध), महामारी, नैक्सलाइट हमले, आतंकवादी घटनाएँ (	गृह मंत्रालय
नाभिकीय दुर्घटनाएँ	परमाणु ऊर्जा मंत्रालय

ये समस्त संस्थान भारत में निरन्तर आपदाओं के न्यूनीकरण व प्रबन्धन के लिए कार्यरत हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राकृतिक जनित आपदा है-
   क. भूस्खलन ख. बम विस्फोट ग. रासायनिक गैसों का उत्सर्जन घ. उपरोक्त सभी
2. भूकम्प से क्षति है-
   क. प्राकृतिक आपदा ख. मानव जनित आपदा ग. दोनों नहीं घ. कोई नहीं
3. चैरनेबल परमाणु रिएक्टर दुर्घटना कौन सी आपदा थी?
   क. वायुमण्डलीय आपदा ख. जैविक आपदा ग. नाभिकीय आपदा घ. कोई नहीं
4. मानव जनित आपदा है-
   क. भूकम्प ख. ज्वालामुखी ग. सुनामी घ. रेल दुर्घटना
5. टैरनेडो अधिकांशतः यूरोप के मध्य भाग में आते हैं। सत्य/असत्य
6. सुनामी समुद्र में भूकम्प के फलस्वरूप उठी विध्वंशक तरंगों को हते हैं। सत्य/असत्य
7. ऊष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का असर भारत, बांग्लादेश आदि देशों में सर्वाधिक धन-जन की हानि करता है। सत्य/असत्य
8. ज्वालामुखी विस्फोट से निकलने वाले लावा और धूल से भी अपार धन-जन की हानि होती है। सत्य/असत्य

11.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह स्पष्ट हो गया है कि प्राकृतिक व मानवजनित आकस्मिक व विध्वंशकारी घटनाएँ जिनके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है, को आपदा कहते हैं। आपदाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाएँ- जिसमें (भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, चक्रवात) आदि सम्मिलित हैं, प्राकृतिक शक्तियों का हाथ होता है, जिसके बारे में वैज्ञानिक रूप से आज भी हमारे पास पूर्वानुमान के बहुत कम साधन हैं। यह कब? कहाँ? कैसे? आएगा, इसका पूर्वानुमान लगाना अभी भी अपनी प्राथमिक अवस्था में है।

यद्यपि विकसित देशों में वैज्ञानिक उपकरणों व तकनीकी के सहारे इन आपदाओं से होने वाले धन-जन की क्षति को कम किया जा सकता है, किन्तु विकासशील या अल्पविकसित देशों में वैज्ञानिक संसाधनों का अभाव होने के कारण ये प्राकृतिक आपदाएँ अपार धन-जन की हानि पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त मानव जनित आपदाएँ हैं, जिनमें रासायनिक, जैविक, नाभीकीय, युद्व, आतंकी घटनाओं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पहुओं का भौगोलिक परिस्थितियों से उचित सामंजस्य बनाकर इन आपदाओं से होने वाले दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है तथा उचित प्रबन्धन के लिए आपदाग्रस्त क्षेत्रों का वैज्ञानिक शोध के द्वारा विस्तृत अध्ययन, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास व कुशल व शिक्षित राहत कर्मियों के संगठनों को तैयार करना, तुरन्त राहत व चिकित्सा सामग्रियों को पहुँचाना स्थानीय लोगों को उपरोक्त प्रकार प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देना, सुरक्षा सम्बन्धी उपयों की जानकारी देना, विभिन्न प्रकार की आपदाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर ठोस कार्य योजना बनाना तथा उनको दृढ़ता से लागू करना तथा स्थानीय, राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर पर आपदा से पूर्व व बाद के प्रबन्धन के लिए दीर्घकालिक व अल्पकालिक नीतियाँ बनाना आदि आपदा प्रबन्ध के मुख्य कार्य हैं।

11.8 शब्दावली

आपदा- प्राकृतिक व मानव जनित घटनाओं से होने वाली धन-जन की हानि।

प्रबन्धन- किसी भी समस्या से निजात पाने के लिये कई सम्भावित विकल्पों से एक विकल्प चुनना।

पार्थिव- पृथ्वी से ऊपर।

प्लेट विर्वतनिक- ऐसा सिद्धान्त जो पृथ्वी के बाहरी भाग को विभिन्न प्लेटों में बाँटने में उसके द्वारा महाद्वीप के निर्माण, ज्वालामुखी व भूकम्प आदि की व्याख्या करताहै।

टैरनेडो- कम दाब वाले क्षेत्रों में हवाओं या गोलाकार घूमते हुए उत्पन्न हिंसक तूफानों को टैरनेडो कहते हैं।

एस्टोराइड- मंगल व बृहस्पति ग्रहों के बीच घूमते हुए उल्का पिण्ड।

मैट्रोइट्स- जब ब्रह्माण्ड में घूमते उल्का पिण्ड पृथ्वी के वातावरण में भी नष्ट नहीं होते, बल्कि पृथ्वी से टकराते हैं।

भूस्खलन- चट्टानों का पानी आदि के कारण तेजी से नीचे गिरना, जो कि वर्षाकाल में घटित होता है।

हिमस्खलन- पर्वतीय क्षेत्रों के बड़े हिम या बर्फ के क्षेत्र में अपने ढाल पर गिरना, जिसके कारण अपार धन-जन की हानि होती है।

रिचर्टर स्केल- भू-वैज्ञानिक चार्ल्स एफ0 रिचर्टर द्वारा सन् 1935 में भूकम्प से निकली ऊर्जा के मापन की इकाई।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, **2.** क, **3.** ग, **4.** घ, **5.** असत्य, **6.** सत्य, **7.** सत्य, **8.** सत्य

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Patwardhan A., 2007: Disaster management in India paper IIT Bombay, pp. 1-15
2. सिंह सविन्द्र, 1991: पर्यावरण भूगोल 'प्रयाग पुस्तक भवन', इलाहाबाद, पेज 1-516

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. in Aerospace surncy and natural disaster pvdnctin, ITC journal, 1989.

2. O. Riordan T, 1971: Perspectives on Resource Management, Pion Londa.
3. Hashizume. M, 1989: The present state of Natural hazard identification sna international cooperation.

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आपदा प्रबन्धन किसे कहते हैं? इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिये।
2. प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते हैं? उनसे होने वाले प्रतिकूल प्रभावों का वर्णन कीजिये।
3. मानव जनित आपदा का क्या तात्पर्य है? किन-किन कारणों से होती है? तथा इसके रोकथाम के उपायों की चर्चा कीजिये।
4. आपदा प्रबन्धन में समाहित घटकों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई- 12 राज्य लोक सेवा आयोग

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 सिविल सेवा का अर्थ
12.3 लोक सेवा आयोग का महत्व
12.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक
    12.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं
    12.4.2 राज्य सेवाएं
12.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण
    12.5.1 प्रथम प्रणाली के आधार पर वर्गीकरण
    12.5.2 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण
12.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती
12.7 आयोग के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान
12.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग
12.9 आयोग के कार्य
12.10 आयोग की स्वतंत्रता
12.11 सारांश
12.12 शब्दावली
12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.16 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

राज्य लोक सेवा का अभिप्राय उन सेवाओं या पदों से है, जिनकी भर्ती व सेवा की शर्तें राज्य विधान सभा के अधिनियम के द्वारा या जब तक ऐसी विधि पारित न हो , राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार नियमित की जाती है। (अनुच्छेद- 309)

राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में लोक सेवकों की भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा करती है। संविधान के अनुच्छेद- 315 के अन्तर्गत राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था है।

इस इकाई में सिविल सेवाओं की प्रकृति का वर्णन किया गया है। सेवाओं का वर्गीकरण और भर्ती के अनेक पहलुओं की विवेचना की गयी है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य स्तर पर सिविल सेवकों के कारकों तथा राज्य सेवाओं के मानदंड तथा वर्गीकरण को समझेंगे।

- उत्तराखण्ड के लोक सेवा आयोग के गठन के बारे में जान पायेंगे।
- राज्य सेवाओं की भर्ती प्रणाली को समझेंगे।
- आयोग की भूमिका तथा इसके महत्व को समझ पायेंगे।

12.2 सिविल सेवा का अर्थ

राज्य सेवाओं का अर्थ, राज्य स्तर की सिविल सेवाओं से है। सिविल सेवा सरकार द्वारा सेवा में नियुक्त असैनिक कर्मचारियों को कहते हैं। सिविल सेवा एक कैरियर सेवा है। अर्ध-सरकारी निकायों के कर्मचारी तथा अधिकारी सिविल सेवा का अंग नहीं होते। सिविल सेवा का एक आवश्यक अंग या उपादान योग्यता प्रणाली की अवधारणा है। योग्यता प्रणाली का अर्थ है, सिविल सेवा के पदों के लिये खुली प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा जाँची गयी योग्यता के आधार पर चयन। राज्य लोक सेवा में ग्रामीण व नगरीय सेवाएं सम्मिलित नहीं है। राज्य शासन इस प्रकार राज्य तथा अधीनस्थ सेवाओं के प्रथम नियुक्ति, नियुक्ति प्रणाली, संख्या और पदस्वरूप तथा सेवा शर्तों के सम्बन्ध में नियम निर्माण की शक्ति का उपयोग करते हैं। इन सेवाओं से सम्बन्धित मामलों में यह अंतिम सत्ता है। राज्य के बाहर किसी भी अन्य सत्ता के समक्ष कोई अपील या प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में राज्य सेवाएं उन सेवाओं को मिला कर बनती हैं, जिन्हें राज्य शासन समय-समय पर अधिकृत गजट में अधिसूचित करता है। एक स्वतंत्र एजेंसी द्वारा योग्यता के प्रमाणित प्रतियोगिता के आधार पर लोक सेवकों का चयन किया जाता है। राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली एजेंसी को राज्य लोक सेवा आयोग कहते हैं।

12.3 लोक सेवा आयोग का महत्व

यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि सिविल सेवा के लिये भर्ती किसी भी पक्षपात के बिना हो। इसी से योग्यता प्रणाली में विश्वास उत्पन्न हो सकता है। भर्ती मे निष्ठा तथा निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिये बहुत से उपाय योग्यता प्रणाली के प्रादुर्भाव के बाद विकसित किये गये हैं। कार्यपालक शाखा को सिविल सेवा के लिये भर्ती करने की शक्ति से वंचित रखा गया है और इस उद्देश्य के लिये एक अलग एजेंसी की स्थापना की गयी है। यह विभाग से अलग संस्था है, अर्थात एक आयोग है। जो सरकार की आम मशीनरी से बाहर रह कर कार्य करती है। इस संस्था को संवैधानिक हैसियत प्रदान की गयी है। ये ध्यान देने की बात है कि आयोग केवल भर्ती करने वाली एजेंसी है, यह नियुक्ति करने की एजेंसी नहीं है। नियुक्ति करने का अधिकार सरकार का है। आयोग एक सलाहकारी संस्था है। इसके निर्णय मानने के लिये सरकार बाध्य नहीं है।

संवैधानिक स्तर पर भी आयोग को महत्व दिया गया है। इसका लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि आयोग बिना भय या पक्षपात के कार्य करें। यह तब सम्भव होगा जबकि इसका गठन, भूमिका तथा प्रत्यायोजन इसके सदस्यों के विशेषाधिकार, सदस्यों की नियुक्ति तथा पद से हटाने का तरीका आदि का वर्णन संविधान में दिया जाये। क्योंकि ऐसा करने से सरकार की कार्यपालक शाखा को इन मामलों में स्वविवेक व स्वेच्छा का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं होगा तथा आयोग इससे प्रभावित हुए बिना कार्य कर सकता है। इस प्रकार संविधानिक स्तर प्रदान करने का अर्थ इसकी सत्ता तथा स्वतंत्रता पर किसी सम्भावित अतिक्रमण के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना है।

12.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक

यहाँ यह जानना अति आवश्यक है कि राज्य स्तर पर एक के स्थान पर दो भिन्न-भिन्न सेवाएं काम करती हैं। इनमें से एक राज्य स्तर पर विविध क्षेत्रों की गतिविधियों को चलाने के लिये, सिविल सेवा के सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा

भर्ती की गयी सेवाएं हैं, इन्हें राज्य सिविल सेवाएं या केवल राज्य सेवाएं कहा जाता है। राज्य में कार्यरत दूसरी सिविल सेवाएं हैं- अखिल भारतीय सेवाएं।

12.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं

अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती केन्द्र सरकार द्वारा 'संघ लोक सेवा आयोग' के माध्यम से की जाती है। भर्ती के पश्चात प्रत्येक अधिकारी को एक निश्चित राज्य वर्ग (काडर) दिया जाता है। उस प्रदत्त राज्य से ही वह सम्बद्ध अधिकारी केन्द्र सरकार में आता है। जिस व्यवस्था के तहत यह स्थान परिवर्तित होता है, उसे सावधिक प्रणाली(Term system) कहते हैं। अधिकारी का राज्य तथा केन्द्र के बीच तबादला उसकी सेवा के पहले बीस वर्षों के दौरान होता है। अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र तथा सम्बद्ध राज्य का संयुक्त नियंत्रण होता है। अखिल भारतीय सेवाएं जिला, राज्य तथा उसके ऊपर उच्च पदों के लिये कार्मिक प्रदान करती है। इस प्रकार ज़िलाधिकारी, क्षेत्रीय आयुक्त, राजस्व बोर्ड के सदस्य, सरकार के सचिव, मुख्य सचिव व पुलिस विभाग के पुलिस अधीक्षक और उसके उपर के सभी पद अखिल भारतीय सेवाओं से भरे जाते हैं।

12.4.2 राज्य सेवाएं

राज्य में लोक सेवकों की भर्ती राज्य सरकार द्वारा अपने 'राज्य लोक सेवा आयोग' या अन्य एजेंसी के माध्यम से की जाती है। इन सेवाओं के सदस्य मुख्यतः राज्यों में सेवा के लिये होते हैं। केवल कुछ अवसरों पर ही कुछ राज्य सेवाओं के कुछ सदस्य केन्द्र या किसी संस्था के द्वारा बुलाये जाते हैं। तकनीकी तथा गैर-तकनीकी विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप गठित सेवाएं राज्यों के पास हैं। राज्य की निम्नलिखित सेवाएं हो सकती हैं- प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, न्यायिक सेवा, वन सेवा, कृषि सेवा, शिक्षा सेवा, स्वास्थ्य सेवा, मत्स्य सेवा, इंजिनियरिंग सेवा, लेखा सेवा, बिक्री कर सेवा, मद्य निषेध एवं उत्पाद सेवा, सहकारी सेवा।

12.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण के लिये दोहरी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रणाली में सेवाएं, प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में वर्गीकृत की जाती हैं। इस वर्गीकरण का आधार है- स्वीकार्य वेतनमान, निष्पादित कार्य के दायित्व की मात्रा व अपेक्षित तदनुरूपी योग्यताएं। सभी राज्य सेवाओं का गठन विभागवार किया जाता है। दूसरी प्रणाली के अन्तर्गत सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण राजपत्रित व अराजपत्रित के बीच किया जाता है।

12.5.1 प्रथम प्रणाली के आधार पर वर्गीकरण

प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में राज्य सेवाओं का अधिकारी वर्ग आता है। जबकि तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में क्रमशः लिपिक तथा शारीरिक कार्य करने वाले कर्मचारी शामिल हैं।

1. **प्रथम श्रेणी की सेवाएं-** प्रथम श्रेणी की सेवाओं में सामान्यतः समयबद्ध वेतनमान वाले पद तथा सामान्य समयबद्ध वेतनमान से अधिक वेतन वाले कुछ पद शामिल होते हैं। साधारणतया प्रत्येक विभागीय सेवा में प्रथम श्रेणी संवर्ग होता है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं से पदोन्नति द्वारा तथा राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा सीधे भर्ती द्वारा होती है। सामान्यतः यह लिखित तथा व्यक्तित्व परीक्षण द्वारा होती है।
2. **द्वितीय श्रेणी की सेवाएं-** द्वितीय श्रेणी की सेवाएं अधीनस्थ सिविल सेवाएं होती हैं। जैसे- अधीनस्थ पुलिस सेवा आदि। द्वितीय श्रेणी की सेवाएं प्रथम श्रेणी की सेवाओं की तुलना में स्तर तथा उत्तरदायित्व की दृष्टि से नीचे होती हैं। फिर भी ये इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इनकी नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकार के हाथों में होना आवश्यक है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं में सबसे महत्वपूर्ण अधीनस्थ सिविल सेवा है। यहाँ तक

कि कुछ राज्यों में इस सेवा के लिये अन्य द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की अपेक्षा उँचे वेतनमान निर्धारित किये गये हैं।

3. **तृतीय श्रेणी की सेवाएं-** तृतीय श्रेणी की सेवाओं को दो भागों में बाँटा गया है-
    - अधीनस्थ कार्यपालक- जैसे नायब तहसीलदार, पुलिस सब इंस्पैक्टर, उप शिक्षा निरीक्षक आदि।
    - लिपिकीय सेवाएं- इन पदों के लिये भर्ती आंशिक रूप से लोक सेवा आयोग द्वारा तथा आंशिक रूप से विभागीय या जिला अध्यक्षों के स्तर पर की जाती है।

12.5.2 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण की दूसरी प्रणाली उन्हें राजपत्रित तथा अराजपत्रित श्रेणी में रखती है। एक राजपत्रित सरकारी कर्मचारी वो होता है जिसकी नियुक्ति, तबादला, पदोन्नति, सेवा निवृति आदि की घोषणा राज्यपाल के आदेश द्वारा जारी की गयी अधिसूचना के रूप में सरकारी राजपत्र में की जाती है। राजपत्रित अधिकारी एक कार्यालय का प्रभारी होता है। राजपत्रित पदों में अखिल भारतीय सेवाएं तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की राज्य सेवाएं शामिल होती हैं। अराजपत्रित पदों में तृतीय व चतुर्थ श्रेणी की सेवाएं होती हैं।

12.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती

भर्ती में तीन प्रथक किन्तु अन्तरसम्बद्ध प्रक्रियाएं शामिल हैं-

1. पदों के लिये आवेदन करने वाले योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करना।
2. खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर, कार्य के लिये उम्मीदवारों का चयन।
3. चयन किये गये उम्मीदवारों को उचित स्थान पर नियुक्त करना, जिसमें सम्बद्ध लोगों को अधिकृत अधिकारी द्वारा नियुक्ति-पत्र जारी करना।

पहली दो प्रक्रियांए एक स्वतंत्र भर्ती करने वाली एजेंसी द्वारा की जाती है। राज्यों में यह कार्य सिविल सेवा आयोग द्वारा किये जाते हैं। तीसरी प्रक्रिया राज्य सरकार का दायित्व है। इसलिये यह याद रखना अति आवश्यक है कि लोक सेवा आयोग केवल भर्ती करने वाली सलाहकारी एजेंसी है, नियुक्त करने का अधिकार सरकार के पास है।

भर्ती की विशेषताओं में, राज्य सिविल सेवा के लिये भर्ती की आयु न्यूनतम 21 वर्ष से अधिकतम 35 वर्ष निर्धारित की गयी है। अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़ी जाति को संवैधानिक आधार पर आयु सीमा में छूट दी जाती है। भर्ती लोक सेवा आयोग की खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर की जाती है। इससे उच्च पदों पर राज्य सेवकों की भर्ती पदोन्नति द्वारा की जाती है। भरे जाने वाले रिक्त पदों को हर वर्ष विज्ञापित किया जाता है तथा सारे देश से उम्मीदवारों से आवेदन पत्र आमंत्रित किये जाते हैं। न्यूनतम योग्यता किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि है। चयन के लिये प्रतियोगिता परीक्षा के तीन चरण हैं- प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा व साक्षात्कार। लिखित परीक्षा के कुछ निश्चित अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को व्यक्तित्व परीक्षण के लिये बुलाया जाता है। जो लगभग आधे घन्टे की अवधि वाला साक्षात्कार होता है। सफल उम्मीदवार की सूची योग्यतानुसार तैयार कर सरकार के पास आवश्यक कार्यवाही अर्थात नियुक्ति पत्र जारी करने के लिये भेज दी जाती है। नियुक्त करने का अधिकार केवल सरकार को होता है।

12.7 आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधान

राज्य लोक सेवा से सम्बन्धित संविधान में निम्न प्रावधानों दिये गये हैं-

1. संविधान के अनुच्छेद- 315 में लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान है। इसके अनुसार संघ तथा प्रत्येक राज्य के लिये एक लोक सेवा आयोग होगा।
2. अनुच्छेद- 316 ऐसे आयोगों के गठन का निर्धारण करता है। यह अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के तरीके तथा उनके पद की शर्तों का भी वर्णन करता है। इसके अन्तर्गत अध्यक्ष व सदस्यों के कार्यकाल का वर्णन भी किया गया है। अनुच्छेद- 317 उन कारणों व प्रक्रियाओं का उल्लेख करता है, जिसके द्वारा इस कार्यकाल से पहले सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।
3. आयोग की स्वतंत्रता को देखते हुए अनुच्छेद- 318, 319 तथा 322 में ऐसे उपायों का उल्लेख है, जिनसे आयोग की सुरक्षा तथा मजबूती हो सके।
4. आयोग के कार्यों एवं दायित्वों के क्षेत्र तथा भर्ती करने वाली एजेंसी में उनकी भूमिका का दायरा क्या हो? इन प्रश्नों का उत्तर अनुच्छेद- 320, 321 व 323 में दिया गया है।
5. अनुच्छेद- 323 में यह व्यवस्था है कि आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करेगा, जिनमें अन्य बातों के साथ सरकार द्वारा सलाह को स्वीकृति दिये जाने वाले मामलों का उल्लेख किया जायेगा तथा सलाह न मानने के कारण का भी उल्लेख किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि इन रिपोर्टों को उपयुक्त विधान मंडलों के समक्ष पेश किया जायेगा।

आयोग का गठन के लिए राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। संविधान में कहा गया है कि इसका निर्णय राज्यपाल द्वारा किया जायेगा। आयोग के कम से कम आधे सदस्य वे होंगे, जिन्हें केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो। सदस्यों का कार्यकाल 06 वर्ष या 60 वर्ष तक की आयु तक होता है। नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। परन्तु सदस्यों को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है, न कि राज्यपाल द्वारा। सदस्यों की सेवा-शर्तें राज्यपाल द्वारा निर्धारित होती हैं, परन्तु महत्वपूर्ण बात ये है कि संविधान में यह व्यवस्था है कि ये उनके अहित में नहीं बदली जा सकती। इन सब में वह सुरक्षा निहित है, जिनसे आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है।

12.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग

उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम- 2000 के द्वारा उत्तराखण्ड राज्य दिनांक 9 नवम्बर 2000 को भारतीय गणतंत्र का 27वाँ राज्य बना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 315 के अन्तर्गत उत्तराखण्ड राज्य के गठन के साथ ही उत्तराखण्ड शासन के शासनादेश संख्या- 247/एक-कार्मिक-2001, दिनांक 14 मार्च 2001 द्वारा जनपद हरिद्वार में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की स्थापना हुई। आयोग के प्रथम अध्यक्ष श्री एन0पी0 नवानी, सेवानिवृत आई0ए0एस0 की नियुक्ति के साथ ही आयोग 15 मई 2001 को अस्तित्व में आया। शासनादेश संख्या 1455/कार्मिक-2/2001, दिनांक 29 अगस्त 2001 द्वारा आयोग के संरचनात्मक ढ़ाँचे का गठन हुआ। आयोग के माननीय अध्यक्ष व माननीय सदस्यों के पदों सहित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के 73 पदों की स्वीकृति शासन द्वारा प्रदान की गयी। वर्तमान में माननीयअध्यक्ष, माननीय सदस्य (04 पद) परीक्षा नियंत्रक, संयुक्त सचिव(विधि)-01पद, संयुक्त सचिव प्रशासन एक पद सहित अधिकारियों/कर्मचारियों तथा चतुर्थ श्रेणी के कुल 143 पद स्वीकृत हैं।

12.9 आयोग के कार्य

भर्ती करने वाली एजेंसी के रूप में राज्य लोक सेवा आयोग का मुख्य कार्य सिविल सेवाओं की नियुक्ति के लिये परीक्षाओं का आयोजन करना। परन्तु इसके अलावा कुछ और कर्तव्य होते हैं जिन्हें लोक सेवा आयोग द्वारा पूरा किया जाना होता है। जैसे-

1. राज्य सरकार को ऐसे विषय में सलाह देना, जो राज्यपाल द्वारा इसके पास भेजा गया हो।
2. ऐसे अतिरिक्त कार्य सम्पन्न कराना जो विधानमण्डल के एक्ट द्वारा प्रदान किये गये हों। इसका सम्बन्ध राज्य सिविल सेवा या स्थानीय प्राधिकरण की सेवाओं या अन्य निगमित सेवाओं से हो सकता है।
3. कार्य की वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल को पेश करना।

इसके अलावा संविधान में यह भी व्यवस्था है कि निम्न मामलों में आयोग से विचार-विमर्श लिया जायेगा-

- सिविल सेवाओं व सार्वजनिक या सिविल पदों की भर्ती के तरीकों से सम्बन्धित सभी मामले।
- सिविल सेवाओं तथा पदों की नियुक्ति के लिये एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला तथा पदोन्नति करने के लिये तथा ऐसी नियुक्तियां/पदोन्नतियों तथा तबादलों के लिये उम्मीदवारों की उपयुक्तता के सन्दर्भ में अपनाये जाने वाले सिद्धान्त।
- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत किसी व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही।
- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत या सेवानिवृत व्यक्ति या उसकी ओर से कोई व्यक्ति यदि यह मांग या दावा करें कि उसे उस व्यय की पूरी राशि का भुगतान राज्य की संचित निधि से किया जाये जो उसने अपने विरूद्ध दायर मुकदमें में कानूनी कार्यवाही करने में खर्च की, क्योंकि वह मुकदमा उसके द्वारा सम्पादित कार्यों के विरूद्ध किया गया था तो इस पर भी लोक सेवा आयोग की सलाह की जायेगी।
- राज्य सरकार के अधीन सेवा के दौरान लगी क्षति के संवर्धन में पेंशन दिये जाने के दावे।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि लोक सेवा आयोग एक भर्ती एजेंसी के रूप में कार्य करता है। परन्तु यह कुछ अर्ध-विधायी तथा अर्ध-न्यायिक कार्य भी सम्पन्न करता है।

12.10 आयोग की स्वतंत्रता

एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि आयोग को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का प्रावधान संविधान में दिया गया है। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार-

1. सत्ता के सम्भावित दुरूपयोग को रोकने के लिये भर्ती तथा पद से हटाने की शक्ति दो अलग-अलग अधिकारियों को सौंपी गयी है। अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु उसे पद से हटाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है।
2. संविधान में उल्लिखित कारणों तथा प्रक्रिया द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है।
3. सदस्यों का वेतन तथा उसकी सेवा शर्तें, उसकी नियुक्ति के पश्चात उसके अहित में नहीं बदली जा सकती।
4. आयोग के सभी खर्च राज्य की संचित निधि से होते हैं।
5. आयोग के सदस्य तथा अध्यक्षों के ऊपर सरकार के अधीन भविष्य में पद ग्रहण करने के सम्बन्ध के कुछ प्रतिबंध लगाये गये हैं। सेवा निवृति के पश्चात वे केन्द्र या राज्य आयोग से बाहर सरकारी पद ग्रहण नहीं कर सकते।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में वर्णित है?
2. राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली सबसे बड़ी एजेंसी को क्या कहते हैं?
3. आयोग के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष होता है?

4. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग का गठन कब किया गया?
5. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष कौन हैं?

12.11 सारांश

राज्य स्तर पर अनेक प्रकार के नियमितता तथा विकास सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन ने यह आवश्यक बना दिया है कि एक बड़ी तथा सुगठित सिविल सेवा उनके द्वारा बनायी जाये, जो योग्यता प्रणाली पर आधारित हो। सरकार की ये सेवाएं कैरियर सेवाएं हैं, जिनकी भर्ती एक खुली प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है। खुली प्रतियोगिता परीक्षओं की अवधारणा का जन्म उन्नीसवीं सदी के दौरान हुआ। इन सेवाओं को बनाते समय इस बात पर विचार किया गया कि सिविल सेवाओं की भर्ती, वेतन, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण तकनीकी एवं व्यवसायिक कारणों पर आधारित हो न कि राजनीतिक विचारों पर। राज्य लोक सेवा आयोग को राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखा गया। आयोग सरकारी व्यवस्था को निरंतरता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि आयोग निष्पक्ष होकर सिविल सेवकों को चुनता है और सरकार को नियुक्ति हेतु भेज देता है। लोक सेवा आयोग किसी भी राज्य के लिये नियुक्ति की सबसे महत्वपूर्ण एजेंसी है।

12.12 शब्दावली

प्रत्यायोजन- कार्यों और शक्तियों को अधीनस्थ को अपनी सुविधा के अनुसार सौंपना, अतिक्रमण- नियम या कानून का उल्लंघन, नियन्त्रक- शासकीय अधिकारी

12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.अनुच्छेद- 315, **2.** लोक सेवा आयोग, **3.** 06 वर्ष, **4.** 14 मार्च 2001, **5.** श्री एन0 पी0 नवानी

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी0 डी0बसु- भारत का संविधान।
2. सुभाष कश्यप- हमारी संसद।
3. सुभाष कश्यप- हमारा संविधान।

12.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी व अवस्थी- भारतीय प्रशासन।
2. शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन- सिद्धान्त व व्यवहार।
3. डॉ0 सविता मोहन व हरीश यादव- उत्तरांचल समग्र अध्ययन।

12.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की विस्तृत वर्णन करें।
2. राज्य स्तर की सेवाओं के वर्गीकरण का आधार क्या है?
3. आयोग का गठन कैसे होता है? तथा वह कार्य कैसे करता है?
4. आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधानों पर एक लेख लिखिये।

इकाई- 13 भर्ती, प्रशिक्षण(ए0टी0आई0 के सन्दर्भ में) और पदोन्नति

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 भर्ती
13.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व
13.2.2 भर्ती की रीतियाँ
13.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती
13.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण
13.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती
13.3 प्रशिक्षण
13.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य
13.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- 'उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी'(ए0टी0आई0)का इतिहास
13.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा
13.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम
13.5 पदोन्नति
13.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास
13.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण तत्वों में एक हैं। कार्मिक प्रबन्ध या कार्मिक प्रशासन या मानवीय संसाधन प्रबन्ध किसी भी संगठन के कार्यकर्ताओं के प्रबन्ध को कहते हैं। कार्मिक प्रबन्ध की परिभाषा करते हुए एम0 जे0 जूशियन ने कहा कि ''यह प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जो कर्मचारियों की भर्ती, विकास तथा उपयोग करने के कार्यों के नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियंत्रण से सम्बन्धित है।'' कार्मिक प्रबन्ध को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। योग्य कर्मचारी किसी भी संगठन की रीढ़ होते हैं।

पदोन्नति का अर्थ, पद और स्तर में वृद्धि से है। पद और स्तर में वृद्धि के साथ पारिश्रमिक में भी वृद्धि होती है। इन सभी विषयों पर हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन किसे कहते हैं, इसे जान पायेंगे।
- भर्ती क्या है तथा भर्ती की रीतियाँ क्या हैं और भर्ती के गुण क्या हैं, इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- प्रशिक्षण के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- उत्तराखण्ड के प्रशिक्षण केन्द्र ए0 टी0 आई0 और उसकी प्रशिक्षण की प्रणाली को समझ पायेंगे।
- पदोन्नति और पदोन्नति के सिद्धान्त को समझ पायेंगे।

13.2 भर्ती

सामान्य अर्थो में भर्ती शब्द को नियुक्ति का समानार्थक माना जाता है परन्तु यह सही नहीं हैं। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में भर्ती का अर्थ है, किसी पद के लिये समुचित तथा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करना है। भर्ती और चयन की प्रक्रिया ही शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। जैसा कि स्टाल का कथन है कि ''यह सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचे की आधारशिला है।''

13.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व

भर्ती के अनिवार्य तत्वों को निचे दिये गये बिन्दुओं के माध्यम से जानने का प्रयास करते हैं-

1. भर्ती प्रक्रिया मानव शक्ति योजना के साथ जुड़ी हुई और समन्वित होनी चाहिये।
2. भर्ती प्रक्रिया को समूचे कार्मिक कार्यों का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये।
3. भर्ती प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिये जो भर्ती योजनाओं को बनाते और लागू करते समय कार्मिक भागीदारी को प्रोत्साहन दे।
4. भर्ती प्रक्रिया ध्यानपूर्वक नियोजित, संगठित, निर्देशित और नियंत्रित होनी चाहिये।
5. लोगों के विश्वास को बनाने के लिए भर्ती प्रक्रिया में उचित और निष्पक्ष मापदण्ड होना चाहिये।
6. भर्ती प्रक्रिया में ऐसी कार्यविधियों और तरीकों का प्रयोग होना चाहिये, जिससे आवेदन पत्रों को शीघ्रता से निपटाया जा सके।
7. भर्ती करने वाली एजेन्सी को समूची प्रकिया में सकारात्मक रुचि लेनी चाहिये।

13.2.2 भर्ती की रीतियाँ

भर्ती की सबसे अधिक प्रचलित रीति यह है कि समाचार-पत्रों में रिक्त स्थान शीर्षक से विज्ञापन अथवा राजपत्रों में विज्ञप्तियाँ प्रकाशित कराई जाये। इस पद्धति के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि भले ही यह पद्धति अधिक संख्या में आवेदन-पत्रों को आकर्षित करने में सफल हो जाये, तथापि यह आवश्यक नहीं है कि इस पद्धति के द्वारा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवार आकर्षित हो सकेंगे। उसके लिये यह आवश्यक है कि भर्ती करने वाले अधिकारी अधिक सक्रियतापूर्वक कार्य करें। सही प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करने की चेष्टा को सचेष्ट भर्ती कहते हैं तथा बिना प्रयास के की जाने वाली भर्ती को सामान्य भर्ती अथवा निष्क्रिय भर्ती कहलाती है। सचेष्ट भर्ती के विविध साधन हैं, जैसे- पोस्टर, परिचय-पत्र, समाचार-पत्र अथवा पत्र-पत्रिकाओं में सचित्र विज्ञापन एवं सिनेमा द्वारा विज्ञापन। ये पद्धतियाँ तब प्रयोग में लायी जाती हैं जब बड़े पैमाने पर भर्ती करनी हो, जैसे- युद्धकाल में प्रतिरक्षा सेनाओं के लिए।

भर्ती की दूसरी पद्वति यह है कि सीधे उन्हीं स्रोतों को खटखटाया जाये जहाँ से उम्मीदवार उपलब्ध हो सकें। उच्च पदों की भर्ती के लिये प्रायः विशेष योग्यता अथवा अनुभव की आवश्यकता होती है। अतः उनके मामले में भर्ती करने वाले अधिकारी सम्बन्धित क्षेत्र में ऐसे लोगों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं जो अपनी कुशलता के लिये प्रसिद्ध हों तथा उनके साथ शर्तों के बारे में चर्चा कर सकते हैं। शर्तें तय हो जाने के बाद उनसे औपचारिक रुप में आवेदन-पत्र माँगे जा सकते हैं।

13.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती

उच्चतर पदों की भर्ती करने के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे पद उन समस्त उम्मीदवारों के लिये खुले रखे जायें जो उनके लिये आवेदन करना चाहते हैं अथवा उन व्यक्तियों तक ही सीमित रखें जाये जो पहले से ही सेवा कर रहें हैं। यदि पहला मार्ग अपनाया जाता है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती की रीति कहा जायेगा और दूसरे मार्ग को पदोन्नति द्वारा भर्ती की रीति। यह स्पष्ट है कि निम्नतम पदों पर भर्ती प्रत्यक्ष रीति से ही किया जाना चाहिये, क्योंकि उसके नीचे कोई ऐसा कार्मिक स्तर नहीं होता जिससे पदोन्नति करके भर्ती की जा सके। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि सचिवों एवं विभागाध्यक्षों जैसे उच्चतम पदों अथवा जिलाधीश जैसे महत्वपूर्ण पदों के लिये बाहर से नये और अनुभवहीन व्यक्तियों का भर्ती किया जाना ठीक नहीं होगा, भले ही वे कितने भी योग्य क्यों न हो।

1. **प्रत्यक्ष भर्ती के गुण-** प्रत्यक्ष भर्ती का पहला गुण यह है कि यह लोकतंत्र के इस सिद्धान्त के अनुरुप है कि समस्त योग्य व्यक्तियों का सेवापद प्राप्त करने का समान अवसर होना चाहिये। दूसरा, प्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा अधिक विस्तृत स्रोतों तक पहुँचा जा सकता है, जिसके परिणामस्वरुप अधिक योग्य और प्रतिभाशाली लोगों तक पहुँचा जा सकता है। तीसरा, प्रत्यक्ष भर्ती के परिणामस्वरुप सेवाओं में नया रक्त निरन्तर प्रवेश कर सकता है तथा सेवाओं पर पुराने एवं रुढ़िवादी लोगों को आधिपत्य जमाने से रोकती है। साथ ही निम्नतर पदों का अनुभव उच्चतर पदों के लिये लाभदायक होने की अपेक्षा हानिकारक अधिक सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में पदोन्नति के द्वारा उच्चतर पद जीवन में बहुत देर से प्राप्त होता है। पाँचवा, प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में वे युवा व्यक्ति जो विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके आते हैं, शासकीय सेवाओं के प्रति तनिक भी आकर्षित नहीं होते हैं। परिणामस्वरुप शासकीय सेवाओं को हीन व्यक्तिओं से ही संतोष करना पड़ेगा।
2. **प्रत्यक्ष भर्ती के दोष-** प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली का पहला दोष यह है कि इसके द्वारा सेवाओं में ऐसे लोग प्रवेश पा जाते हैं जिन्हें पिछला कोई शासकीय अनुभव नहीं होता, जिसके परिणामस्वरुप उन्हें किसी भी महत्वपूर्ण पद के दायित्व सौंपने से पहले दीर्घकाल तक प्रशिक्षण देना पड़ता है। दूसरे, प्रत्यक्ष भर्ती के कारण निम्नतर श्रेणियों में अच्छा काम करने का उत्साह कम हो जाता है, क्योंकि उस श्रेणी के कर्मचारी यह सोचने लगते है कि चाहे उनका काम कितना भी अच्छा क्यों न हो, उन्हें उच्चतर पद प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा। तीसरे, प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में एक दोष यह भी है कम आयु के लोग अधिक आयु और अधिक अनुभव के लोगों के ऊपर नियुक्त कर दिये जाते हैं, जिससे उनके भीतर असंतोष उत्पन्न होता है और उनकी कार्य क्षमता घट जाती है।

13.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण

उम्मीदवारों के चयन के लिये किये जाने वाले परीक्षण दो प्रकार के होते हैं- प्रतियोगिता परीक्षण और प्रतियोगितारहित परीक्षण। प्रतियोगिता परीक्षण का आयोजन दोहरा होता है, पहला तो यह पता लगाना कि कौन उम्मीदवार ऐसे हैं जिनमें न्यूनतम निर्धारित योग्यता है, दूसरा यह पता लगाना कि योग्यता की दृष्टि से उनकी तुलनात्मक स्थिति क्या है। योग्यता परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि प्रतियोगिता परीक्षणों का दोहरा मानदण्ड

अपनाया जाये। लोकसेवाओं के लिये केवल उन लोगों का चयन नहीं किया जाना चाहिये जो न्यूनतम योग्यता की शर्तों को पूरा करते है वरन् उनमें श्रेष्ठतम का चयन होना चाहिये। उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता और उपयुक्तता की जाँच करने के लिये चार प्रकार के परीक्षण प्रचलित हैं- लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा (साक्षात्कार), कार्यकुशलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन तथा शिक्षा एवं अनुभव के मूल्यांकन द्वारा तुलनात्मक चयन। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी होते हैं।

13.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती

भारत में वरिष्ठ लोक सेवाओं के लिए गठित शाही आयोग, जिसे ''ली आयोग'' भी कहते हैं, ने सन् 1924 में यह मत व्यक्त किया था कि ''जो कुछ प्रजातांत्रिक संस्थाएं विद्यमान हैं, उनके अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि यदि दक्ष लोक सेवा की व्यवस्था की जाती है तो यह आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रभावों से उसकी रक्षा हो और उसे स्थायित्व तथा सुरक्षा प्रदान की जाये। जो निष्पक्ष तथा कुशल साधनों से उसके सफलतापूर्वक कार्य करने के लिये आवश्यक होते हैं तथा जिन साधनों द्वारा सरकारें चाहे वो किसी भी प्रकार की हों, अपनी नीतियों को लागू कर सकें।'' आज प्रत्येक प्रजातांत्रिक देश ने लूट-प्रणाली से बचने के लिये लोक सेवाओं की भर्ती का कार्य एक स्वतंत्र निकाय बना कर लोक सेवा आयोग को सौंपा है। भारत में सन् 1919 के 'भारत शासन अधिनियम' द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी थी, यद्यपि यह आयोग सन् 1926 में स्थापित किया गया। सन् 1935 के 'भारत शासन अधिनियम' ने केवल संघ लोक सेवा आयोग की ही व्यवस्था नहीं की बल्कि प्रान्तों के लिये लोक सेवा आयोग की भी व्यवस्था की। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद- 115 में यह व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है।

भारत की लोक सेवाओं का वर्गीकरण ग्रुप ए, ग्रुप बी और ग्रुप सी में किया गया है। ग्रुप ए में कई संगठित सेवाऐं सम्मिलित की गयी हैं, जैसे- भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण, तथा लेखाकरण सेवा आदि। अखिल भारतीय सेवाओं तथा ग्रुप ए व ग्रुप बी की कुछ सेवाओं में भर्ती सिविल सर्विसेज परीक्षा द्वारा की जाती है। कुछ केन्द्रीय सेवाओं, जैसे- भारतीय आर्थिक या सांख्यिक सेवा, कनिष्ठ वेतनक्रमों के अतिरिक्त विशिष्ट उच्चतर वेतनक्रमों में पार्श्व भर्ती की भी व्यवस्था है। केन्द्रीय सेवाओं के आधीन ग्रुप सी सेवाओं और पदों, जैसे- क्लर्क, स्टैनोग्राफर, एकाउंटेन्ट आदि की भर्ती के लिये स्टाफ चयन आयोग (एस0एस0सी0) की स्थापना की गयी है जो इस उद्देश्य से परीक्षाओं का प्रबन्ध करता है।

13.3 प्रशिक्षण

लोक सेवकों का शिक्षण तथा प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिये नितान्त आवश्यक है। भर्ती की नीति के कारण भी प्रशिक्षण का महत्व बढ़ता जा रहा है। भर्ती की नीति में सामान्य योग्यताओं को प्राथमिकता दी जाती है और शासन के प्रसार के साथ ही इसके कार्य अत्यन्त प्राविधिक, विशिष्ट तथा जटिल होते जा रहे हैं। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि सरकारी कृत्यों के लिये लोक कर्मचारी को भली प्रकार से तैयार किया जाये।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण का अर्थ वह प्रत्यक्ष प्रयत्न है जिसके द्वारा कर्मचारी अपने कौशल, अपनी क्षमता एवं अपनी प्रतिभा को बढ़ाता है। व्यापक अर्थ में प्रशिक्षण का तात्पर्य एक विशेष ऐसा शिक्षण समझा जाता है जिसके द्वारा इष्ट कौशल की लगातार वृद्धि होती रहती है। प्रशिक्षण शिक्षा से भिन्न होता है, प्रशिक्षण का क्षेत्र और उद्देश्य संकुचित होते हैं। प्रशिक्षण में व्यक्ति की प्रवृति एवं उच्च विचार को विशेष मोड़ दिया जाता है। लोक प्रशासन के प्रसंग में प्रशिक्षण और शिक्षा के बीच जो व्यवहारिक भेद किया जाता है वह यह है कि प्रशिक्षण किसी विशेष व्यवसाय के क्षेत्र में विशेष कौशल बढ़ाता है, परन्तु शिक्षा बुद्धि और मन का विस्तार करती है। शिक्षा सर्वतोन्मुखी और सैद्धान्तिक होती है तो प्रशिक्षण अपेक्षाकृत व्यवहारिक और विशेष-धन्धी।

13.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य

किसी भी संगठन की सफलता का प्रमुख कारण है- सौंपे गये विशेष कार्य को पूरा करने में व्यक्ति की प्रावधिक कुशलता तथा किसी निकाय के सदस्यों के सामूहिक उत्साह एवं दृष्टिकोण से प्राप्त कुछ अस्पष्ट सी कुशलता। प्रशिक्षण इन दोनों तत्वों को ध्यान में रख कर दिया जाता है। प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. प्रशिक्षण का प्रयत्न ऐसे लोक सेवकों का निर्माण करना होना चाहिए जो कार्य में निश्चित ही सुस्पष्टता ला सकें।
2. लोक सेवकों को उन कार्यों के अनुकूल बनाना, जिनके पालन का दायित्व उनको सौंपा गया है। लोक सेवा के लिये यह आवश्यक है कि वह नवीन आवश्यकताओं के अनुसार अपने दृष्टिकोण व तरीके में परिर्वतन लायें।
3. आवश्यकता इस बात की भी है कि नौकरशाही की मशीन के चक्कर में पड़कर लोक सेवकों का कहीं यंत्रीकरण न हो जाये।
4. जहाँ तक व्यावसायिक प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, केवल उसी कृत्य का प्रशिक्षण देना पर्याप्त नहीं है, जो उसके समक्ष हैं एवं उसे तत्काल करने हैं। प्रशिक्षण केवल इसलिये नहीं होना चाहिए कि कोई व्यक्ति अपने विद्यमान कार्य को अधिक कुशलता के साथ कर सके, बल्कि उसका उद्देश्य उसे उन दायित्वों के योग्य बनाना होना चाहिए और उसकी उच्च कार्यक्षमता का विकास किया जाना चाहिए।
5. मानव समस्या को ध्यान में रखते हुए तथा प्रशिक्षण योजनाओं को सफल बनाने के उद्देश्य से कर्मचारी वर्ग के मनोबल पर समुचित ध्यान देना चाहिए।

13.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी(ए0टी0आई) का इतिहास

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर का बहुत रोचक एवं गौरवपूर्ण इतिहास है, सन् 1951 में ‘‘अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल’’ के नाम से इलाहाबाद में स्थापित इस संस्थान को जब सन् 1971 में नैनीताल के शान्त एवं सुरम्य वातावरण में लाने का निर्णय लिया गया तब आर्डवैल (उच्चरथ नगर-High Town) कैम्प परिसर को इस संस्थान की स्थापना के लिए चुना गया आर्डवैल कैम्प में निर्मित बैरेक्स में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रॉयल एयरफोर्स के अधिकारियों के अस्थायी आवास थे तथा आर्डवैल बैरेक्स में अमेरिकन अधिकारी भी रहते थे। आर्डवैल कोठी जो कि आज निदेशक आवास है, स्वतंत्रता से पूर्व कुमाऊँ कमिश्नर का आवास हुआ करती थी। एवर्सल हाउस जजों का अतिथि गृह एवं मुख्य सचिव आवास है, जो पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त द्वारा सन् 1957 में ले लिया गया था, तब उसमें श्री हाफिज मोहम्मद इब्राहिम वित्त मंत्री, संयुक्त प्रान्त रहते थे बाद में इसे शासकीय कार्यो के लिए ले लिया गया आर्डवैल प्रांगण में बैरेक्स और क्वार्टरों के साथ एक हॉल का निर्माण किया गया था जो अंग्रेज फौजियों को अंग्रेजी चलचित्र दिखाने के लिये काम में आता था, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर डोरमेटरी के रूप में भी इसका प्रयोग होता था। दिनांक 15 मई 1947 से दिनांक 6 जून, 1947 तक संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली की 16 बैठकें आर्डवैल हॉल में आयोजित हुई थीं। उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर में स्थित आर्डवैल हॉल स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व आयोजित संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली बैठकों के पदाधिकारी के रूप में अध्यक्ष माननीय पुरूषोत्तम दास टण्डन, उपाध्यक्ष श्री नफीसुल हसन, सचिव श्री कैलाश चन्द्र भटनागर इत्यादि कई अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा भाग लिया गया था।

विगत कुछ दशकों में किये गये नीतिगत परिवर्तनों, विशेषकर अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, संचार साधनों व सूचना तकनीकि क्षेत्र में हुई क्रान्ति इत्यादि ने शासन एवं इसके विभिन्न

अभिकरणों की भूमिका को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। निःसन्देह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं का भी राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक हितों तथा नीतियों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तनों एवं प्रभावों के परिणामस्वरूप शासन तंत्र से जन अपेक्षाओं में वृद्धि हुई है, शासन तंत्र से इन बदलती हुई परिस्थितियों, विशेषकर बढ़ती हुई जन अपेक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शासन तंत्र अर्थात् विभिन्न विभागों और इनमें सेवारत कार्मिकों को विभिन्न परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के समाधान करने एवं नये लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सक्षम बनाने हेतु, उनके ज्ञान व कौशल में निरन्तर अभिवृद्धि हेतु प्रयास किये जाऐं। यह एक अविवादास्पद तथ्य है कि प्रशिक्षण सेवारत कार्मिकों को कार्य निष्पादन हेतु कुशल, प्रभावी एवं समक्ष बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह भी दृष्टिगोचर हुआ कि प्रभावी रूप से संचरित एवं संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा संगठन एवं सेवारत कार्मिकों के मनोबल को ऊँचा उठाने एवं उनके दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन में सहायक होता है। अतः जन-सामान्य की अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु शासन के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है, क्योंकि प्रदेश का समग्र विकास सेवारत कार्मिकों की कार्य कुशलता, कार्यदक्षता व योग्यता एवं शासन की प्राथमिकताओं के अनुरूप विकास एवं कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर जन अपेक्षाओं के अनुरूप उनके कार्य व्यवहार पर प्रायः निर्भर करता है।

प्रदेश शासन को मानव संसाधन विकास व प्रशिक्षण सम्बन्धी विषय पर नीतिगत परामर्श देने, राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रयासों को सुदृढ करने एवं राज्य के अधिकारियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने के उद्देश्य के साथ उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल को स्थापित व विकसित किया गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विगत वर्षों की उपलब्धियों के परिणमस्वरूप इस अकादमी ने प्रदेश व सम्पूर्ण देश में क्षमता विकास के एक अग्रणी संस्था के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की है । उत्तराखण्ड में, उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी, नैनीताल को एक शीर्ष प्रशिक्षण संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। तद्नुसार अकादमी, शासन तंत्र एवं अकादमी के उद्देश्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं सम्बन्धित गतिविधियों का आयोजन प्रतिवर्ष सफलतापूर्वक करती आ रही है।

अकादमी की स्थापना वर्ष 1951 में भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तर प्रदेश संवर्ग) तथा राज्य सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) के अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिये इलाहाबाद में 'अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल' (ओ0टी0एस0) के रूप में की गयी। वर्ष 1958 में इस स्कूल के प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिये भी व्यावसायिक प्रशिक्षण आरम्भ किया गया। वर्ष 1961 तक स्कूल में प्रान्तीय सिविल सेवा अधिकारियों के लिये नियमित रूप से प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण वर्ष 1961 में स्कूल की गतिविधियाँ तात्कालिक रूप से स्थगित कर दी गयी।

वर्ष 1971 में पुनः अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल को नैनीताल के वर्तमान परिसर में स्थापित कर दिया गया। नैनीताल में आयुक्त स्तर के अधिकारी को इस स्कूल का पूर्णकालिक प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। वर्ष 1974 में स्कूल के नाम को परिवर्तित कर 'प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान' कर दिया गया। वर्ष 1976 से संस्थान के विभिन्न पदों के पदनाम भी बदल दिये गये। संस्थान में अब निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप-निदेशक तथा सहायक निदेशक नियुक्त किये गये। प्रशिक्षण के बदलते स्वरूप एवं संस्थान की बढ़ती हुई गतिविधियों को देखते हुए, वर्ष 1988 में इसे प्रदेश का शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्थान घोषित किया गया तथा संस्थान की बढ़ती गतिविधियों एवं बदलते लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इसका नाम परिवर्तित करते हुए इसे 'उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी' कर दिया गया।

13.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा

9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य गठन के पश्चात यह 'उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी' के रूप में स्थापित हो गया। वर्तमान में इसके नाम में परिवर्त करते हुए यह अकादमी अब डॉ0 रघुनन्दन सिंह टोलिया उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी के नाम से है। अब यह उत्तराखण्ड राज्य की शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्था के रूप में अपने दायित्वों को पूर्ण कर रही है। वर्तमान में अकादमी द्वारा उत्तराखण्ड राज्य के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। अकादमी वर्तमान में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों हेतु आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्सों के अतिरिक्त प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा), भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग), भारतीय वन सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग) के अधिकारियों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन कर रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा भारत सरकार व प्रदेश शासन के विभिन्न विभागों के अधिकारियों के लिये सेवाकालीन तथा विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

उत्तराखण्ड राज्य द्वारा उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयनित सभी अधिकारियों के लिये तीन सप्ताह का सेवा प्रवेश प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है। सेवा प्रवेश प्रशिक्षण का उद्देश्य नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य की चुनौतियों तथा अवसरों के बारे में नव-नियुक्त अधिकारियों को अद्यतन सूचना से अवगत कराना तथा उनमें प्रबन्धकीय कौशल का विकास करना है। जिससे वे अपने-अपने क्षेत्रों में गुणात्मक सेवाएँ प्रदान कर सकें, तथा उनमें उत्तराखण्ड राज्य की सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में उचित समझ विकसित हो सके। अकादमी द्वारा राज्य के अधिकारियों के क्षमता विकास हेतु अनेकों प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है जिससे वह सुयोग्य, व्यावसायिक एवं प्रतिबद्वतापूर्ण लोक सेवक के रूप में राज्य के विकास में सहयोग दे सकें। अकादमी द्वारा कई ऐसे विभागों के लिए भी क्षमता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनके पास संस्थागत प्रशिक्षण आयोजित करने की सुविधाएँ नहीं है या प्रशिक्षण नहीं है या प्रशिक्षकों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सीमित संसाधनों से प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं। अकादमी द्वारा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक एवं प्रशिक्षण कौशल विकसित करने में सहायक कार्यक्रम जैसे डायरेक्ट ट्रेनिंग (डीओटी), इवैल्यूएशन ऑफ ट्रेनिंग (ईओटी) एवं ट्रेनिंग टैक्नीक्स इत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। अकादमी को ओवरसीज डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन, ब्रिटिश सरकार तथा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से भारत में चलाई जा रही प्रशिक्षक विकास योजना के अन्तर्गत देश के पांच प्रमुख क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों में से एक प्रमुख केन्द्र के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अन्तर्गत अकादमी देश व प्रदेश के विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत प्रशिक्षण संकाय को प्रत्यक्ष प्रशिक्षण की कला, प्रशिक्षण डिजाइन, प्रशिक्षण आवश्यकता विश्लेषण, प्रशिक्षण प्रबन्धन जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में सूचना का अधिकार अधिनियम- 2005 के क्रियान्वयन की दशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। आन्तरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रूप से प्रकाशित किया जाता है, साथ ही अपर निदेशक को लोक सूचना अधिकारी तथा निदेशक को अपीलीय अधिकारी के रूप में अधिसूचित किया गया है। अकादमी में सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन हेतु एक-एक अलग प्रकोष्ठ उप-निदेशक के अधीन गठित किया गया है। प्रशासन में सुधार हेतु सूचना तक पहुँच को एक मुख्य क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है। सूचना तक पहुँच को एक मुख्य विकासात्मक मुद्दे के रूप में मान्यता दी गयी है, क्योंकि यह प्रशासन को अधिक उत्तरदायी तथा सहभागी बनाने के साथ शक्ति के निरंकुश प्रयोग पर रोक लगाकर अधिक पारदर्शिता को सुनिश्चित करता है। सूचना का अधिकार

जनता को उनके अधिकारों की अनुभूति कराता है। अकादमी में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आलावा यू0एन0डी0पी0 के सहयोग से सूचना के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत विस्तृत कार्य योजना तैयार की गई है।

आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी, नैनीताल में राज्य स्तर की इकाई के रूप में वर्ष 1995 में किया गया था, 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नए राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन में होने के कारण से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गई थी। इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से जुलाई 2006 में आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ पुनः उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में स्थापित किया गया। आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का कार्य मुख्यतः दैवी आपदाओं के सम्बन्ध में सूचनाओं का संकलन, डॉक्युमेन्टेशन, आपदा प्रबन्ध के सम्बन्ध में एक्शन प्लान का निर्धारण, पूर्व तैयारी, जागरूकता तथा प्रशिक्षण, कन्सलटेन्सी, शोध तथा क्षमता विकास इत्यादि के कार्य संचालित होते हैं।

13.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम

अकादमी के अन्तर्गत संचालित किये जाने वाले कार्यक्रमों में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों के आधारभूत, राज्य संवर्ग के आई0ए0एस0, आई0एफ0एस0 और पी0सी0एस0 अधिकारियों के व्यवसायिक तथा पदोन्नत उप-जिलाधिकारियों के कार्यकारी विकास तथा राज्य सिविल सेवा के अधिकारियों के सेवा कालीन प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। साथ ही प्रदेश के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों के ज्ञान व क्षमता के विकास हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। अकादमी द्वारा आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निम्न रूप से देखा जा सकता है।

1. **व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स-** अखिल भारतीय सेवा के प्रशिक्षार्थी हेतु आयोजित किये जाने वाले व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को सम्बन्धित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिए उनकी क्षमता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करना है। प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) एवं प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्सो का आयोजन किया गया। छठा आई0ए0एस0 व्यवसायिक कोर्स की अवधि 5 सप्ताह की रही, जिसमें दो आई0ए0एस0 अधिकारियों ने प्रतिभाग किया। दूसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12 सप्ताह चला, जिसमें 9 अधिकारियों ने भाग लिया। तीसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक सिविल सेवा कार्यकारी सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12 सप्ताह चला, जिसमें 13 अधिकारियों ने प्रतिभाग किया।
2. **आधारभूत प्रशिक्षण कोर्स-** आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को प्रदेश तथा सम्बन्धित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के लिए उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करना होता है। प्रादेशिक सिविल सेवा वर्ष 2004 बैच के अधिकारियों हेतु छठा आधारभूत कार्यक्रम बारह सप्ताह चला और इसमें 39 प्रतिभागियों ने भाग लिया।
3. **सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स-** उत्तराखण्ड शासन द्वारा दिनांक 17 जनवरी, 2003 को प्रेषित पत्र (संख्याः1833 एक-1-2003) द्वारा राज्य के समस्त विभागों एवं अकादमी, नैनीताल को यह सूचित किया गया था कि उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग से चयनित समस्त अभ्यर्थियों को (राज्य स्तरीय सेवा से भिन्न) कार्यभार ग्रहण कराने से पूर्व अनिवार्य रुप से आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स अकादमी नैनीताल में प्राप्त करना होगा, जिससे कि नवचयनित अधिकारियों को उनकी सेवाओं से सम्बन्धित कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से परिचित कराया जा सके।

उत्तराखण्ड शासन द्वारा नवचयनित अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से दिया गया उपरोक्त आदेश/पहल इसलिए भी महत्तवपूर्ण है कि नये राज्य उत्तराखण्ड के नवम्बर, 2000 में सृजित होने के पश्चात इस नवसृजित राज्य में नियुक्त लोक सेवकों से जन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जा रही है।

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल द्वारा 2009-2010 में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित अधिकारियों हेतु, संदर्भित वर्ष में निम्नलिखित सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स को आयोजित किया गया। व्यापार कर अधिकारी श्रेणी- 2 के अधिकारियों हेतु बीसवाँ सेवा प्रवेश प्रशिक्षण तीन सप्ताह चला, जिसमें 51 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

4. **राष्ट्रीय बैनर डिवीजन-** राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भारत सरकार के सहयोग से किया जाता है। राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के लिए निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये- कम्युनिटी पार्टीसिपेशन एण्ड मोबिलाइजेशन, आई0ए0एस0 अधिकारियों का प्रशिक्षण। तथा ग्यारहवां आई0पी0एस0-वर्टीकल इन्टरैक्शन कोर्स।
5. **प्रादेशिक बैनर डिवीजन-** भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के प्रशिक्षण प्रभाग की सहायता से राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए चिन्हित आवश्यकता आधारित विभिन्न विषयों पर आयोजित किए जाने वाले एक सप्ताह एवं तीन दिवसीय कार्यक्रम के आयोजन का दायित्व इस डिवीजन को सौंपा गया है।
6. **सूचना का अधिकार अधिनियम-** उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में, सूचना का अधिकार अधिनियम- 2005 के क्रियान्वयन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। आन्तरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रुप से प्रकाशित किया गया है।
7. **आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ-** 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड के रुप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन होने की वजह से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गयी थी, इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया। उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से अप्रैल, 2006 में अकादमी की बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की मीटिंग में निर्णय लिया गया कि इसे पुनः अकादमी में स्थापित किया जाये।

13.5 पदोन्नति

पदोन्नति का शब्दकोष में अर्थ है- पद, स्तर तथा सम्मान में वृद्धि करना या आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ- पद और स्तर में वृद्धि से है। लोक सेवा व्यावसायिक सेवा है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति सरकारी नौकरी करता है वह जीविकोपार्जन के रुप में लोक सेवा को स्वीकार करता है और सम्पूर्ण जीवन उसमें व्यतीत करता है। अर्थात समय के साथ-साथ संगठन और वरिष्ठता क्रम में सार्वजनिक कर्मचारी अपने कार्य के आधार पर आगे बढ़ता रहता है। अतः पदोन्नति लोक सेवा का एक अभिन्न अंग है।

13.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास

सन् 1669 में ईष्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के सम्बन्ध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था और इसी के साथ भारत में लोक सेवाओं का सूत्रपात हुआ। सन् 1771 में कम्पनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ प्रशासकीय दायित्व भी वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धान्त का संशोधन करते हुए योग्यता को मान्यता दी। इस सम्बन्ध में निदेशक मण्डल ने आदेश दिया कि ‘हमारी यह इच्छा है कि हमारे कर्मचारी उच्च पदों पर सेवा में

प्राथमिकता क्रम अर्थात् वरिष्ठता के आधार पदोन्नत किये जायें। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वरिष्ठता के आधार पर ही ऐसे पद पाने के अधिकारी हों, अपितु उन्हें निभ्रान्त रुप से सच्चरित्र और पर्याप्त योग्यता -सम्पन्न होना चाहिये'। सन् 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर पदोन्नति की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम लोक सभा की अनुमान समिति ने प्रशासकीय, वित्तीय और अन्य सुधारों की जाँच के दौरान पदोन्नति की रीतियों का विरोध करते हुए निम्नलिखित रीति का सुझाव दिया था, जो सभी आधुनिक देशों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में मान्य हैं-

1. पदोन्नति का आधार योग्यता होना चाहिये, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरीयता।
2. कर्मचारियों की पदोन्नति के सम्बन्ध में केवल उन्हीं व्यक्तियों को अधिकार देना चाहिये, जिन्होंने कुछ समय तक उनके कार्य और आचरण की जाँच की हो।
3. कम से कम एक त्रिस्तरीय कमेटी की सिफारिश के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिये और ऐसे मामले में, जहाँ किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की उपेक्षा की गयी हो, समिति को लिखित रुप में वरिष्ठता की उपेक्षा करने के कारणों पर प्रकाश डालना चाहिये।
4. किसी कर्मचारी को पदोन्नत किये जाने के अवसर पर उसके गोपनीय प्रतिवेदन की जाँच की जानी चाहिये और यह देखा जाना चाहिये कि उसे गलतियों के सम्बन्ध में कितनी बार चेतावनी दी गयी और इन चेतावनियों के बावजूद यदि उसके आचरण में कोई सुधार नहीं हुआ तो क्या उसे पुनः चेतावनी दी गयी?
5. यदि किसी व्यक्ति या कर्मचारी को यह चेतावनी नहीं दी गयी है तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि उसके सम्बन्ध में दिये गये प्रतिवेदन इतने अच्छे हैं कि उसे पदोन्नत कर देना चाहिये।

13.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त

पदोन्नति निम्नलिखित किसी एक सिद्धान्त पर आधारित होता है- 1. वरिष्ठता, 2. योग्यता तथा 3. वरिष्ठता तथा उपयुक्तता (या उपयुक्तता के अधीन वरिष्ठता)

लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और/या योग्यता पर आधारित होती है। ऐसे पदों पर जिनके सम्बन्ध में चयन नहीं किया जाता तथा तृतीय श्रेणी के पदों पर उपयुक्त होने पर वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था है। जिन पदों के लिए प्रत्याशियों का चुनाव किया जाता है, विशेषकर प्रथम और द्वितीय श्रेणी में पदोन्नति योग्यता के आधार की जाती है। जिन पदाधिकारियों की पदोन्नति पर विचार किया जाना है, उनकी संख्या सीमित होती है और पदोन्नत किये जाने वाले पदों की संख्या के तीन गुने से पांच गुने तक के अधिकारियों के कामों को वरिष्ठता क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। परम्परा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्य स्तर के पदों पर वरिष्ठता सहित योग्यता के आधार पर और उच्चस्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत शासन अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना कब की गयी?
2. लोक सेवाओं का वर्गीकरण कितने ग्रुपों में किया गया है?
3. उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी की स्थापना किस वर्ष हुयी?
4. सर्वप्रथम उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी का क्या नाम था?
5. प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण अकादमी ने किस वर्ष शुरु किया?
6. सूचना का अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन कब हुआ?
7. आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन अकादमी में कब किया गया?

8. पदोन्नति के तीन सिद्धान्त कौन कौन से है?

13.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि प्रशासकीय संरचना में भर्ती और चयन, प्रशिक्षण व पदोन्नति की प्रक्रिया महत्वपूर्ण स्थान होता है। जहाँ भर्ती व चयन द्वारा लोक सेवाओं का स्तर व योग्यता निश्चित होती है, वहीं प्रशिक्षण लोक सेवकों को उनके कार्यों के लिये दक्ष व व्यावहारिक बनाने में सहायक होता है। लोक सेवकों और कर्मचारियों की सेवा को देखते हुए उनकी कार्य-प्रणाली व दक्षता के आधार पर उन्हें पदोन्नत किया जाता है, जिससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है और उनकी कार्यप्रणाली में तीव्रता आती है। भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कर्मचारियों के केवल दक्षता व मनोबल ही नहीं बढ़ाते, वरन् उन्हें व्यवहार कुशल, मृदुभाषी व सहयोगी बनाते हैं। सांराशतः कहा जा सकता है कि भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचें की आधारशिला है।

13.7 शब्दावली

समानार्थक- समान अर्थ वाले, सचेष्ट- ऊर्जावान, विज्ञप्ति- प्रेस नोट, पारदर्शिता- स्पष्ट, प्रतिबद्ध- सम्बद्ध

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1919, **2.** तीन, **3.** सन् 1951, **4.** अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल, **5.** सन् 1958, **6.** सन् 2005, **7.** सन् 1995, **8.** वरिष्ठता, योग्यता, वरिष्ठता तथा उपयुक्तता।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी0डी0 बसु- भारत का संविधान।
2. टी0सी0 भट्- उत्तराखण्ड , राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास।
3. वार्षिक प्रतिवेदन- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी,नैनीताल (वर्ष 2008-09, वर्ष 2009-10)
4. प्रशिक्षण नीति- उत्तर प्रदेश राज्य प्रशिक्षण नीति 1999, कार्मिक विभाग, लखनऊ।

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी व माहेश्वरी- लोक प्रशासन।
2. शर्मा व सडाना- लोक प्रशासन: सिद्धान्त व व्यवहार।
3. डॉ0 एस0 सी0 सिंघल- समकालीन राजनीतिक मुद्दे।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भर्ती की परिभाषा देते हुए उसके अनिवार्य तत्वों को बताइये।
2. प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती के गुण दोष लिखिये।
3. प्रशिक्षण किसे कहते हैं? प्रशिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।
4. उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी के इतिहास पर एक लेख लिखिये।

इकाई- 14 स्थानीय स्वशासन

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य
14.3 संविधान में संशोधन और स्थानीय स्वशासन
14.4 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता
14.5 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें
14.6 स्थानीय स्वशासन और पंचायतों में आपसी सम्बन्ध
14.7 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?
14.8 स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास में सम्बन्ध
14.9 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम
    14.9.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
    14.9.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
14.10 स्थानीय स्वशासन की विशेषताऐं और चुनौतियां
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.16 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

स्थानीय स्वशासन लोगों की अपनी स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात् स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है।

यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। ये समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे-कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शांति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का सम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों, जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों

जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियन्त्रण हो ताकि उसके संवर्द्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षो से अपना शासन स्वयं चलाते रहे हैं, जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे कई गांवों में परम्परागत रूप में स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय स्वशासन के विषय में जान पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी सम्बन्ध को समझ पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन की मजबूती और ग्रामीण विकास के साथ उसके सम्बन्ध पर जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन के महत्व को समझ पायेंगे।
- स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास के बीच सम्बन्ध बारे में जान पायेंगे।
- 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के मुख्य प्रावधानों के विषय में जान पायेंगे।

14.2 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

स्थानीय स्वशासन शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर शासन के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक व्यवस्था सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समस्याओं के हल का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मा गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे। भारत गावों का देश है, अतः गावों के विकास के बिना भारत की प्रगति सम्भव नहीं। गांधी जी गांवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे, ताकि निचले स्तर पर लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसके लिए उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबूत बनाने की वकालत की थी, जिसमें-

1. गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।
2. ग्राम स्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।
3. किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा? ये सभी बातें गांव वाले तय करेंगे।
4. गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।
5. ऐसा शासन जहाँ लोग स्थानीय मुद्दों, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।
6. स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा, मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो, जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

14.3 संविधान में संशोधन और स्थानीय स्वशासन

हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं, उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थाऐं सुधारना, जैसे- फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबन्धन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे। लोगों को पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थीं। बड़े क्षेत्र, पट्टी, तोक के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदनशील निर्णय भी पंचायतें बड़े विश्वास के साथ करती थीं। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।

धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थाऐं आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गांव में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं। जिन जंगलों की हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबन्धन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास सम्बन्धी नजरिया हमारा स्वयं का था, उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है। अब सरकारी योजनाएं राज्य या केन्द्र में बैठकर बनाई जाती हैं और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा।

परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुँच थी उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे, चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो और उसको पाने के लिए व्यक्ति खींचातानी में लगा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर कमजोर होता गया और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी(छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।

लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाय। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है, जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।

इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई। ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनाएं, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें। इस सोच को समेटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन कर पंचायतों को नये काम और अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों में अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

14.4 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं। ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में

स्थानीय एवं वाह्य संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भाँति परिचित होते हैं तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं। गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछड़े वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

14.5 स्थानीय स्वशासन और पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थाऐं हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी तथा उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें, ताकि ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

14.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम हैं पंचायतें।

चूँकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती हैं, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है। पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं, विवादों का निपटारा करतें हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं, अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है। पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अतः पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूप से स्वशासन में भागीदारी होगी। इसके लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते हैं जब गांव के विकास सम्बन्धी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी। लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एकमात्र एक ऐसा मंच है जहाँ आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर स्थानीय विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबके विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

14.7 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा?

स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के लिए निम्नाकित कदम उठाने की आवश्यकता है-

1. स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए, जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह निःस्वार्थ भाव वाला हो।
2. सक्रिय ग्रामसभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होंगे तभी एक सशक्त पंचायत की नींव पड़ सकती है। अतः ग्रामसभा के हर सदस्य को जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।
3. स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्धन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अतः स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बना कर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।
4. स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांववासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वयन करेंगे। उपर से थोपी गई परियोजनाएं कभी भी ग्रामीणों में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती। अतः सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी व, स्तविक रूप से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा।
5. पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है, निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम हैं। अतः समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया मे भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना ‘लोक शासन’ को मूर्त रूप दे सकती है।
6. युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी हैं। इनके अन्दर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान है। इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व उर्जा का रचनात्मक कार्यों में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
7. पंचायती राज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाने में असमर्थ हैं।

14.8 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास के बीच में सम्बन्धों को समझाने के लिए निचे दिये गये बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक-दूसरे के पूरक हैं। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।
2. स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है। अतः पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।
3. ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेंगी। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधियों में पूर्ण नियन्त्रण।
4. ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सबको समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गों की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।
5. मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।
6. स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्णय द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

14.9 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहाँ स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

14.9.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है-

1. 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।
7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायतें 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनाएं स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अन्तर्गत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

कुल मिलाकर संविधान के 73वें संशोधन ने नवीन पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न सिर्फ पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर, दलित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

14.9.2 चौहतरवें वें संविधान संशोधन में मुख्य बातें

चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है-

1. संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।
2. इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है।
3. नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुँच बढ़ाई गई है।

4. समाज के कमजोर वर्गों, जैसे महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।
5. 74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।
6. इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुँचाना सुनिश्चित करना है।
7. देश में नगर संस्थाओं, जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
8. नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
9. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
10. समाज के कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिले।
11. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करे, जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।
12. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

14.10 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गावों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुँचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं का बेहतर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। नई पंचायती राज व्यवस्था से अनेक अपेक्षाएं हैं। इस आधार पर स्थानीय स्वशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1. स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाना।
2. लोगों की समस्याओं को समझना ओर उसके हल के लिए योजनाएं बनाना।
3. दुर्गम व दुरस्थ गावों तक राजनीतिक समझ को परिपक्व करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।
4. सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों का प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना।
5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रुप से सक्रिय करना तथा उनका सर्वांगीण विकास करना।

किन्तु स्थानीय स्वशासन के लिए यह मार्ग चुनौतियों से भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज की असफलता पर भी प्रश्न चिन्ह लगे हैं। वर्तमान में पंचायजी राज व्यवस्था के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हैं-

1. स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी है, तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।
2. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के प्रशिक्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं।
3. पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, परन्तु महिलाएं आज भी इस व्यवस्था में स्वतंत्र होकर व स्व-निर्णय लेकर कार्य नहीं कर पा रही हैं।
4. पंचायती राज व्यवस्था में धन व शक्ति के दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं, इससे निपटना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य है।

पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरुक होना जरुरी है। साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को भी अपना दायित्व सक्रियता से निभाना होगा तथा उन्हें जाति, धर्म व सम्प्रदाय से ऊपर उठकर विकास कार्यो पर अपना ध्यान लगाना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 73वां संविधान संशोधन किस से सम्बन्धित है।
   क. नगर निकायों से ख. पंचायतों से ग. शिक्षण संस्थाओं से घ. विधान सभाओं से
2. किस संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया?
3. कौन सा संविधान संशोधन नगर निकायों से सम्बन्धित है?
4. ग्राम स्वराज के पक्षधर थे?
   क. तिलक ख. महात्मां गांधी ग. जवाहर लाल नेहरु घ. सरदार पटेल
5. कौन सा संविधान संशोधन स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित है?

14.11 सारांश

शासन प्रणाली के उपलब्ध रुपों में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली सर्वोच्च व उत्तम है, क्योंकि इस शासन प्रणाली में जनता की भागीदारी सुनिश्चित रहती है। जनता की भागीदारी को अधिक मजबुत बनाने और शासन में उनकी पहुँच को सुलभ बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन की कल्पना को साकार करने के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संसोधन किया गया।

73वें संविधान संशोधन के द्वारा गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों, क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायतों व जिला स्तर पर जिला पंचायतों 74वें संविधान संशोधन के द्वारा शहरी स्तर पर नगर पालिका, नगर परिषद, नगर पंचायत व नगर परिषदों का गठन कर स्थानीय स्वशासन को साकार रुप दिया गया। स्थानीय स्वशासन के इन रुपों के माध्यम से स्थानीय लोगों की शासन सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर जनहित के कार्यों में सक्रियता, निचले स्तर पर शासन में भागीदारी और और समस्याओं का निराकरण, यहि स्थानीय स्वशासन का ध्येय है।

14.12 शब्दावली

संवर्द्धन- वृद्धि या विकास, वाह्य- बाहरी या अन्य, सूक्ष्म नियोजन- योजनाओं का छोटे रुप में लागू होना, त्रिस्तरीय- तीन स्तर

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख. पंचायतों से, **2.** 73वां संविधान संशोधन, **3.** 74वां संविधान संशोधन, **5.** ख. महात्मां गाँधी, **6.** 73वां व 74वां संविधान संशोधन

14.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायती राज प्रशिक्षण सन्दर्भ सामाग्री, 2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून।
2. पंचायती राज प्रशिक्षण मार्गदर्शिका, 2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून।
3. जल, जंगल व जमीन पर ग्राम पंचायतों के अधिकारों की नीतिगत स्तर पर पैरवी, 2002, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर, देहरादून एवं प्रिया संस्था नई दिल्ली।

14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी।
2. भारत में पंचायती राज- डॉ0 के0 के0 शर्मा।
3. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

14.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन से क्या तात्पर्य है? स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करें।
2. स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता क्यों है? स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में सम्बन्धों की चर्चा करें।
3. 73वें व 74वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. स्थानीय स्वशासन की विशेषताओं और चुनौतियों को स्पष्ट करें।

इकाई- 15 सांस्कृतिक एवं भाषा विकास

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य
    15.2.1 पहाड़ी हिन्दी
    15.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास
15.3 लोक साहित्य
15.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियाँ
    15.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद
    15.4.2 साहित्य, संस्कृति व कला समितियां
        15.4.2.1 अभिलेख परामर्शदात्री समिति
        15.4.2.2 क्षेत्रीय अभिलेख सर्वेक्षण समिति
        15.4.2.3 क्रय समिति
    15.4.3 गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय
15.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई
15.6 राज्य अभिलेखागार
    15.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य
    15.6.2 संरक्षित अभिलेख
15.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.13 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम राज्य की भाषा व संस्कृति के विकास पर चर्चा करेंगे। किसी भी राज्य की पहचान वहाँ की भाषा व संस्कृति से लगायी जा सकती है। उदाहरण के लिये हम पंजाब राज्य को लें तो वहाँ की संस्कृति व भाषा हमें वहाँ की सांस्कृतिक विरासत का परिचय स्वतः ही दे देती है। ऐसे ही समस्त राज्यों की भाषा व संस्कृति वहाँ की कार्यशैली को बताती हैं। ठीक इसी तर्ज पर उत्तराखण्ड की संस्कृति भी राज्य की अपनी अनूठी संस्कृति का परिचय देती है। राज्य की भाषा व संस्कृति को लेकर उत्तराखण्ड राज्य सरकार द्वारा भी अनेकों प्रयास किये जा रहें हैं।

राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास तथा उनको प्रोत्साहित करने के लिये राज्य सरकार द्वारा उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य एवं कला परिषद बनायी गयी है। इस परिषद के माध्यम से

संस्कृति के सभी पहलुओं के विकास के लिये इस क्षेत्र के अनुभवी विशेषज्ञों के सहयोग से कार्य किया जा रहा है। राज्य की सभी सरकारें इस प्रयास में रहीं हैं कि अनादिकाल से विख्यात इस क्षेत्र की संस्कृति, कला एवं साहित्य को संजोकर रखा जाये। साथ ही आने वाली पीढ़ियों के लिये इसका समुचित अभिलेखीकरण भी किया जाये।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- उत्तराखण्ड में भाषा के इतिहास के बारे में जान पायेंगे।
- उत्तराखण्ड का लोक साहित्य व उसके महत्व के बारे में समझ पायेंगे।
- संस्कृति विभाग व उसकी समितियों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- कला परिषदें, अभिलेखागार व संग्राहलयों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

15.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य

उत्तराखण्ड की भाषा हिन्दी, संस्कृत, पालि-अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। समय-समय पर विविध सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने हिन्दी को एक विशाल भू-प्रदेश में फैलने का अवसर प्रदान किया। डॉ0 ग्रियसन के अनुसार, 'हिन्दी भाषा का क्षेत्र पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर, पूर्व में बनारस, उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में कालाघाट तक विस्तृत है।'

15.2.1 पहाड़ी हिन्दी

हिन्दी में प्रायः किसी देश विशेष, स्थान विशेष अथवा प्रान्त विशेष के निवासियों के लिए तथा भाषा या बोली के साथ उसका सम्बन्ध सूचित करने के लिए सम्बन्धित देश अथवा प्रान्त अथवा बोली के साथ 'ई' प्रत्यय जोड़ देने की परम्परा चली आ रही है, जैसे कश्मीरी, पंजाबी, बंगाली। पहाड़ शब्द पर 'ई' प्रत्यय जोड़कर पहाड़ी शब्द बना है जो निवासी और भाषा अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। कश्मीर की दक्षिण-पूर्व सीमा पर भद्रवाह से नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जाने वाली भारतीय आर्य भाषा परिवार से सम्बन्धित प्रायः सभी बोलियां पहाड़ी उपभाषा के अन्तर्गत आ जाती है।

पहाड़ी हिन्दी में तीन बोलियों को सम्मिलित किया गया है- 1. पूर्वी पहाड़ी, 2. मध्य पहाड़ी , 3. पश्चिमी पहाड़ी।

पूर्वी पहाड़ी की मुख्य भाषा नेपाली है। इसे गोरखाली नाम से भी जाना जाता है। यह नेपाल की राजभाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है।

मध्य पहाड़ी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियां हैं- कुमाऊँनी और गढ़वाली। सामान्यतः पहाड़ी हिन्दी से अभिप्रायः उस उपवर्ग से लिया जाता है जिसे डॉ0 ग्रियसन ने मध्य पहाड़ी नाम दिया है। मध्य पहाड़ी की बोलियां कुमाऊँनी और गढ़वाली क्रमशः कुमाऊँनी और गढ़वाली में बोली जाती है। यह भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

15.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास

कुमाऊँ की बोली 'कुमाऊँनी' नाम से जानी जाती है। कुमाऊँ शब्द का सम्बन्ध कूमांचल या कूर्मांचल से है। कुमाऊँनी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। कुमाऊँनी के प्राचीनम नमूने शक सम्वत् 1266 अर्थात् चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से मिलते हैं। शिलालेखों और ताम्रपत्रों में उपलब्ध प्राचीन कुमाऊँनी के नमूनों मे संस्कृत शब्दों के प्रयोग की प्रवृति लक्षित होती है। कुमाऊँनी भाषा की विकास यात्रा को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- आदिकाल (14वीं सदी से 1800 ई0), मध्यकाल (1800 वीं सदी से 1900 ई0) तथा आधुनिक काल (1900 वीं सदी से वर्तमान तक)

1. **आदिकाल (14वीं सदी से 1800 ई0)-** आदिकाल की कुमाऊँनी बोली में संस्कृत शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता था। परन्तु 18वीं सदी तक आते-आते संस्कृत निष्ठा के स्थान पर तद्भव शब्दों की ओर झुकाव बढ़ा और कहीं-कहीं अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त होने लगे।
2. **मध्यकाल (1800 वीं सदी से 1900 ई0)-** इस काल में गुमानी पन्त जैसे प्रतिष्ठित कवि कुमाऊँनी में काव्य की रचना करने लगे थे। सन् 1815 में कुमाऊँ को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया और इसी बोली को पत्राचार की हेतु अपनाया।
3. **आधुनिक काल (1900 वीं सदी से वर्तमान तक)-** बीसवीं सदी की कुमाऊँनी पहले की कुमाऊँनी से एकदम अलग हो गई। 'अल्मोड़ा अखबार' अंचल आदि समाचार-पत्रों के प्रकाशन ने इसके विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी की एक उपबोली होने के कारण इसके लिखित स्वरुप एवं बोलचाल में हिन्दी का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब तो यह सरल से सरलतम हो गयी है।

ग्रियसन ने भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए पहाड़ी समुदाय में केन्द्रीय उपभाषा के अन्तर्गत कुमाऊँनी के साथ गढ़वाली बोली को भी लिया है। गढ़वाली बोली की उत्पत्ति के विषय में भाषा शास्त्रियों के विचारों में मतभेद है। डॉ0 भोलाशंकर व्यास, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा गढ़वाली की मूल उत्पत्ति शुद्ध 'शौरसेनी' से मानते हैं, परन्तु डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी का मत पहाड़ी भाषाओं के सम्बन्ध में एकदम भिन्न है। वे इनकी उत्पत्ति 'दश' या 'खश' से मानते हैं। वास्तव में उनकी इस स्थापना का आधार मात्र यही है कि 'खश' भी गढ़वाल के निवासी थे। और 'खश' दरद वंशीय माने गये हैं। किन्तु यदि गढ़वाली भाषा और दरद भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो दोनों में काफी अन्तर मिलेगा। मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'साइन्स ऑफ लैंग्वेज' में गढ़वाली को प्राकृतिक भाषा का एक रुप माना है। बालकृष्ण शास्त्री ने अपनी 'बनक वंश' पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि गढ़वाल में संस्कृत बहुत दिनों तक रही। हरिराम धस्माना ने यह उल्लेख किया कि गढ़वाली में कई शब्दों का प्रयोग वैदिक रुप में ही होता रहा है।

15.3 लोक साहित्य

राज्य के उत्तर-पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों को छोड़कर सम्पूर्ण क्षेत्र में कुमाऊँनी भाषा बोली जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उपबोलियां अभिव्यक्ति का माध्यम हैं, जिसमें शौका, थारु, राजी तथा बोक्साड़ी प्रमुख हैं। कुमाऊँनी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। डॉ0 ग्रियसन ने कुमाऊँनी भाषा की प्रकृति का अध्ययन कर इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। भाषाविदों ने दरद-पहाड़ी को कुमाऊँनी भाषा का मूल श्रोत माना है। ध्वनि, रुप-रचना तथा वाक्य विन्यास की दृष्टि से कुमाऊँनी शौरसेनी अपभ्रंश के निकट है। इस कारण इसका सम्बन्ध संस्कृत से निर्धारित होता है। कुमाऊँनी भाषा क्षेत्रीय आधार पर खड़ी बोली हिन्दी से अत्याधिक प्रभावित हैं। श्री देव सिंह पोखरिया तथा मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा के विकास में महत्तवपूर्ण भूमिका निभायी है। मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा में 'दुदबोली' नामक पत्रिका का सम्पादन कर इसके विकास में अपना योगदान दिया। कुमाऊँनी बोली को ध्वनि तथा उच्चारण के आधार पर चार भागों में विभाजित किया जाता हैं। ये हैं- कुमय्यां, सौयोली, सीराली तथा असकोटी।

मानव और साहित्य दोनों का प्राचीनकाल से अटूट सम्बन्ध रहा है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। गढ़वाल का लोक साहित्य अपनी गौरवमयी परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए जीवन्त है। काव्य के विविध अंगों, रस, छंद, अलंकार, भाव माधुर्य आदि से गढ़वाली लोक साहित्य पूर्ण है। यह लोक जीवन के विविध रुपों को दर्शाता है। गढ़वाल के वैभवशाली अतीत की परछाईयां हमें लोक साहित्य में देखने को मिलती है।

वर्तमान में लिखित साहित्य को ही साहित्य मानने की परम्परा है, किन्तु लोक साहित्य को भी साहित्य की श्रेणी में लेना चाहिये, क्योंकि यह जनसामान्य से जुड़ा है और साहित्य के वास्तविक उद्देश्य का दायित्व निर्वाह करता है। वास्तव में लोक साहित्य जितना जन मानस को प्रभावित करता है, उतना लिखित साहित्य नहीं। गढ़वाली भाषा में लिखित साहित्य का आरम्भ सन् 1750 के लगभग माना जाता है। गढ़वाली के आरम्भिक कवियों में हरिकृष्ण दोर्गादत्ति, रुड़ौला, हर्षपुरी और लीलानन्द कोटनाला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् 1905 में 'गढ़वाली' पत्र के प्रकाशन से लोगों का ध्यान गढ़वाली भाषा की ओर विशेष रुप से आकर्षित हुआ।

15.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियां

राज्य की सांस्कृतिक विरासत तथा परम्पराओं को विकसित करने के लिए सरकार सतत् प्रयासरत है। उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति का प्रतीक केन्द्र हैं। यहाँ की समृद्ध परम्परा देश को ही नहीं, बल्कि विदेशों में बसे भारतीयों को भी गौरवान्वित करती है। संस्कृति विभाग का उद्देश्य राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का रखरखाव व संवर्द्धन है। संस्कृति विभाग द्वारा कला एवं संस्कृति को मनोरंजन की चितपरिचित सीमाओं से उपर ले जा कर सुविचारित कल्पनाओं के आधार पर सकारात्मक दिशा के लिये प्रयास किये जाते हैं। उत्तराखण्ड सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि प्रदेश की अपनी इन्हीं विरासतों से राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग पहचान बना सके। राज्य में साहित्य, संस्कृति व भाषा, संगीत, लोकगीतों के संरक्षण के लिये समितियों का गठन किया गया है-

15.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद

राज्य में साहित्य, कला व सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं सुनियोजित विकास की दृष्टि से मार्ग निर्देश गठित किये जाने के उद्देश्य से राज्य साहित्य व कला परिषद का गठन किया गया है। इसका कार्यालय देहरादून में है। इस परिषद के उद्देश्य निम्न हैं -

1. राज्य में साहित्य एवं कला विशेष रूप से प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, संवर्द्धन तथा सुनियोजित विकास हेतु राज्य सरकार को परामर्श देना।
2. राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करना ।
3. राज्य में साहित्य, कला व भाषा के विकास हेतु राज्य व राज्य के बाहर इन क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों से प्रभावी समन्वय तथा सहयोग प्राप्त करना।
4. हिन्दी व स्थानीय भाषा व बोलियों का विकास करना।
5. संगीत, नृत्य, नाटक, ललित कला, सृजनात्मक साहित्य (स्थानीय भाषाओं/बोलियों के साहित्य) का प्रकाशन करना व इसे जनसुलभ बनाने हेतु प्रयास करना।
6. राज्य में साहित्य व सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़ी पात्र स्वायत्तशासी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
7. सांस्कृतिक गतिविधियों एवं राज्य की सांस्कृतिक विरासत के सुनियोजित विकास तथा संरक्षण के उद्देश्य से राज्य सरकार, केन्द्र सरकार तथा अन्य सभी से वित्त निवेश प्राप्त करना। इस हेतु यथा आवश्यकता परिषद द्वारा राज्य सरकार को प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
8. साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कला से सम्बन्धित बैठकों, प्रदर्शनियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना।
9. लोक कला, भाषा विकास, कला को अन्य व्यावसायिक गतिविधियों से उत्तराखण्ड के स्थानीय कलाकारों व रचनाकारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु प्रयास करना।

15.4.2 साहित्य, संस्कृति व कला समितियां

संस्कृति, साहित्य एवं कला से सम्बन्धित विभिन्न विधाओं के लिये महत्तवपूर्ण सुझाव देने के लिये उत्तराखण्ड साहित्य एवं कला परिषद की तीन समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों के कार्य निम्न हैं -

1. इन समितियों द्वारा अपने क्षेत्र की विभिन्न विधाओं के सुनिश्चित एवं समग्र विकास के लिए तात्कालिक एवं दूरगामी रणनीति तैयार की जाती है।
2. इन समितियों द्वारा अपने अपने क्षेत्रों में क्रियान्वित कराये जाने वाली योजनाओं के प्रस्ताव भी तैयार किए जाते हैं। साथ ही यह भी मार्गदर्शन दिया जाता है कि सम्बन्धित योजना पर कितना व्यय-भार आएगा व किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।
3. इसके अतिरिक्त संस्कृति विभाग के सामान्य कार्य-कलापों एवं अवस्थापना सुविधाओं को और अधिक उपयोगी बनाये जाने हेतु इन समितियों द्वारा सुझाव दिए जाते हैं।
4. विभिन्न योजनाओं में शासन से प्राप्त होने वाले धन के अतिरिक्त धनराशि के अन्य सम्भावित क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी इन समितियों द्वारा मार्गदर्शन किया जाता है।

15.4.2.1 अभिलेख परामर्शदात्री समिति

प्राचीन, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दस्तावेजों एवं पाण्डुलिपियों को संरक्षित रखने तथा उसके अनुसंधान को दिशा देने के उद्देश्य से अभिलेख परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया है। इस समिति के द्वारा निम्न कार्य किये जाते हैं-

1. उत्तराखण्ड राजकीय अभिलेखागार के सुधार रुप में संचालन हेतु राज्य सरकार को समय-समय पर परामर्श देना।
2. प्राचीन हस्तलिखित ऐतिहासिक ग्रंथों एवं अभिलेखों की उत्तराखण्ड राज्य में खोज व अनुसंधान करना।
3. ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं अभिलेखों की प्रति प्राप्त करना, जिन्हें लोग राजकीय अभिलेखागार को नहीं देना चाहते।
4. प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों एवं अभिलेखों को वैज्ञानिक संरक्षण एवं इनको शोध कार्य हेतु उपलब्ध कराना तथा उसकी प्राप्ति सूची, कैलेण्डर, कैटलॉग आदि प्रकाशित करना।
5. राज्य की जनता को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरुक दायित्व बोध कराने का प्रयास करना।
6. व्यक्तिगत अधिकार में रखे अभिलेखों एवं ग्रन्थों के वैज्ञानिक विधि से संरक्षण के लिए परामर्श देना।
7. उक्त परामर्शदात्री समिति ऐसे सदस्यों को भी समय-समय पर मनोनीत कर सकती है, जिनकी सलाह की उन्हें आवश्यकता हो।

15.4.2.2 क्षेत्रीय अभिलेख सर्वेक्षण समिति

इस समिति का कर्तव्य है कि हस्तलिखित ग्रन्थों, विशेषकर ऐतिहासिक एवं अभिलिखित तथा किसी महान व्यक्ति द्वारा लिखित ग्रन्थ या पत्र का सर्वेक्षण एवं उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करना।

15.4.2.3 क्रय समिति

विभिन्न प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ, अभिलेख, माइक्रोफिल्म की प्रति या नोट आदि जो समिति को दान स्वरुप या क्रय के रुप में प्राप्त होने पर, वह सरकार की सम्पत्ति होती है और राज्य अभिलेखागार में संरक्षित होती है। उत्तराखण्ड राज्य अभिलेखागार द्वारा प्रदेश में अभिलेखों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का सर्वेक्षण किया जाता है। क्रय समिति इन हस्तलिपियों तथा दस्तावेजों के क्रय की निगरानी करती है।

15.4.3 गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय

अल्मोड़ा स्थित इस संग्राहलय का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन धरोहरों को सुरक्षित व संरक्षित रखना तथा इसका प्रदर्शन करना है। राजवंशों व शासकों के ऐतिहासिक पुरावशेष इस क्षेत्र में यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। इस क्षेत्र में बिखरी अपार सांस्कृतिक सम्पदा के संग्रह, अनुरक्षण, अभिलेखीकरण, प्रदर्शन एवं उन पर शोध करने के उद्देश्य से सन् 1979 में उत्तराखण्ड की प्रसिद्ध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा में संग्रहालय की स्थापना की गयी थी। इस संग्राहलय में उत्तराखण्ड तथा उससे जुड़े विभिन्न क्षेत्रों की लगभग 3000 से अधिक महत्वपूर्ण कलाकृतियों का संग्रह है। आरक्षित संग्रह के अतिरिक्त संग्राहलय की पाँच वीथिकाओं को सुरूचिपूर्ण एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रदर्शित किया गया है।

15.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई

राज्य में मानव सभ्यता का विकास पाषाण काल से ही पल्लवित हुआ है। इससे सम्बन्धित राज्य के पर्वतीय दुर्गम अंचल में यहाँ की प्राचीन संस्कृति के रूप में चित्रित शैलाश्रय, ताम्रमानवाकृतियां, प्राचीन मंदिर, मस्जिद, चर्च, बावड़ी जल धारा, कोट, किले, धर्मशालायें, शुद्ध एवं मिश्रित धातुओं के बने सिक्के आदि बहुलता से यत्र-तत्र मिलते हैं। क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई द्वारा पुरा सम्पदाओं का सर्वेक्षण तथा अनुसंधान निरन्तर किया जाता है। गढ़वाल मण्डल के अर्न्तगत अवस्थित पुरातात्विक स्मारकों की बहुलता को देखते हुए वर्ष 1984 में तत्कालीन शासन द्वारा गढ़वाल मण्डल के लिये एक प्रथक पुरातत्व इकाई की स्थापना की गयी।
कुमाऊँ में पुरातत्व इकाई अल्मोड़ा कार्यालय सन् 1976 से है। क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई के निम्न उद्देश्य हैं।

1. पुरा सम्पदा का सर्वेक्षण।
2. पुरा स्थलों का उत्खनन।
3. पुरा सम्पदा का संरक्षण तथा अनुरक्षण।
4. पुरातत्व एवं पुरास्थलों के प्रति लोकरूचि जगाने हेतु जागरूकता अभियान चलाना।
5. पुरातत्व विषयक प्रकाशन एवं वार्षिक समीक्षात्मक रिपोर्ट का प्रकाशन करना।

15.6 राज्य अभिलेखागार

वर्ष 1958 तक अभिलेखागार, शिक्षा विभाग उत्तर-प्रदेश के अधीन रहा। तदोपरान्त प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 1975 में इसे 'इण्डोलॉजी और संस्कृति विभाग' के अधीन स्थापित कर दिया गया। वर्ष 1973 में लखनऊ के आधुनिक अभिलेखागार में स्थानान्तरित कर दिया गया। अभिलेखागार के वृहद कार्यक्षेत्र को देखते हुए इसकी इकाईयां इलाहाबाद, वाराणसी, देहरादून तथा नैनीताल में स्थापित कर दी गयी। क्षेत्रीय अभिलेखागार, देहरादून की सन् 1980 में स्थापना, राज्य की पर्वतीय विकास योजना के अन्तर्गत की गयी।

15.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य

राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्य निम्न हैं -

1. उत्तराखण्ड के सभी सरकारी कार्यालयों तथा विभागों के अभिलेखों का निरीक्षण, सूचीकरण एवं अभिलेखों का अभिलेखागार में स्थानान्तरण करना।
2. सभी कार्यालयों तथा विभागों, स्वायत्तशासी संस्थाओं एवं व्यक्तिगत अधिकार में रखे गये अभिलेखों को वैज्ञानिक संरक्षण करने एवं सुव्यवस्थित रखने सम्बन्धित परामर्श देना।
3. शोध छात्रों एवं जनसामान्य के उपयोग के लिये अभिलेखागार में उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों का चयन कर उनकी सूची बनाकर प्रकाशित करना।

4. अभिलेखों को जिला, विभाग एवं क्षेत्र के अनुसार सुव्यवस्थित ढंग से रखते हुए अभिलेखागार में संरक्षित करना।
5. शोध छात्र व जनसामान्य को शोध अभिलेख तथा पत्रिकाएं उपलब्ध कराना। शोध छात्रों को आवश्यकता अनुसार अभिलेखों की छायाप्रति उपलब्ध कराना।
6. जनसामान्य को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरूक करने हेतु समय-समय पर अभिलेख प्रदर्शनियों का आयोजन कराना। साथ ही उत्तराखण्ड के विद्यार्थियों मे स्थानीय सामाजिक, आर्थिक व सामयिक विषयों के प्रति रूचि बढ़ाने के उद्देश्य से सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करना।
7. विभिन्न स्रोतों से प्राप्त अभिलेखों की वैज्ञानिक विधियों द्वारा मरम्मत करके इन्हें स्थाई रूप में संरक्षित करना।
8. राज्यकर्मियों को अभिलेखीय संरक्षण सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करना। मौखिक अभिलेखों का संरक्षण करना।
9. स्थानान्तरित अभिलेखों का संरक्षण।
10. व्यक्तिगत अभिलेखों को दान स्वरूप प्राप्त करना।

15.6.2 संरक्षित अभिलेख

राज्य अभिलेखागार उत्तराखण्ड में वर्ष 1816 से वर्ष 1957 तक के देहरादून के प्री-म्यूटिनी, पोस्ट-म्यूटिनी, स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित अभिलेख कलेक्ट्रेट टिहरी गढ़वाल के वर्ष 1939-49 तक के अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। क्षेत्रीय अभिलेखागार कार्यालय में संरक्षित अभिलेख, आयुक्त कुमाऊँ मण्डल नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1880 से 1921 तक के पोस्ट-म्यूटिनी रिकार्ड, वर्ष 1805 से 1944 तक राजस्व नक्शे एवं जिलाधिकारी कार्यालय, नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1928 से 1941 तक की फाइलें व सन् 1880 से 1948 तक के पोस्ट म्यूटिनी अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से दान स्वरूप प्राप्त अभिलेखों में प्राचीन डायरियां, पत्र, साहित्यिक लेख जो वर्ष 1896 से 1980 तक के हैं। साथ ही राष्ट्रपिता माहात्मा गांधी, पं0 गोविन्द बल्लभ पंत, सरलाबेन, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के हस्तलिखित विभिन्न अभिलेख भी यहाँ संरक्षित हैं।

15.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास

संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड का एक मात्र प्रेक्षागृह मण्डल मुख्यालय, पौड़ी में स्थित है। यह एक बहुउद्देश्यीय प्रेक्षागृह है। जिसमें 44 सीटों की आधुनिकतम कार्यशाला है। इसका उपयोग वर्तमान समय में क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई, गढ़वाल मण्डल, पौड़ी द्वारा भातरखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय की कक्षाओं के संचालन हेतु किया जा रहा है। इस प्रेक्षागृह का उपयोग हर सरकारी व गैर-सरकारी बैठकों के लिये किया जाता है। संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड , हर वर्ष बद्री-केदार उत्सव का आयोजन करता है। इस बद्री केदार उत्सव में जहाँ एक ओर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों द्वारा प्रतिभाग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर उत्तराखण्ड की परम्परागत समृद्ध संस्कृति पर आधारित कार्यक्रमों का भी प्रदेश के उत्कृष्ट कलाकारों द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति के विविध आयामों के संरक्षण व संवर्द्धन में संलग्न है। क्योंकि हमारी वर्तमान पीढ़ी आधुनिकता के आकाश को छूते हुए भी अपनी परम्पराओं की भूमि को न छोड़ें, इसके लिये आवश्यक है कि संस्कृति का समय-समय पर सिंचन हों। इसी का प्रयास बद्री-केदार महोत्सव के द्वारा किया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. पहाड़ी हिन्दी में कितनी बोलियाँ सम्मिलित हैं?
2. मध्य पहाड़ी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ कौन-कौन सी हैं?
3. मैक्समूलर की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है?
4. गढ़वाली भाषा साहित्य का आरम्भ कब से माना जाता है?
5. राज्य में साहित्य, संस्कृति, भाषा, संगीत व लोकगीतों के संरक्षण के लिये कितनी समितियों का गठन किया गया है?
6. गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय कहाँ स्थित है?

15.8 सारांश

भाषा किसी भी समाज की पहचान होती है। भाषा का वृहद रूप वहाँ की भाषाई संस्कृति को जन्म देती है। एक ही क्षेत्र में कई तरह से भाषा को बोला जाता है। भाषा की क्षेत्रीय पहचान बोलियों के रूप मे हमारे सामने आती है। किसी भी समाज में बोली जाने वाली बोली उस समाज की संस्कृति से परिचय कराती हैं। उत्तराखण्ड राज्य में हिन्दी के साथ-साथ कई अन्य भाषाऐं व बोलियां प्रचलित हैं, जो हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर हैं। जिस तरह राज्य में भौगोलिक विभिन्नताऐं हैं, ठीक उसी तरह भाषा और बोलियों को लेकर भी अनेकों विभिन्नताऐं हैं। राज्य के दोनों छोरों पर अपनी सुन्दर व अनूठी बोली की पहचान लिये जनजातियां हैं, तो दूसरी तरफ मध्य में कुमाऊँनी, गढ़वाली, पंजाबी, पूर्वी व अन्य बोलियों के साथ कई जातियां इस अनूठी सांस्कृतिक धरा पर अपने रंग बिखेरती है। वहीं विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक धरोहरें राज्य को पर्यटकों के लिये और आकषर्ण पैदा करती हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों में आयोजित होने वाले उत्सवों एवं मेलों के माध्यम से भी प्रदेश की समृद्ध संस्कृति को प्रचारित करने का कार्य सरकारों द्वारा किया जाता रहा है, जिससे उत्तराखण्ड की संस्कृति की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर राज्य बनने के बाद नये रूप में उभरी है।

15.9 शब्दावली

संरक्षण- सुरक्षा या बचाव, प्रेक्षागृह- ऐसा स्थान जहाँ कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता है। ये स्थान बैठकों व अन्य कार्यों में भी काम आता हैं।, स्वायत्तशासी- अपने अधिकार में रहने वाला शासन। जिस पर सरकार या किसी वाह्य शक्ति का कोई अधिकार नहीं होता।,संवर्द्धन- किसी वस्तु, सामग्री को सुरक्षित रखना। बढ़ाना या पालना।, म्यूटिनी- विद्रोह, क्रान्ति या गदर।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तीन, **2.** कुमाऊँनी और गढ़वाली, **3.** साइन्स ऑफ लैंग्वेज, **4.** सन् 1750 के लगभग, **5.** तीन, **6.** अल्मोड़ा

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भवानी दत्त उप्रेती- कुमाऊँनी भाषा का अध्ययन।
2. चन्द्र सिंह चौहान एवं भट्ट- मल्ल तथा मध्यकालीन उत्तराखण्ड।
3. बद्री दत्त पाण्डे – कुमाऊँ का इतिहास।
4. सुन्दर लाल बहुगुणा- उत्तराखण्ड में एक सौ बीस दिन।

15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सविता मोहन व हरीश यादव- उत्तरांचल समग्र अध्ययन।
2. विद्या दत्त बलूनी- उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन।
3. उत्तराखण्ड शासन- संतुलित समयबद्ध समग्र विकास, पांचवीं वर्षगांठ।
4. पहाड़- संपादक, शेखर पाठक।

15.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्यों को समझातें हुए संरक्षित अभिलेख के बारे में जानकारी दीजिए।
2. साहित्य, संस्कृति व कला समितियां क्या हैं? इनके प्रमुख कार्य कौन-कौन से हैं?
3. राज्य साहित्य व कला परिषद के प्रमुख कार्यों को बताईये।
4. उत्तराखण्ड के लोक साहित्य पर एक निबन्ध लिखिये।
5. उत्तराखण्ड की भाषा व साहित्य पर प्रकाश डालिये।